इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान एवं खेतिहर मजदूर : संघर्ष और चुनौतियाँ

हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय की पीएच.डी. (हिंदी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबंध

शोध-निर्देशक
डॉ. अमित कुमार

शोधार्थी
प्रतिभा मिश्रा
पंजी.स.CUH/2016/HIN/012/8197
अनुक्रमांक : 8197

हिंदी विभाग
मानविकी एवं समाज विज्ञान पीठ
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय
महेंद्रगढ़- 123031

[2021]

घोषणा पत्र

मैं, **प्रतिभा मिश्रा** यह घोषणा करती हूँ कि मैं डॉ. अमित कुमार के शोध निर्देशन में '**इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान एवं खेतिहर मजदूर : संघर्ष और चुनौतियाँ**' विषय पर पीएच. डी.(हिंदी) की उपाधि के लिए शोध-प्रबंध प्रस्तुत कर रही हूँ। मेरा यह शोध-कार्य पूर्णत: मौलिक एवं शोधपरक है। मेरी जानकारी में इससे पूर्व हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय तथा अन्य किसी भी शैक्षणिक संस्था अथवा विश्वविद्यालय में इस विषय पर कोई शोध-कार्य नहीं हुआ है। इस शोध-प्रबंध के लेखन में समस्त संदर्भों का यथास्थान उल्लेख किया गया है।

दिनांक _____

(प्रतिभा मिश्रा)
शोधार्थी

प्रमाण पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि शोधार्थी **प्रतिभा मिश्रा** ने मेरे निर्देशन में पीएच. डी.(हिंदी) की उपाधि हेतु '**इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान एवं खेतिहर मजदूर : संघर्ष और चुनौतियाँ**' विषय पर शोध-कार्य किया है। यह शोध-कार्य इनके मौलिक प्रयास का प्रतिफलन है।

मैं इस शोध-प्रबंध की मौलिकता और प्रतिपादित तथ्यों की उपयोगिता को दृष्टिगत कर इसे मूल्यांकनार्थ प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

दिनांक_____

(डॉ. अमित कुमार)
सहायक प्रोफ़ेसर, हिंदी विभाग
हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय

संस्तुत एवं अग्रसारित

अध्यक्ष/प्रभारी
हिंदी विभाग, ह.के.वि.

भूमिका

कहा जाता है कि प्रत्येक सदी अपनी पिछली सदी के मुकाबले नए भविष्य की आशा के साथ आती है, नई सदी में जहाँ एक ओर विकास के नए प्रतिमान गढ़े जाते हैं, वहीं पिछली सदियों के मुकाबले विकास और सफलता तक पहुंचने का रास्ता और अधिक संघर्षमय एवं चुनौतीपूर्ण हो जाता है। इस संघर्ष एवं चुनौती का सामना समाज के प्रत्येक वर्ग को करना पड़ता है। इक्कीसवीं सदी में जहाँ हम सफलता की नई ऊँचाइयों को छू सकने में कामयाब हुए, वहीं कुछ समस्याएं और अधिक विकराल रूप में सामने आई हैं, उनमें किसानों एवं मजदूरों की समस्या सबसे जीवंत दिखाई देती है।

भारतीय किसानों की स्थिति बहुत लंबे समय से अधिक अच्छी तो नहीं कही जा सकती, लेकिन इस सदी में किसानों एवं मजदूरों की स्थिति विकट होती जा रही है। भारतीय किसान एवं खेतिहर मजदूरों की स्थिति पर जब विचार किया जाता है तब यह बात सामने आती है कि जो हमारे समाज का एक महत्वपूर्ण हिस्सा हैं वो लगातार उपेक्षित बने हुए हैं। ऋण की समस्या, उपज की समस्या, खाद, बीज की समस्या, बाढ़, अकाल की समस्या से जूझते- जूझते भारतीय किसान लगातार हांफ रहा है और विडंबना यह है कि उसे कहीं से भी किसी प्रकार की राहत मिलने की उम्मीद नहीं है। यही स्थिति खेतिहर मजदूरों के संबंध में भी कही जा सकती है।

खेती में एक अनिश्चितता का भाव हमेशा बना रहता है, इसलिए खेतिहर मजदूरों का तेजी से शहर की तरफ पलायन हो रहा है। इसमें केवल मजदूर ही नहीं, बल्कि सीमांत किसान भी शामिल हैं। पलायन के बाद गाँव से शहर आए हुए किसान-मजदूरों की हालत बहुत अच्छी नहीं रहती है और यहाँ पर भी श्रम की अनिश्चितता बनी रहती है। किसान एवं खेतिहर मजदूरों की स्थिति, उनकी समस्याओं, उनके संघर्षों एवं चुनौतियों को साहित्य में कब-कब, कैसे-कैसे जगह मिली है, इसी की पड़ताल करते हुए प्रस्तुत शोध-विषय का चयन किया गया है। चूंकि हिंदी साहित्य की उपन्यास विधा में हमेशा से मेरी रुचि रही है,

इसलिए उपन्यास विधा को मैंने अपने शोध के लिए उपयुक्त पाया। ग्रामीण परिवेश में निवास करने के कारण किसान जीवन से मेरा हमेशा जुड़ाव बना रहा। जब मुझे शोध करने का अवसर प्राप्त हुआ तो मैंने इस दिशा के बारे में और भी गंभीरता से सोचना प्रारंभ किया। अंततः मेरे शोध-निर्देशक द्वारा ही उपन्यासों में किसान जीवन एवं खेतिहर मजदूरों को आधार बनाकर शोध करने का सुझाव प्राप्त हुआ। उन्हीं के निर्देशन में 'इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान एवं खेतिहर मजदूर: संघर्ष और चुनौतियाँ' विषय पर शोध-कार्य करना सुनिश्चित हुआ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध को अध्ययन की दृष्टि से पांच अध्यायों में विभक्त किया गया है। प्रथम अध्याय 'किसान एवं खेतिहर मजदूर : जीवन और संघर्ष' में यह दिखाने का प्रयास किया है कि किस प्रकार किसान जीवन और खेतिहर मजदूर जीवन का प्रारंभ होता है। किसानों को विभिन्न श्रेणियों में विभक्त करते हुए उनकी अलग-अलग तरह की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। कृषि क्रांतियों, कृषि-नीतियों, किसान आंदोलन, भूमि व्यवस्था आदि की विस्तारपूर्वक चर्चा की गई है।

द्वितीय अध्याय 'हिंदी के प्रमुख किसानी उपन्यास' में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि साहित्य में किसान एवं खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को उपन्यासकारों ने उपन्यास लेखन के आरंभिक दौर में ही शुरू कर दिया था। भले ही ये उपन्यास अपने समय में किसानों की समस्याओं को यथार्थ रूप में चित्रित करने में असफल रहें, किंतु इन्होंने आने वाले समय के उपन्यासकारों के लिए एक जमीन तैयार करने का कार्य किया। इसी जमीन पर चलकर ही हर काल खंड के उपन्यास साहित्य में किसान और खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को उपन्यासकारों ने अपने साहित्य लेखन का विषय बनाया।

तृतीय अध्याय 'इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान जीवन का संघर्ष और चुनौतियाँ' में इक्कीसवीं सदी में किसान को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है एवं उनकी समस्याओं के लिए कौन-कौन से कारण उत्तरदायी हैं। इन सब विषयों पर विस्तार से चर्चा की गई है। साथ ही

इक्कीसवीं सदी में किसानों के प्रति शासन तंत्र के रवैये एवं शासन तंत्र के विरुद्ध किसान आंदोलन पर भी बात की गई है।

चतुर्थ अध्याय 'इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में खेतिहर मजदूरों का संघर्ष और चुनौतियाँ' अध्याय में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि इक्कीसवीं सदी में एक खेतिहर मजदूर का जीवन किसानों से भी बदतर होता है । उसकी गणना समाज के सबसे निम्न स्तर पर की जाती है । वह जीवनपर्यंत समस्याओं का सामना करता है। बेरोजगारी, भूमि समस्या, पलायन के कारण उसकी हो रही दुर्दशा के निवारण की तरफ किसी का ध्यान ही नहीं जाता है।

पंचम अध्याय 'इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान और खेतिहर मजदूर : तुलनात्मक अध्ययन' में यह दिखाने का प्रयास किया गया है कि किसान एवं खेतिहर मजदूर दोनों ही कृषि कार्य से जुड़े हैं। इनमें से एक के बिना दूसरे का अस्तित्व संकट में आ सकता है। फिर भी इस अध्याय में यह खोजने का प्रयास किया गया है कि आखिर किन मायनों में ये एक दूसरे से भिन्न हैं और किन मायनों में समान। उनकी समस्याएं एक ही तरह की हैं या भिन्न-भिन्न हैं। 'उपसंहार' में सभी अध्यायों से प्राप्त निष्कर्षों को समाहित किया गया है।

आभार व्यक्त करने की परंपरा में सबसे पहले मैं अपने शोध-निर्देशक डॉ.अमित कुमार का आभार व्यक्त करती हूँ, जिनके कुशल निर्देशन में यह शोध कार्य निर्बाध रूप से पूरा हो सका। शोध-विषय के चुनाव से लेकर अध्याय विभाजन के कार्य तथा शोध-लेखन के प्रत्येक पड़ाव पर उनका निर्देशन प्राप्त होता रहा । उन्होंने न सिर्फ शोध-निर्देशक की भूमिका सफलतापूर्वक निभायी, बल्कि शोधकार्य के दौरान एक अभिभावक के रूप में भी उनका स्नेह प्राप्त होता रहा। हिंदी विभाग के सहायक प्रोफेसर डॉ.सिद्धार्थ शंकर राय एवं डॉ.अरविंद सिंह तेजावत के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ, जिन्होंने मुझे समय-समय पर शोध-कार्य से संबंधित महत्त्वपूर्ण सुझाव दिए।

परिवार के सभी सदस्यों में मैं, सबसे पहले अपनी माता श्रीमती आशा मिश्रा को आभार देना चाहूंगी जिनके उत्साहवर्धक बातों के कारण ही मैं अपने शोध कार्य को पूरा करने में सफल हुई हूँ। अपने पिता श्री चिंतामणि मिश्र को मैं अपने हृदय से आभार व्यक्त करती हूँ जो चुप रहते हुए भी बहुत कुछ कह जाते हैं उनकी यही आदत मुझे जीवन में आगे बढ़ने की प्रेरणा देती रही है। मेरे छोटे भाई-बहन जिनसे इस शोधकार्य के दौरान हुई छोटी-छोटी नोकझोंक खासकर भाई मृत्युंजय का चुलबुला स्वभाव इस शोध कार्य में मुझे उर्जा देने का काम करता रहा है।

डॉ. अखिलेंद्र प्रताप सिंह एवं डॉ. सुधा के प्रति मैं अपना विशेष आभार ज्ञापित करती हूँ, जिनका सहयोग विधिवत शिक्षा (स्नातक एवं स्नातकोत्तर) से इस शोध प्रबंध को लिखने तक बना रहा है।

इस शोध लेखन में प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से जुड़े सभी लोगों का मैं हृदय से धन्यवाद करती हूँ। मित्र अमन और विकास से इस शोध प्रबंध लेखन में मिले सहयोग के लिए उनके प्रति अपना विशेष आभार व्यक्त करती हूँ। साथ ही ऐसे मित्र का आभार भी व्यक्त करती हूँ जिनके सहयोग से ही मैं अपना शोध कार्य पूरा करने में सफल हुई हूँ। हरियाणा केंद्रीय विश्वविद्यालय एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के सभी कर्मियों के प्रति मैं कृतज्ञ हूँ।

(प्रतिभा मिश्रा)

अनुक्रमणिका

भूमिका **I-IV**

प्रथम अध्याय :
किसान एवं खेतिहर मजदूर : जीवन और संघर्ष **1-51**

1.1 : किसान से अभिप्राय

1.2 : किसान के प्रकार

1.3 : किसान और उसकी समस्याएँ

1.4 : किसान और कृषि क्रांतियाँ

1.5 : किसान और कृषि नीतियाँ

1.6 : किसान और किसान आंदोलन

1.7 : प्रमुख किसान नेता

1.8 : किसान और बहुराष्ट्रीय कंपनियां

1.9 : किसान और भूमि सधार व्यवस्था

द्वितीय अध्याय :
हिंदी के प्रमुख किसानी उपन्यास **52-77**

2.1 : स्वतन्त्रता से पूर्व किसानी उपन्यास

2.2 : स्वातंत्र्योत्तर किसानी उपन्यास

2.3 : इक्कीसवीं सदी के किसानी उपन्यास

तृतीय अध्याय :
इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान जीवन का संघर्ष और चुनौतियाँ **78-129**

3.1 : भारतीय समाज में किसान

3.2 : महिला किसान की उपस्थिति

3.3 : किसान और सरकारी नीतियाँ

3.4 : सरकारी तंत्र और किसान

3.5 : प्राकृतिक आपदा और किसान

3.6 : हिंदी उपन्यास और किसान आंदोलन

चतुर्थ अध्याय :
इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में खेतिहर मजदूरों का संघर्ष और चुनौतियाँ **130-167**

4.1 : शोषण के विविध रूप

4.2 : खेतिहर मजदूर : बेरोजगारी और पलायन

4.3 : भूमि समस्या से जूझता खेतिहर मजदूर वर्ग

4.4 : खेतिहर मजदूर का पारिवारिक और सामाजिक संघर्ष

पंचम अध्याय :

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान और खेतिहर मजदूर : तुलनात्मक अध्ययन **168-253**

5.1 : व्यवस्था और तंत्र

5.2 : सरकारी नीतियाँ और किसान एवं खेतिहर मजदूर की दशा

5.3 : उपन्यासों में अभिव्यक्त विस्थापन और पलायन की समस्या

5.4 : उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान और खेतिहर मजदूर आंदोलन

5.5 : ऋणग्रस्तता

5.6 : आत्महत्या

5.7 : किसान और खेतिहर मजदूरों के अंतर्संबंध

- **उपसंहार** **254-259**
- **संदर्भ ग्रंथ सूची** **263-270**

प्रथम अध्याय

किसान एवं खेतिहर मजदूर : जीवन और संघर्ष

भारत में कृषि सभ्यता और कृषक समाज के साक्ष्य सिंधु घाटी सभ्यता से ही प्राप्त होते हैं। सिंधु घाटी सभ्यता में कृषि समाज का हिस्सा नहीं बन पाई थी। जंगलों में उगे धान के पौधों को देखकर यह अनुमान लगाया गया कि यह मनुष्य के खाने की चीज है। यह मानव के जीवन की महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, जब उसने अन्न के दानों की खोज की। सिंधु घाटी सभ्यता में पुरुष वर्ग का कार्य जंगलों में जाकर शिकार करना था, वहीं दूसरी ओर स्त्रियों का काम भोजन का बंदोबस्त करना और रहन-सहन की समुचित व्यवस्था करना था। इस समय में स्त्रियों का दायित्व पुरुषों से अधिक था। सिंधु घाटी सभ्यता में ही मनुष्य की विभिन्न प्रकार के अन्न के दानों से पहचान हुई। किंतु यहाँ से हम कृषि सभ्यता की शुरुआत नहीं मान सकते हैं, क्योंकि अभी तक मनुष्य को अन्न के दानों से पौधे उगाने का ज्ञान नहीं था। इस संदर्भ में इरफान हबीब ने भी कहा है- "जब पौधे के बीज जंगलों में एकत्र किए जाते थे, तो निश्चय ही यह कृषि नहीं थी।"[1]

सिंधु घाटी सभ्यता में कृषि का विकास नहीं हो पाया था, किंतु कृषि से जुड़े कई तरह के बीजों की खोज इसी सभ्यता में हुई थी। इस दृष्टि से इस सभ्यता का मानव के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। अनिल चमड़िया एवं जसपाल सिंह ने अपने लेख 'कृषि संदर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू' में इस बात को स्पष्ट किया है कि- "लगभग पांच हजार वर्ष पूर्व पहले सिंधु घाटी सभ्यता में गेहूं की खोज की गई। तेलों के बीज, मटर, मैसूर की दाल, जौ की खोज भी इसी सभ्यता में की गई। इस सभ्यता की सबसे बड़ी भूमिका यह है कि इसमें हल और चक्के वाली गाड़ी का सिंचाई की प्रक्रिया का विकास किया गया।"[2] अन्न के दानों की खोज के साथ ही जब मनुष्य को इस बात का ज्ञान हुआ कि अनाज के इन दानों से एक नया पौधा भी उग सकता है। तो उन्होंने भूमि में अन्न के दानों को गाड़ना शुरू कर दिया। इस तरह से बीजों से अनाज उपजाने और उनके संग्रहण की भी शुरूआत हुई। मनुष्य ने इसी सभ्यता में खेती के लिए हल

की भी खोज की। कृषि के लिए उपयोगी पशुओं का पालन भी मनुष्य करने लगा। जौ और गेहूं के अतिरिक्त अन्य अनाज भी उपजाए जाने लगे। इतिहासकार इरफ़ान हबीब ने भी कहा है कि-"सिंधु घाटी के लोग गेहूं और जौ दोनों की खेती करते थे जो मानक आधुनिक भारतीय किस्में हैं, गुजरात के सिंधु नदी घाटी स्थलों पर बाजरा के दाने के साथ-साथ चावल पाया गया है। मटर, दाल और तिल और शलजम की प्रजातियाँ तिलहन हैं। सिंधु नदी घाटी की सबसे महत्वपूर्ण फसल कपास है जो सबसे पहली औद्योगिक फसलों में से एक है।"[3]

भारत में सिंधु घाटी सभ्यता के समाप्त होते ही आर्यों का आगमन हुआ। प्राप्त सक्ष्यों के आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि आर्यों के आगमन के पश्चात ही सिंधु घाटी सभ्यता पूरी तरह नष्ट हुई थी। अनुमानित रूप से यह कहा जाता है कि आर्यों ने ही सिंधु घाटी सभ्यता को नष्ट किया था। प्राचीन काल में आर्यों के लिए उनके पशु ही उनकी संपत्ति थे। वे खेती करने के साथ-साथ चरवाही आदि का कार्य भी किया करते थे। गेहूं और जौ के अतिरिक्त वे कुछ अन्य अनाजों की भी खेती किया करते थे। आर्य सभ्यता में भूमि पर मालिकाना हक़ कृषकों का ही होता था अर्थात भूमि कोई सामुदायिक सम्पत्ति नहीं होती थी। जमीन को खेतों में विभक्त करके कृषकों द्वारा खेती की जाती थी।'भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना' पुस्तक में इरफ़ान हबीब जी ने स्पष्ट किया है- "भूमि खेतों में विभक्त थी जिन पर अलग-अलग कृषकों द्वारा खेती की जाती थी और जिन्हें इन खेतों का मालिक (क्षेत्रपति आदि) कहा जाता था। चारागाह की भूमि संभवतया अविभाजित थी और यह समूचे गाँव के मवेशियों के लिए खुली होती थी। खेतों पर मालिकाना अधिकार स्थाई था या खानदानी या सामुदायिक आवंटन के द्वारा बदला जा सकता था, यह ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता है। दरअसल खेती स्थाई नहीं बल्कि प्रवासी प्रकृति की थी, जिसकी सम्भावना भूमि प्रचुरता की स्थिति में अधिक होती थी।"[4]

आर्य सभ्यता के विस्तार के साथ ही देश में विभिन्न राजाओं का आगमन हुआ और राजतन्त्र की स्थापना हुई। राज्य के विस्तार एवं समृद्धि के कारण ही राजा अपने को प्रजा का स्वतंत्र स्वामी होने का

दावा करने लगे। धीरे-धीरे राज्य के नागरिक एवं समस्त कार्य राजा के अधीन होने लगे। राजा सम्पूर्ण भूमि और सम्पत्ति का मालिक बन गया। समाज को धार्मिक, आर्थिक और सामाजिक आधार पर कई वर्गों में विभक्त कर दिया गया। राज्य में व्यवसाय को भी विभिन्न वर्गों में विभाजित किया गया। गाँव की सर्वाधिक जनसंख्या किसानों की थी जिनका कार्य खेती एवं पशुपालन था। राजा इन किसानों की उपज का एक हिस्सा कर के रूप में लेता था। 'भारत का बृहत् इतिहास' पुस्तक (प्राचीन भारत) में रमेशचन्द्र मजुमदार जी का कहना है- "किसान गाँवों में रहते थे, जिनकी संख्या प्रत्येक राज्य में बहुत अधिक थी। गाँवों को बहुत अंशों में स्वायत्त शासन प्राप्त था, यद्यपि वे राजा के अधीन थे। ऊपर कहे गए कर राजा को गाँव से मिलते थे और कभी-कभी वह गाँव के मुखिया या गाँव के कर्मचारियों की नियुक्ति की मांग करता था, जो उसके लिए गाँव से कर एकत्रित करते थे। कृषि-भूमि में राजा का अधिकार शायद उपज के एक हिस्से तक ही सीमित था। राजा सरकारी कर माफ़ कर सकता था या जिस-किसी को भी चाहता, दे सकता था।"[5]

राज्य की सम्पूर्ण शक्ति का अधिकार राजा के हाथ में होता था। राजा ही गाँव के संपूर्ण किसानों को भूमि खेती करने के लिए देता था। चरवाहे का काम मवेशी चराना होता था। गाँव की सार्वजनिक भूमि चरवाहे के मवेशी चराने के काम आती थी। राजा की तरफ से कुछ कर्मचारी नियुक्त किए जाते थे जिनका काम विभिन्न कार्यों में लगे लोगों से कर वसूलना होता था। राज्य के सम्पूर्ण कार्य राजा के आदेशानुसार ही होते थे- "ग्रीक लेखकों के अनुसार उपज के चौथाई भाग के अतिरिक्त किसान एक भूमि कर देता था, क्योंकि सम्पूर्ण भारत राजा की सम्पति है और कोई भी व्यक्ति भूमि को अपना समझकर नहीं रख सकता है।"[6]

प्राचीनकाल से ही भारत का बाह्य जगत से संबंध रहा है। यहाँ पर आर्य और द्रविड़ों के आगमन के साथ ही भारत से इनका गहरा सम्बन्ध जुड़ गया। प्राचीनकाल में कृषकों की दशा सामान्य रही। भारत में इस्लाम के प्रवेश के साथ ही यहाँ की सामाजिक परिस्थितियों में भी परिवर्तन हुए एवं कृषि क्षेत्र में भी

नए-नए परिवर्तन हुए। कृषि सम्बन्धी नई तकनीकों एवं औजारों का विकास मध्यकाल में ही हुआ। कृषि तकनीकों के विकसित होने से कृषि क्षेत्र का भी विस्तार हुआ। इस काल में ही कृषि क्षेत्र में नई फसलें जैसे तम्बाकू, रेशम की पैदावार पर जोर दिया गया। मुग़लकाल में भी भूमि राजा की ही सम्पत्ति रही। वे किसानों को खेती करने के लिए जमीन देते थे, बदले में उनसे कर लेते थे। इरफ़ान हबीब का कथन उल्लेखनीय है कि- "किसानों के जमीन पर दावा। सचमुच, चौदहवीं सदी का एक दस्तावेज कहता है, किसान पैदा स्वतंत्र होते हैं लेकिन कर अदा करने के दायित्व के निर्वहन के लिए जरुरी है कि वे जिन गाँवों में खेती कर रहें हैं उनके साथ जुड़े रहें। किसानों को जमीन जोतने के लिए मजबूर करने, उन्हें यह छोड़ने से रोकने और यदि वे ऐसा करते हैं तो उन्हें वापस लाने का अधिकार अधिकारियों को था और मुग़लकाल में यह कई अवसरों पर व्यक्त किया गया है।"[7]

मध्यकाल में ही सामंतवाद का विस्तार हुआ। राजा का अधिकार क्षेत्र विस्तृत होने के कारण इस प्रथा का विस्तार हुआ। सामंतवाद में भूमि का बहुत बड़ा महत्व है। इस प्रथा में नियुक्त किए गए सामंत ही किसानों की जमीन के मालिक होते थे। सामंतों का जीवन सुख-सुविधाओं से भरा-पूरा होता था। वे राजा द्वारा निर्धारित कर किसानों से वसूल कर राजा को देते थे। रामशरण शर्मा का कथन है कि-"भारत में अंग्रेजी राज्य की स्थापना से पूर्व सामंतवाद कई बार आया। लेकिन हम सामंतवाद को एक ऐसी व्यवस्था के रूप में देखें, जिसमें किसानों की जमीन और देह पर अपने उच्चतर अधिकारों के द्वारा श्रीमंत-वर्ग उपज का सारा अतिरिक्त हिस्सा हड़प लेता था और किसानों के पास उतना ही छोड़ता था जितना खा-पहन कर वे उस वर्ग के लाभ के लिए आगे भी मेहनत-मशक्कत करते रह सकें।"[8] सामंतवाद का आधार ही भारत का कृषक समाज था। छोटे सामंत हों या बड़े वे किसानों से वसूले गए कर पर ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। राजा और सामंत मिलकर किसानों का शोषण करते थे। किसानों पर सामंत की तरफ से तरह-तरह की पाबंदियां थीं उन्हें सामंतों के आदेशानुसार ही सारे कार्य करने पड़ते थे। अपने खेतों के साथ-साथ उन्हें सामंतों के खेतों में भी बेगार के तौर पर कार्य करने पड़ते थे। 'विश्व इतिहास की भूमिका'

पुस्तक में रामशरण शर्मा का कथन है कि-"किसानों पर तरह-तरह की पाबंदियां थीं। सबसे पहली यह कि प्रत्येक किसान को अपने सामंत के 'मैनरवाली' (खुदकाश्त) जमीन पर बिना मजदूरी के हफ्ते में दो या तीन दिन काम करना पड़ता था। यही नहीं, फसल के समय में और दूसरे मौके पर भी उनसे तरह-तरह की बेगारी ली जाती थी जिसे 'कार्वी' कहते हैं। जब फसल काटने की धूम मची होती, तो उसे सबसे पहले अपने मालिक की जोतवाली जमीन में फसल काटने जाना पड़ता था। उसे सबसे पहले मालिक के खेत को जोतना पड़ता था।"[9]

मध्यकाल की सामंती प्रथा आधुनिक काल में अंग्रेजों के आगमन के साथ ही जमींदारी प्रथा के रूप में परिवर्तित हो गयी थी। अंग्रेजों के आगमन के साथ ही भारत में कृषक और मजदूरों की दशा दयनीय हो गयी। अंग्रेजों के आगमन और ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना ने लगान वसूली के लिए तरह-तरह के कानून बनाए। भारत के अलग-अलग भागों में स्थाई-बंदोबस्त, रैयतवारी और महलवारी व्यवस्थाएं लागू की गईं। स्थाई बंदोबस्त के अंतर्गत कम्पनी द्वारा नियुक्त किए गए जमींदार किसानों से लगान वसूल करते थे। लगान वसूल करने की इस व्यवस्था का सुझाव 1793 में कार्नवालिस ने दिया था। उन्होंने यह सुझाव दिया- "भू-राजस्व की वसूली जमीदारों के हाथ हो, वे प्रजा से कितना वसूल करें, इस बारे में कम्पनी को कुछ तय नहीं करना है। जो भूमि-कर कंपनी को दीवान देता है, वही उसकी जगह जमींदार दे तो हमें कोई फर्क नहीं पड़ता। और अगर जमींदार भू-राजस्व न दे सके तो उसकी जमींदारी खत्म करके उसकी जगह नए जमींदार को बिठा दिया जाए।"[10]

कार्नवालिस की तरफ से कंपनी को कर वसूली के लिए जो सुझाव दिए, वह किसानों के लिए नासूर बन गयी। कंपनी द्वारा नियुक्त जमींदार अपनी जमींदारी बनाए रखने के लिए किसानों से मनचाहा लगान वसूला करते थे। कभी-कभी किसान की पैदावार अच्छी नहीं होती थी तब भी उन्हें तय लगान अदा करना पड़ता था। किसान के घर में खाने के लिए अनाज नहीं होने पर भी उन्हें लगान देने के लिए मजबूर किया जाता था। कभी-कभी अन्न की खेती न करके उस उपज की खेती करते थे जिसे वे खाने के

लिए इस्तेमाल न कर सकें। ऐसा इसलिए होता था ताकि वे कर चुका सकें। 'आधुनिक भारत' में इतिहासकार सुमित सरकार का कथन है कि- "कोयंबटूर के किसानों ने एक बार एक अंग्रेज जिलाधीश से कहा था कि वे कपास की खेती केवल इस कारण से कर रहे हैं कि वे कपास को खा नहीं सकते। यदि वे अन्न उगाते तो उसे खा डालते और फिर लगान भरने का पैसा कहाँ से आता। अब वे आधे पेट रहते हैं, किंतु लगान तो चुका सकते हैं।"[11]

रैयतवारी प्रथा को टॉमस मुनरो ने सीधे किसानों से लगान वसूलने के उद्देश्य से लागू किया था। महलवारी प्रथा में गाँव के सम्पूर्ण किसानों से गाँव का मुखिया कर वसूल कर कम्पनी को देता था। प्राचीनकाल से मध्यकाल और आज आधुनिक काल तक किसान विभिन्न परिस्थितियों का सामना करता आ रहा है। समाज की परिस्थितियाँ तो समय-समय पर बदलती रहीं, किंतु किसान की स्थिति वही रही जो प्राचीनकाल में थी। आज इक्कीसवीं सदी में भी किसान समस्याओं से ही गुजर रहा है। किसान इसी परिस्थिति में लगभग पांच हजार सालों से जीवन व्यतीत कर रहा है।

1.1 किसान से अभिप्राय

क) सुप्रसिद्ध इतिहासकार इरफ़ान हबीब के शब्दों में- "किसान वह है जो स्वयं के परिश्रम, अपने औजारों एवं अपने परिवार की श्रम शक्ति से कृषि कार्य करता है।"[12]

ख) संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर के अनुसार किसान का अर्थ है- "कृषि या खेती करने वाला।"[13]

ग) राजपाल हिन्दी शब्दकोश में- ''किसान का अर्थ खेती, कृषक कार्य से है।"[14]

घ) ऑक्सफ़ोर्ड डिक्शनरी के अनुसार- "किसान का अर्थ खेती करना, जमीन को फार्म के रूप में प्रयोग करना।"[15]

ड.) भारत विश्वकोश के अनुसार-"किसान ऐसे लोगों को कहा गया है, जो अपनी आजीविका और जीवन का गुजर-बसर खुद भूमि जोतकर चलाते हैं, जो स्वयं के उपभोग के लिए उत्पादन करते हैं तथा जिनका स्वयं पर नियंत्रण होता है, साथ ही जिनकी पारम्परिक ग्रामीण जीवन शैली होती है।"[16]

च) मार्क्सवादी विचारकों के अनुसार- "ऐसे व्यक्तियों को किसान कहा जाता है जो ग्रामीण परिवेश में पारिवारिक आधार पर कृषि संबंधित सभी कार्य परिवार जनों के सहयोग से सम्पादित किये जाते हैं।"[17]

छ) सामाजिक मानवशास्त्रियों ने- "किसानों के सांस्कृतिक रीति, रिवाजों, आदतों और मानदंडो के साथ-साथ उनकी संकुचित दृष्टि और परम्पराओं से चिपके रहने की प्रवृत्ति के आधार पर की है।"[18]

इन परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि किसान का अर्थ है कृषि कार्य से जुड़ा हुआ व्यक्ति, वह जो खेती का काम करता हो, खेतों को जोतने, बीज बोने से लेकर फसल उगाने तक का कार्य करता है। इस अर्थ में किसान सीधे-सीधे उस व्यक्ति को माना जायेगा जो जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं का खेत में उत्पादन करता है। ऐसे व्यक्ति स्वयं और अपने परिवार की सहायता से कृषि संबंधी कार्यों को करते हैं औऱ इनके परिवार की जीविका का मुख्य साधन भी खेती ही होती है।ऐसे ही व्यक्ति को समाज में कृषक की संज्ञा दी जाती है।

1.2 किसान के प्रकार

हमारे देश में किसानों को कई श्रेणियों में विभाजित किया गया है बड़े किसान, मध्यम किसान, लघु किसान, भूमिहीन एवं स्त्री किसान।

क) भू-स्वामी या बड़े किसान

भू-स्वामी का अर्थ होता है 'भूमि का मालिक'। आज के समय में बड़े किसान उन किसानों को कहा जाता है जिनके पास कम से कम 10 हेक्टेयर भूमि हो। जमींदार, भू-स्वामी या बड़े किसान के पास भारत की कृषि योग्य भूमि का अधिकांश हिस्सा होता है। ये स्वयं खेती न करके मजदूरों से खेती करवाते

हैं। 'पंजाब का कृषि क्षेत्र बदलती जमीनी हकीकत और संघर्ष का निशाना' लेख में 'जगरूप' जी ने कहा है कि- "जो किसान जमीन की जोत बड़ी होने के चलते उत्पादन में परिवार की मेहनत के साथ-साथ, भाड़े के श्रम से, दिहाड़ीदार आदि रखकर खेती करता है, उसे बड़ा किसान कहा जाता है।"[19] औपनिवेशिक काल से पहले भारत में सामंती प्रथा का प्रचलन था। इन सामंतों को राजा द्वारा नियुक्त किया जाता था। यद्यपि सामंती प्रथा स्वतंत्रता के पश्चात समाप्त हो गयी, किन्तु भू-स्वामी के रूप में यह प्रथा अब भी जीवित है।

राजा द्वारा सामंतों की नियुक्ति के साथ ही उनको कुछ विशेषाधिकार भी दिए जाते थे। राज्य के किसान एवं मजदूर इन्हीं सामंत के अधिकार-क्षेत्र में आते थे। रामशरण शर्मा ने सामंत के अधिकार-क्षेत्र के बारे में 'विश्व इतिहास की भूमिका' पुस्तक में स्पष्ट किया है- "सामंतवाद में शासक वर्ग के पास बड़ी-बड़ी पुश्तैनी जमींदारियाँ थीं। बड़े-बड़े भूमिपति अपनी जमीन का कुछ हिस्सा अपने पास रख लेते थे फौजी सेवा करने की शर्त पर वे छोटे-छोटे भूमिपतियों को देते थे। भूमिपति छोटे हों या बड़े किन्तु उनकी अपनी-अपनी जमीन एक ही ढंग से जोती जाती थी।"[20] सामंतों को राजा द्वारा जागीरें भी प्रदान की जाती थी। साथ ही राजा सामंतों को और भी तमाम अधिकार देता था। कभी-कभी किसी विशेष मुद्दे पर बातचीत करने के लिए या कोई महत्वपूर्ण फैसला लेते समय भी राजा के द्वारा इन्हें दरबार में बुलाया जाता था। ये राजा को प्रभु मानते थे। इनका कार्य राजा को प्रसन्न रखना होता था। इन्हें राजा को उपहार आदि भी देने पड़ते थे। विवाह आदि अवसरों पर राजा की संतानों के लिए भी इन्हें भेंट चढ़ाने पड़ते थे। सामंतो के प्रति राजा के भी कुछ कर्तव्य निर्धारित होते थे जैसे कि वह अपने सामंतों की रक्षा करेगा, अकारण उनसे उनकी भूमि नहीं छीनेगा आदि। यह प्रथा पीढ़ी दर पीढ़ी चलती थी। सामंत की मृत्यु के पश्चात यह जागीर उसके पुत्र या पुत्री को दे दी जाती थी।

जिस प्रकार राजा अपने सामंतो की रक्षा करता था उसी प्रकार सामंत का भी यह कर्तव्य होता था कि कठिन समय में वह किसानों की मदद करें। वह किसानों से लगान वसूल कर राजा तक पँहुचाता था।

खराब फसल होने पर या अकाल आदि पड़ने पर कभी-कभी किसानों का लगान माफ भी कर दिया जाता था। सामंतो की कमाई का जरिया किसानों से प्राप्त लगान ही होता था। किसानों को सामंतों के यहाँ बेगार भी करनी पड़ती थी। अपने खेती के काम से पहले सामंतों के खेतों के कार्यों को करना पड़ता था। रामशरण शर्मा के शब्दों में- ''सच कहा जाए तो सारी सामंत प्रथा का आधार किसान वर्ग ही था। ऊपर के सामन्त चाहे बड़े हों या छोटे, गृहस्थ हो अथवा पादरी सब के सब किसानों की कमाई पर मौज उड़ाते थे। गृहस्थ सामंत लड़ते थे और पादरी पूजा करते थे। दोनों मिलकर राज चलाते थे और दोनों को खिलाने पिलाने का काम किसानों का था।''[21]

प्राचीन और मध्यकाल की सामंती व्यवस्था आधुनिक काल में जमींदारी व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हो गई किन्तु जमींदारों द्वारा किसानों का और भी अधिक शोषण किया जाने लगा। 1789 में फ्रांसीसी क्रांति हुई, जिसका कारण ही था जमींदारी प्रथा का खात्मा। फ्रांसीसी क्रांति के फलस्वरूप फ्रांस में जमींदारी प्रथा जड़ से समाप्त हो गई। अर्थात जब अमेरिका एवं रूस अपने को इस प्रथा से मुक्त कर रहे थे, ठीक उसी समय 1793 में भारत में जमींदारी प्रथा की शुरूआत हुई यह अपने आप में बहुत ही बिडंबनापूर्ण स्थिति थी। जब समस्त देश अपने को इस अभिशाप से मुक्त कर रहा था तब भारत में इस प्रथा की शुरूआत हो रही थी। स्वामी सहजानंद सरस्वती जमींदारों के बारे में कहते हैं- ''जमींदारी का अर्थ है किसानों की वास्तविक स्थिति से कोई संपर्क न रखते हुए उनसे मालिकाना (पावना) वसूल करना। इस जमींदारी के चलते रक्त चूसने वाले का एक दल ऐसा पैदा हो गया है जो केवल लगान वसूला करता है, जिसके अनेक रूप और विभिन्न नाम पाए जाते हैं और जिसका सिर्फ यही पेशा है कि किसानों के पसीने की गाढ़ी कमाई पर मौज उड़ाएं।''[22] सहजानंद सरस्वती जी के कथन से स्पष्ट है कि समाज में हमेशा से सरकार और किसानों के बीच कोई न कोई बिचौलिये का काम करता रहा है जो किसानों की बिगड़ती दशा के लिए जिम्मेदार है। सामंती प्रथा और जमींदारी प्रथा में जो स्थान सामंत और जमींदार

का होता था आज वही स्थान भू-स्वामी अर्थात बड़े किसानों का है। किसानों का ये वर्ग खेतों में मजदूर लगाकर काम करवाता है एवं खेती उनके लिए एक व्यवसाय के रूप में काम करती है।

ख) मध्यम किसान

जमींदारों या बड़े किसान के बाद किसानों की एक श्रेणी मध्यम किसानों की है। वर्तमान समय में मध्यम किसान ऐसे किसानों को कहा जाता है जिनके पास 10 हेक्टेयर से कम और 5 हेक्टेयर से ज्यादा भूमि हो। किसानों की श्रेणियों के वर्गीकरण में मार्क्सवाद के अनुसार-"मध्यम किसान उसे कहा जाता है जो मुख्यतः पारिवारिक श्रम का उपयोग करते हैं।"[23] मध्यम किसान अपनी जमीन पर कृषि करके अपनी जीविका चलाने में सक्षम होते हैं। इनके पास बड़े किसानों जितने पर्याप्त संसाधन नहीं होते हैं किन्तु ये अपने स्तर से खेती करने में सक्षम होते हैं। मध्यम किसान पारिवारिक श्रम और खेतिहर मजदूरों के सहयोग से खेती करते हैं। इन्हें अपनी जीविका चलाने के लिए किसी और की भूमि पर मजदूरी करने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। मध्यम किसानों की स्थिति से हमारा परिचय स्वामी सहजानंद सरस्वती इन शब्दों में करवाते हैं- "मध्यवर्गीय या खाते पीते किसानों की बात। ये वही हैं जिनकी खेती की पैदावार अपने काम चलाने से कुछ ज्यादा होती है। इनके खेत चाहे अपने होते हैं या जो औरों से पट्टे या लगान पर खेत लेकर खेती करते हैं। इनकी खेती में मजदूरों से भी काम करवाया जाता है और इनका अपना परिवार भी काम करता है।"[24] मध्यम किसान ही समाज का वो वर्ग है जो स्वयं की भूमि पर अपना गुजारा करने में सक्षम होते हैं।

ग) लघु एवं सीमांत किसान

मध्यम किसानों के बाद नाम आता है लघु एवं सीमांत किसानों का। लघु एवं सीमांत किसानों की स्थिति आज के समय में अत्यंत ही दयनीय है। लघु किसानों के पास 5 हैक्टेयर से कम और 1 हेक्टेयर से अधिक भूमि होती है। इस संदर्भ में मैत्रेयी कृष्णराज ने कहा है कि- "12 फ़ीसदी किसानों के पास 1 से 2 हेक्टेयर तक जमीन है जिन्हें छोटे किसान कहा जाता है।"[25] वहीं यदि हम सीमांत किसानों की बात करें

तो इनके पास 1 हेक्टेयर या उससे कम जमीन होती है। 'भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता मार्गदर्शिका' पुस्तक में भी ये उल्लेख मिलता है कि- "सीमांत किसान उन्हें कहेंगे जिसके पास एक हेक्टेयर से अधिक जमीन न हो।"[26] हमारे देश में लगभग 67.04% परिवार लघु एवं सीमांत किसानों की श्रेणी में आते हैं। लघु एवं सीमांत किसानों के पास खेती से संबंधित पर्याप्त संसाधनों का अभाव होता है। वे किराये पर भी इन संसाधनों की सहायता से खेती करने में असमर्थ होते हैं क्योंकि इनके पास इतनी भी भूमि नहीं होती कि वे इनका खर्च वहन कर सकें। जमीन के अभाव में ही इन्हें तमाम समस्याओं से गुजरना पड़ता है। जसपाल सिंह सिद्धु एवं अनिल चमड़िया ने अपने लेख 'कृषि संदर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू' में यह कहा है कि- ''सीमांत किसान उन्हें कहते हैं जिनके पास जमीन का बेहद छोटा टुकड़ा होता है।''[27] पूंजीवाद से पहले हमारे देश में पांरपरिक तरीके की खेती प्रचलन में थी। किसानों के पास कम से कम एक बैलों की जोड़ी होती थी, जिनकी सहायता से वो अपनी फसल की बुआई कर लेते थे, किन्तु आज की कृषि मशीनों पर आधारित हो गई है। किसानों को टैक्टर, थ्रेसर आदि की सहायता से खेती करना पड़ता है। इसका नतीजा उनको खेती से मिलने वाला लाभ भी इन्हीं संसाधनों को जुटाने में चला जाता है। खुद के पशु होने से छोटे किसानों को खेती करने में अतिरिक्त धन व्यय नहीं करना पड़ता था।

प्राकृतिक आपदाओं का भी सर्वाधिक प्रभाव छोटे एवं सीमांत किसानों पर ही पड़ता है। बाजारीकरण के परिणामस्वरूप इन्हें अपने अनाज को मंडी तक पहुंचाने में भी अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ता है। 'देस हरियाणा' पत्रिका में छोटे किसानों की स्थिति को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है- ''कृषि क्षेत्र में छोटी जोत के किसान के लिए कोई जगह नहीं है। भारत में 85 प्रतिशत किसानों पर 2 एकड़ से कम जमीन है। आंकड़े बताते हैं कि छोटे किसान गैर संस्थागत स्त्रोत साहूकार से 95 प्रतिशत ऋण लेते हैं। सरकार की ओर से कर्ज माफी, सरकारी सब्सिडी, संस्थागत खर्च, प्रोत्साहन और सहूलियतों का लाभ बड़े किसान को मिलता है। खुदकुशी करने वालों में बड़ी संख्या में छोटे किसान हैं।"[28] सरकार द्वारा चलायी जा रही योजनाओं का लाभ भी ज्यादातर बड़े और मध्यम किसानों को ही

मिल पाता है। लघु एवं सीमांत किसान इन योजनाओं के लाभ से वंचित रह जाते हैं, इन्हें इन योजनाओं की पर्याप्त जानकारी नहीं होती है और यदि होती भी है तो सरकारी कार्यालय एवं बिचौलियों के चक्कर काट-काट कर ये इतना ऊब जाते हैं कि इन्हें इन योजनाओं में कोई रूचि ही नहीं रह जाती है। देश में बड़े किसानों की संख्या कम होते हुए भी खेती योग्य भूमि का अधिकांश हिस्सा उन्हीं के पास है।

छोटे एवं सीमांत किसान कम भूमि पर किसी तरह से अपना गुजर बसर करने को मजबूर हैं। सरकार की तरफ से इनकी स्थिति में सुधार लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। जो योजनाएं चलाई जा रही हैं उनसे इनकी स्थिति और भी बदतर होती जा रही है। कारण यह है कि योजनाएं छोटे एवं सीमांत किसानों को ध्यान में रखकर बनाई ही नहीं जाती हैं। इस संदर्भ में अनिल चमड़िया जी का कथन है कि- ''छोटे किसानों की गरीबी बढ़ती जा रही है। प्रक्रिया यह चल रही है कि जिसमें छोटा किसान कर्जे में चला जाता है या खेती से ऊबता जा रहा है और बड़े किसानों और कार्पोरेट हाउसों के लिए जमीन हड़पने का मौका बढ़ता जा रहा है।''[29] इनके पास कम भूमि होती है इसलिए अनाज का उत्पादन भी कम होता है। धनाभाव के कारण इन्हें अपना अनाज बेचने में भी परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इनके पास अनाज भंडारण की भी समुचित व्यवस्था नहीं होती है इसलिए कम मूल्य पर ये अपना अनाज तत्काल बेचने पर मजबूर होते हैं। मंडियों में भी इन्हें कोई जगह नहीं मिलती है, इसलिए मजबूर होकर इन्हें छोटे व्यापारियों को ही अपनी उपज बेचनी पड़ती है। परिणामस्वरूप सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम समर्थन मूल्य भी इन्हें नहीं प्राप्त हो पाता है।

घ) भूमिहीन किसान

लघु एवं सीमांत किसानों के बाद आते हैं भूमिहीन किसान या खेतिहर मजदूर। इन किसानों की जीविका दूसरों के खेतों में श्रम करके चलती है इसलिए इन्हें खेतिहर मजदूर कहते हैं। खेतिहर मजदूर की परिभाषा 'भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता पुस्तक में इस प्रकार मिलती है- ''खेतिहर मजदूर का तात्पर्य ऐसे व्यक्ति से है जिसकी जीविका का मुख्य साधन खेती संबंधी मजदूरी हो।''[30] वर्तमान समय की कृषि

प्रणाली के कारण ही लघु एवं सीमांत किसान खेतिहर मजदूर वर्ग में शामिल होते जा रहे हैं। खेतिहर मजदूर वर्ग के पास भूमि का बहुत ही छोटा टुकड़ा होता है जिससे इनका गुजारा होना मुश्किल होता है। भारत में खेतिहर मजदूरों की संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। जी.एस.भल्ला के अनुसार- ''2001 की जनगणना के अनुसार कृषि में संलग्न सभी लोगों के सापेक्ष में खेतिहर मजदूरों का अनुपात 1971 के 37.8 प्रतिशत से बढ़कर 2001 तक 45.6 प्रतिशत हो गया। इस दौरान(1971 से 2001 तक), खेतिहर मजदूरों की संख्या 2.74 प्रतिशत प्रतिवर्ष की चक्रवृद्धि दर दर्ज करते हुए 45.7 मिलियन से 106.8 मिलियन हो गई, यह वृद्धि दर संपूर्ण कृषि में संलग्न लोगों के लिए 2.07 प्रतिशत थी।''[31] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि देश में दिन-प्रतिदिन खेतिहर मजदूरों की संख्या बढ़ रही है। इसका एक कारण संयुक्त परिवारों का विखंडन भी है जिससे उनकी भूमि आपस में बंट जाती है। पहले से ही कम भूमि परिवार के विघटन के पश्चात और भी कम हो जाती है। कम भूमि पर जीवनयापन असंभव होने के कारण ही इन्हें दूसरों के खेतों में मजदूरी करनी पड़ती है। खेती-किसानी का काम ही सामूहिक होता है। इस संदर्भ में एम.एन. श्रीनिवास जी का कथन है कि- ''कई मामलों में बड़ा परिवार समूह छोटे परिवार समूह से कहीं दक्ष उत्पादक इकाई सिद्ध होता है। खासकर वहां-जहां लगातार काम करने की जरूरत होती है, जैसे कि फसल की कटाई के दिनों में जब मजदूर जुटाकर उनसे तेजी से काम करवाना होता है। छोटे संयुक्त परिवार की तुलना में बड़ा संयुक्त परिवार औजारों और पशुओं के लिए पूँजी सुविधा से जुटा पाता है। इस प्रकार भूमि-सुधार का एक अनदेखा लेकिन अवश्यम्भावी पक्ष अपेक्षाकृत छोटे परिवारों की तरफ धकेलना और परिणामस्वरुप कृषि दक्षता में कुछ कमी है।''[32] परिवारिक विघटन के पश्चात छोटे एवं सीमांत किसानों की भूमि छोटे-छोटे टुकडों में बंट जाती है। समय के साथ जैसे ही इन किसानों पर कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है इनकी भूमि इनसे छिनती जाती है और ये भूमिहीन हो जाते हैं। यही कारण है कि ये मजदूरी करने पर मजबूर हो जाते हैं। इन खेतिहर मजदूरों की भी कई श्रेणियाँ होती हैं जैसे बटाईदार किसान, ये किसान बड़े किसान या मध्यम किसानों की भूमि कुछ समय के लिए ले लेते हैं और उस पर कृषि करते हैं और उत्पादन

का एक निश्चित भाग वे उनको देते हैं। प्राचीन एवं मध्यकाल में इन्हीं खेतिहर मजदूरों को 'कम्मी' कहा जाता था। उस समय में उन मजदूरों की स्थिति इतनी दयनीय नहीं होती थी जितना कि आज के समय में है। इनके पास एकाध एकड़ जमीन होती थी। ये सामंतों की जमीन से जुड़े रहते थे। इन्हें उनके यहाँ जीवन भर बेगार करनी पड़ती थी। उस समय में 'कम्मी' की स्थिति का वर्णन पोप इन्नोसेंट तृतीय (1198-1916) ने अपने शब्दों में किया है- "कम्मी सेवा करता है, उसे धमकियों से डराया जाता है, बेगारियों से तंग किया जाता है, चोटों से कष्ट दिया जाता है। साम्पत्तिक अधिकारों से वंचित रखा जाता है, क्योंकि उसके पास कुछ नहीं रहता है तो उसे मजबूर होकर कमाना पड़ता है और यदि उसके पास कुछ रहता है तो उसे नहीं रखने को बाध्य किया जाता है, मालिक का कसूर कम्मी की सजा है, कम्मी का कसूर मालिक के लिए उस पर टूट पड़ने का बहाना है।"[33]

इससे स्पष्ट होता है कि खेत-मजदूरों की स्थिति हमेशा से दयनीय ही रही है। आजादी के बाद भूमि सुधार प्रक्रिया के लागू होने के बावजूद देश में खेतिहर मजदूर बढ़ते ही जा रहे हैं। इनकी जीवन शैली में कोई परिवर्तन नहीं आया। बटाईदार किसान दूसरों की जमीन पर खेती तो करते हैं। किन्तु किसी प्राकृतिक आपदा आने पर या किसी अन्य कारणवश खेती की पैदावार घटने या नष्ट होने पर उन्हें सरकार द्वारा चलायी गयी नीतियों का कोई लाभ नहीं मिल पाता, क्योंकि जमीन उनके नाम नहीं रहती। इसलिए सरकार द्वारा दिए जाने वाले मुआवजे का लाभ भी उनके मालिकों को ही मिलता है। खेतिहर मजदूरों में वे किसान भी शामिल हैं जो बड़े किसानों के यहाँ उनके पशु के चरवाहे के तौर पर नियुक्त किये जाते हैं। उनके बाग की रखवाली करते हैं, मुर्गी पालन का काम करते हैं। इसके साथ ही साथ उन्हें किसानों के घर बेगार भी करनी पड़ती है। पहाड़ी क्षेत्र के किसानों का जनजीवन मैदानी क्षेत्र के किसानों से भिन्न होता है। आजादी से पहले ये लोग झूम खेती किया करते थे। ठंड में दीवाली के बाद ये लोग बड़ी संख्या में तराई भाबर चले जाते थे और वहाँ झाड़ियों और पेड़ों को काटकर समतल भूमि बना लेते थे और एक फसल बोते थे और होली से पहले अपने गाँव लौट आते थे। यह अवधि छः महीने की होती, किन्तु आजादी के बाद

औपनिवेशीकरण के दौर में यह सब समाप्त हो गया जिससे यहाँ के किसानों को खेती करने में असुविधा होने लगी। परिणामस्वरुप लोग पहाड़ों से शहरों की तरफ पलायन करने लगे। इस संबंध में धीरेन्द्र झा के लेख 'खेत मजदूर : हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप' में भी उल्लेख मिलता है- ''विश्व व्यापार नियंत्रित भारतीय कृषि नीति ने जिस कृषि संकट को पैदा किया है उसकी सबसे ज्यादा मार गाँव के खेत मजदूरों पर पड़ी है, कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों पर बेतहाशा कमी आई है, रोजगार के लिए मजदूरों का पलायन बड़े पैमाने पर हो रहा है।"[34] इस प्रकार से आज के बदलते समय में खेतिहर मजदूरों की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है।

ङ) महिला किसान

प्राप्त साक्ष्यों के अनुसार सर्वप्रथम महिला के हाथों ही अनाज का बीज बोया गया था। रामशरण शर्मा के अनुसार- ''अफगानिस्तान और उत्तर-पश्चिम चीन के बीच की भूमि में गेहूँ की खेती के प्रारम्भिक केन्द्र थे। ऐसे गेहूँ के पुराने अवशेष मेसोपोटामिया (दजला और फरात के बीच की भूमि), तुर्किस्तान, फारस और भारत वर्ष में मिले हैं। सम्भवतः पहले जहाँ पुरुष शिकार पकड़ने के पीछे लगा रहता था, स्त्री ने खेती का आविष्कार किया। स्त्रियों ने जो खाने योग्य जंगली अनाज बटोरा करती थीं, एक महान आविष्कार किया। उन्होंने पाया कि अनाज के दाने से नया पौधा भी पैदा हो सकता है। वे जमीन में अनाज के दाने गाड़ने लगीं। इस प्रकार खाद्य संस्करण से खेती का जन्म हुआ। धीरे-धीरे जौ-गेहूँ के अतिरिक्त तरह-तरह के दूसरे अनाज भी उपजाए जाने लगे।''[35] शुरूआती दौर में स्त्रियाँ हीं घर के काम काज के साथ-साथ कृषि भी संभालती थी। उस समय का परिवार मातृसत्तात्मक था। किसी स्त्री पर एक पुरुष का अधिकार नहीं होता था। स्त्री अपनी स्वेच्छा से किसी के साथ भी रह सकती थी। किन्तु कालांतर में पुरुष का घर पर अधिकार बढ़ने लगा और खेती या अन्य व्यवसाय पुरुषों के हाथ में चला गया। महिला कृषि के प्रत्येक कार्य में अपनी भूमिका निभाती हैं, किंतु आज भी पति के जीवित रहते किसी महिला के नाम पर भूमि अंतरित नहीं होती। यह बात अत्यंत सोचनीय है कि जिस स्त्री के द्वारा कृषि का आविष्कार

हुआ, वही आज इस व्यवसाय से जुड़े होने के बावजूद कहीं भी किसान में शामिल नहीं की जाती। महिलाएं कृषि कार्य में हमेशा से सहयोग देती रही हैं। जैसे कृषि उत्पाद से संबंधित वस्तुओं का देखभाल करना, बगीचे की रखवाली करना, मुर्गी पालन, पशुओं को चराने का काम आदि काम में उनकी भागीदारी होती है। इसके अतिरिक्त खेतों में निराई-कटाई फसल की देखभाल आदि कार्य भी वे करती हैं। यदि हम कृषक मजदूरों की बात करें तो उनमें ज्यादातर महिलाएं ही शामिल है। आजकल शहरीकरण के दौर में पुरुषों के शहर चले जाने के पश्चात् खेती का जिम्मा महिलाओं ने ही ले रखा है मैत्रेयी कृष्णराज के अनुसार- ''वैश्वीकरण के दौर में कृषि क्षेत्र में हुए ज्यादातर परिवर्तनों ने किसानों के घरों, खासतौर पर महिलाओं को प्रभावित किया है और इनमें से ज्यादातर ऐसी महिलाएं हैं जो परिवार की अकेली या मुख्य कमाऊ सदस्य हैं। इसे हाल के दिनों में आंध्र प्रदेश और महाराष्ट्र में किसानों की बड़े पैमाने पर हो रही आत्महत्या की घटनाओं से भी जोड़ा जा सकता है, जहाँ अब ज्यादातर परिवारों में विधवाएँ ही परिवार चलाने का जिम्मा उठा रही हैं।''[36]

1.3 किसान और उनकी समस्याएं

आज हमारे देश में किसानों के समक्ष अनेक समस्याएं हैं। भारतीय कृषि परंपरागत कृषि थी। आजादी से पहले यहाँ पंरपरागत तरीके से खेती की जाती थीं, किंतु अंग्रेजों के भारत में प्रवेश के पश्चात इन्होंने यहां की कृषि के तौर तरीकों में भारी बदलाव किये। किसानों के सामने आज पहली समस्या बीज की आती है कि वे किस प्रकार के बीजों की बुआई अपने खेतों में करें। कृषि के शुरूआती दौर में किसान स्वयं अपने खेतों के बीज को ही अगले वर्ष के लिए बचाकर रख देते थे और उसी से वे फसल की बुआई करते थे इससे उन पर बीज खरीदने का अतिरिक्त बोझ नहीं पड़ता था और पैदावार भी अच्छी होती थी। एक किसान दूसरे किसान से अनाज के बदले भी बीज प्राप्त कर लेता था इस तरह आपसी सामंजस्य से वो अपनी खेती करते थे। जिन जगहों पर धान की पैदावार अच्छी होती थी वहाँ के किसानों के पास धान की कई किस्में होती थी। किंतु आज इस तरह के बीज समाप्त हो गये हैं। सरकार द्वारा खोली गई कई

संस्थाओं से और बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा अलग-अलग किस्म के बीज किसानों को बेचे जाते हैं । जी.एस. भल्ला के अनुसार- ‘‘भारतीय कृषि अनसुंधान परिषद तथा कृषि विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक ब्रीडर किस्म के बीज तैयार करते हैं। भारतीय बीज निगम तथा कुछ चयनित कृषि विश्वविद्यालय उच्च उत्पादक किस्मों के फाउंडेशन बीज उत्पादन करते हैं। इन बीजों का बहुगुणन तथा आपूर्ति राज्य बीज फार्मों, केंद्र सरकार के बीज फार्मों, कृषि के राज्य विभाग, निजी कम्पनियां, निजी बीज उत्पादकों तथा बीज उत्पादक सहकारी समितियों सहित कई एजेंसियों द्वारा किया जाता है।’’[37] सरकार द्वारा चलाए गई इन संस्थाओं से किसानों को बीज तो प्राप्त हो जाते है किंतु उसके लिए किसानों को अतिरिक्त मूल्य चुकाना पड़ता है। साथ ही इन बीजों से वो दोबारा अपने खेत की बुआई नहीं कर सकते हैं। जिससे इन्हें हर साल नए बीज खरीदने पड़ते हैं। इनके पास पर्याप्त मात्रा में धन भी नहीं होता है, जिससे ये कर्ज के बोझ से दबते चले जा रहे हैं। किसानों के सामने बीज की समस्या के साथ ही खाद की समस्या होती है। पहले वे जिन बीजों की बुआई खेत में करते थे, उनकी अच्छी पैदावार करने के लिए किसान खुद अपने घर पर बनाई हुई देसी खाद का इस्तेमाल करते थे। वे गोबर, खरपतवार, नीम, राख आदि के प्रयोग से खाद बनाते थे जिसमें उन्हें अलग से धन नहीं व्यय करना पड़ता था। कभी-कभी तो जिस समय खेत खाली रहते थे, वो ऐसी फसल उसमें बो देते थे। जिससे वह खेत में ही सड़ाकर खाद के रूप में इस्तेमाल करते थे। किंतु आज सरकार द्वारा अलग-अलग तरीके के रासायनिक खाद बनाए जा रहे हैं जैसे-यूरिया, पोटैशियम, फास्फोरस, जिंक आदि। सरकार द्वारा किसानों को दिये जाने वाले बीजों में उन्हें कई तरह के रसायनों का प्रयोग करना पड़ता है तभी उनकी पैदावार होती है। किन्तु ये रसायन खेत की उर्वरक शक्ति को कम कर देते हैं। कुछ सीमा तक तो खेत में पैदावार होती है, किंतु एक समय के बाद उनमें स्थिरता आ जाती है। साथ ही ये रसायन पर्यावरण के लिए भी हानिकारक होते हैं। जी.एस. भल्ला ने भारतीय कृषि आजादी के बाद पुस्तक में कहा है- ‘‘मिट्टी की गुणवत्ता के अतिरिक्त उर्वरकों के असंतुलित प्रयोग के कारण भारतीय मृदा में पोषक तत्वों की कमी हो गई है। मिट्टी में सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी बढ़ती जा रही है,

जो पौधे के बिकास को बुरी तरह प्रभावित करती है तथा मिट्टी में कार्बनिक, जैविक पदार्थ में कमी लाकर फसलों द्वारा नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटैशियम के समुचित अवशोषण में हस्तक्षेप करती है।"[38] इस तरह के बीज और खाद के प्रयोग से किसानों पर खेती का खर्च बढ़ रहा है। साथ ही, इनसे उपजे अन्न स्वास्थ्य के लिए भी हानिकारक सिद्ध हो रहे हैं। आज लघु एवं सीमांत किसानों को इनसे ज्यादा नुकसान हो रहा है। उन्हें समय पर न तो बीज मिल पाते हैं और न ही खाद उपलब्ध हो पाते हैं, क्योंकि इन्हें यही नहीं पता होता कि बीज कहाँ पर वितरित किये जा रहे हैं और कहाँ पर उर्वरक मिल रहे हैं और उन पर सरकार कितने प्रतिशत की छूट दे रही है। इस तरह से ये किसान इधर-उधर चक्कर ही काटते रह जाते हैं और समय पर अपनी खेती भी नहीं कर पाते। इस तरह के बीज और खाद के प्रयोग से किसान के सामने सिंचाई की समस्या उत्पन्न हो रही है। सिंचाई के परंपरागत साधन अधिकांशतः समाप्त हो गये हैं। नहर, कुएं, तालाब आदि समाप्त हो रहे हैं। आरंभ में किसानों की सिंचाई तालाबों, नहरों, कुओं से हो जाती थीं और ज्यादातर खेती तो मानसून पर ही निर्भर रहती थी। अंग्रेजों ने भी सिंचाई के लिए नहरों, तालाबों का निर्माण कराया जिससे कृषि सिंचित भूमि साधनों में विस्तार हुआ। किंतु आज भी हमारे देश की कृषि का लगभग 60 प्रतिशत हिस्सा अभी भी वर्षा पर निर्भर है। आज खेतों में रसायनों के अंधाधुंध प्रयोग ने सिंचाई की आवश्यकता बढ़ा दी है। इन बीजों और रसायनों के प्रयोग से फसल में पानी की अधिक सिंचाई करनी पड़ती है। देश में पानी का संकट बढ़ रहा है और किसान सिंचाई की समस्या से जूझ रहा है। उसके पास खुद के साधन तो होते नहीं इसलिए वह शुल्क देकर फसल की सिंचाई करता है। उनकी स्थिति इतनी अच्छी नहीं होती है कि वे टयूबवेल आदि लगवा सकें। इसके लिए उन्हें बार-बार दूसरों के यहाँ जाना पड़ता है। ऊपर से ग्रामीण क्षेत्र में बिजली की समस्या है। ग्रामीण क्षेत्र में बिजली के अभाव में भी किसान समय से खेतों की सिंचाई नहीं कर पाता और उसकी फसल बर्बाद हो जाती है।

किसानों की समस्याएं यहीं नहीं खत्म हो जाती है। समय-समय पर उन्हें प्राकृतिक आपदाओं का भी सामना करना पड़ता है। जैसे-अधिक बारिश होने से फसल का खराब होना या कभी-कभी सूखे से

फसल की बर्बादी, अकाल आदि भी किसान की बदतर स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। आज हमारे देश में कई ऐसे राज्य हैं जहाँ पर अधिक वर्षा होती है। अत्यधिक वर्षा होने पर भी किसानों की फसलें बर्बाद होती हैं। बिहार से होकर कई नदियाँ गुजरती हैं जो हर साल बिहार में तबाही का कारण बनती है। अभी हाल में ही हमें केरल में बाढ़ का प्रकोप देखने को मिल रहा है। वहाँ के किसानों की सारी फसलें बाढ़ के कारण खराब हो चुकी हैं। हमारे किसानों के सामने कर्ज की समस्या सबसे बड़ी समस्या है। आज के समय में खाद और बीज के बढ़ते मूल्य ने किसानों को कर्ज में डुबो दिया दिया है। हमारे यहाँ कोई भी सरकार बनती है तो इसी वादे के साथ कि वह किसानों की स्थिति में सुधार ले आयेगी। लेकिन सरकार में बनने के बाद ही वह अपने वादे को भूल जाती है। महाराष्ट्र के एक सांसद को कृषि क्षेत्र में उनके अच्छे कार्य के लिए कोई पुरस्कार दिया जाता है, लेकिन सरकार में आने के बाद किसी कृषि प्रदर्शनी में-''किसान मरते हैं तो मरने दो, इनके लिए ज्यादा कुछ करने की जरूरत नहीं है किसानों की खुदकुशी से हमें पर कोई फर्क नहीं पड़ता।''[39] कहना उनकी मानसिकता को ही बयां करता है।

भारत के किसानों की बदतर स्थिति के लिए कई परिस्थितियाँ जिम्मेदार रही हैं। विदेशी शासकों ने यहाँ अपने उद्योग धन्धों के साथ यहाँ की कृषि में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने यहाँ अपने तरीके से अपने फायदे की कृषि करने के लिए किसानों को मजबूर कर दिया और इस काम में अपने ही देश के व्यापारी, साहूकार आदि ने उनका साथ दिया और कृषकों की स्थिति पहले से भी बदतर हो गई। अंग्रेज भारतीय किसानों को अपने मुनाफे एवं व्यापार के लिए कृषि करने पर बाध्य करते थे। सुमित सरकार के अनुसार-"मध्य बंगाल में नील की खेती मुख्यत: किसान स्वयं करते थे किंतु अनिच्छापूर्वक क्योंकि गोरे साहब उन्हें जबरन पेशगी रुपया देकर नील की खेती करने पर बाध्य करते थे। इस अनिच्छा कारण यह था कि इस खेती से उन्हें कम लाभ मिलता था जो अनिश्चित भी होता था, और फसल चक्र भी गड़बड़ा जाता था।"[40] अंग्रेजों ने भारत में ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना व्यापार के उद्देश्य से किया था। धीरे-धीरे भारत के हर उद्योग-धंधे और कृषि पर उन्होंने अपना कब्ज़ा जमा लिया था। इस कार्य में हमारे

ही देश के साहूकार और जमींदारों ने उनका साथ दिया। अंग्रेज व्यापार में प्राप्त मुनाफे का एक छोटा हिस्सा भारत के व्यापारियों एवं साहूकारों को भी देते थे। इसलिए अंग्रेजों के साथ-साथ यहाँ के महाजन और जमींदारों ने भी किसानों के शोषण में भी अपनी भूमिका निभाई। सुमित सरकार के अनुसार- "देश के विदेश व्यापार, जहाजरानी एवं बीमे के कारोबार पर वस्तुतः ब्रिटिश व्यापारिक प्रतिष्ठानों का पूर्ण नियन्त्रण हो चुका था अत: बढ़ते निर्यात से मिलने वाले लाभांश का एक बड़ा हिस्सा विदेशी फर्में हड़प लेती थी...। इसका एक गौण किंतु फिर भी अच्छा खासा भाग भारतीय व्यापारियों एवं महाजनों को जाता था। ये वे दलाल थे जो किसानों को आवश्यक अग्रिम राशि देकर उत्पादन पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लेते थे। ऐसी पेशगियों की आवश्यकता भी लगान के बोझ से जुड़ी हुई थी।"[41] अंग्रेजी राज में हमारे देश के किसानों की स्थिति और बदतर हो गयी थी। उसके सामने समस्याएं जैसे-जैसे आती गयीं, वैसे-वैसे वह कर्ज के जाल में फंसता गया। यह प्रक्रिया तब तक चलती रहती है जब तक वह अपनी जमीन गिरवी रखने या बेचने पर मजबूर न हो जाए। साइमन रिपोर्ट में कहा गया था- ''अधिकांश किसान महाजन के कर्जदार हैं।''[42]

किसानों पर कर्ज बढ़ने के कई कारण हैं। एक तो शुरूआती दौर में जमींदारी व्यवस्था में किसानों से मालगुजारी वसूली जाती थी। किसान की पैदावार कम हुई या अधिक इससे जमींदार को कोई मतलब नहीं होता था। उन्हें अपने हिस्से की मालगुजारी देनी ही पड़ती थी। इसलिए दक्खिन के किसानों की मदद के लिए बनाए गए कानून में 1892 के कमीशन में कहा गया है कि-''इसमें कोई संदेह नहीं कि वर्तमान प्रथा के सख्त होने से ही ज्यादातर दक्खिन की रैयत नया कर्ज लेने पर मजबूर हुई है।''[43] हमारे यहाँ के अधिकांश किसान गरीबी का जीवन जीते हैं। उनके पास जमीन थोड़ी होती है जिससे उनका गुजारा होना मुश्किल होता है उनके पास खुद के शादी-ब्याह, तीज-त्योहार, मुकदमें, लगान देने और धार्मिक कार्यों आदि में खर्च करने के लिए भी पैसे नहीं होते हैं। जिसके कारण उन्हें कर्ज लेकर ही काम चलाना पड़ता है। उनकी आर्थिक स्थिति ही खराब है ऊपर से मालगुजारी वसूली और लगान में ही उनकी बची खुची

संपत्ति भी चली जाती है। रजनी पाम दत्त का कथन है-''कर्ज का मुख्य कारण किसानों की आम गरीबी है।''[44] कहना किसानों के यथार्थ को प्रतिबिंबित करता है। आज के दौर में पैदावार बढ़ाने के लिए अनेक तरह की लोक लुभावनी योजनाएं चलाई जा रही हैं। कृषि के लिए कर्ज देने वाली तमाम संस्थाएं अस्तित्व में हैं जिसके चक्कर में गरीब किसान आसानी से फंस जाता है। आजादी के इतने सालों बाद भी हमारे किसानों के लिए ऐसा कुछ नहीं किया गया, जिससे उनकी स्थिति में कुछ सुधार हो सके। आज भी वे कर्ज के लिए बैंक और महाजनों के पास घूमता रहते हैं और एक बार कर्ज लेने के बाद हमेशा के लिए उसी में फँसकर रह जाते हैं। 'सबलोग' पत्रिका में अपने लेख 'बदहाल किसान और लोकतंत्र की नींद' लेख में विजय गुप्त ने कहा है- ''किसान का अर्थशास्त्र आज भी बैंक, बाजार और सूदखोर महाजनों के बीच चकरघिन्नी की तरह घूमता हुआ है। महाजन सौ रुपये के बदले कई सौ रुपये वसूल लेता है। वसूली के हथियार से बैंक भी किसान के गले में गुलामी का पट्टा डाल देता है, और बाजार तो किसान का सब कुछ लूट लेता है।''[45] आज किसान खेती तो इसी उम्मीद से करता है कि फसल अच्छी हुई तो कर्ज चुका देंगे। अपने के बाकी काम कर लेंगे लेकिन, फसल अच्छी होने के बावजूद उसको कोई लाभ नहीं मिल पाता, क्योंकि सरकार उसका सही मूल्य ही नहीं तय कर पाती है। यह विचार करने योग्य बात है कि खेती तो किसान करता है और फसल का मूल्य सरकार तय करती है।

1.4 किसान और कृषि क्रांतियाँ

आजादी के बाद हमारे देश में कृषि की दशा बहुत ही खराब स्थिति में थी। विभाजन के पश्चात भारत में जमीन का बहुत बड़ा उपजाऊ भाग पाकिस्तान में चला गया। अंग्रेजों ने भी भारत का अच्छी तरह से दोहन किया। फिर सरकार की तरफ से कृषि दशा सुधारने के नए-नए प्रयास किये जाने लगे। देश में पारंपरिक कृषि व्यवस्था को समाप्त कर आधुनिक तकनीकि और नवीन संसाधनों द्वारा कृषि करने पर बल दिया जाने लगा। पारंपरिक कृषि यानि कि देशी खाद, हल, बैल आदि की सहायता से होने वाली कृषि। इनकी जगह रासायनिक खादों, बीजों, टैक्टर आदि की सहायता से कृषि की जाने लगी।

हरित क्रांति के जनक डॉ. नोरमान बोरलॉड हैं और भारत में इसको लाने का श्रेय एम.एस. स्वामीनाथन को है। सन 1968 में भारत में पहली बार 120 लाख टन गेहूँ से 170 लाख टन गेहूँ पैदा हुआ तो विलियम गाड ने इसे हरित क्रांति की संज्ञा दी। 1960 के दशक में मैक्सिको से लाए गये गेहूँ के बीजों द्वारा गेहूँ की नई प्रजातियाँ विकसित की गयीं जिनकी उपज बहुत अच्छी थी। हरित क्रांति के शुरूआती दौर में तो यहाँ कृषि की दशा बहुत अच्छी रही, किन्तु लगातार रासायनिक खादों की सहायता से उपज बढ़ाने से मिट्टी की उर्वरा शक्ति कम पड़ गयी और हरित क्रांति किसानों के लिए अभिशाप बन गयी। 'भारतीय कृषि प्रबंधन के दोष' लेख में रामनाथ शिवेन्दु के अनुसार- ''हरितक्रांति वस्तुतः संकर बीजों तथा रासायनिक खादों के भरपूर उपयोग पर आधारित वैज्ञानिक व औद्योगिक एक नयी कृषि प्रणाली थी जिसके द्वारा सपना दिखाया गया था कि खाद्यान्नों के उत्पादन में आश्चर्यजनक वृद्धि हो जायेगी जिससे किसानों को भी अधिकतम लाभ होगा। पर 1980 आते-आते तक हरितक्रांति की उपयोगिता कृषिभूमि को बंजर भूमि में बदलने वाली हो गयी। फिर महसूस किया गया कि हरितक्रांति से हमारी कृषि व्यवस्था को कुछ भी लाभ नहीं मिलने वाला।''[46] इस तरह से हरित क्रांति के शुरूआती दौर में कृषि को लाभ तो होता है किन्तु धीरे-धीरे इससे उपज घटने लगती है फिर दूसरी हरित क्रांति के द्वारा देश में जी.एम. (जेनेटिकली मोडिफाइड) बीजों को कृषि के लिए अच्छा बताया जाने लगा। इस हरित क्रांति ने भारत में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के बीजों को बढ़ावा दिया।

भारत में 'श्वेत क्रांति' 1964-1965 में 'सघन पशु विकास कार्यक्रम' के अंतर्गत शुरू की गयी। इस क्रांति का उद्देश्य भारत में दुग्ध उत्पादन को बढ़ावा देना था। यह क्रांति तीन चरणों में संपन्न हुई। पहला चरण 1970 से 1995, दूसरा चरण 1978-1985 तक, तीसरा चरण 1985 से 1995 तक। हमारे देश में हमेशा से पशुओं का पालन किया जाता रहा है, किन्तु 'श्वेत क्रांति' के माध्यम से पशुओं की नई नस्लों को भारत में बढ़ावा मिला तमाम डेयरी फार्म खाले गये जिससे किसान अपने दुग्ध व्यवसाय को आसानी से कर सकें।

देश में खाद्य तेल और तिलहन फसलों के उत्पादन को बढ़ाने के लिए सरकार द्वारा जो नई नीतियाँ चलाई गयीं, उसे 'पीली क्रांति' की संज्ञा दी गई। इस क्रांति का प्रभाव भारत में लगभग सभी राज्यों में पड़ा, तिलहन उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 1986 में तिलहन प्रौद्योगिकी मिशन भी आरंभ किया गया। इस तरह से 'पीली क्रांति' से हमारे देश में तेल एवं तिल उत्पादन को बढ़ावा मिला।

हमारे देश में आलू के उत्पादन में वृद्धि के लिए 'गोल क्रांति' की शुरूआत की गयी। हम इतिहास में देखे तो पता चलता है कि भारत में 16वीं सदी में आलू पुर्तगाल से लाया गया था। यह क्रांन्ति 'केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान' के प्रयासों के फलस्वरूप सफल हुई। इस क्रांति से भारत का आलू उत्पादन में महत्वपूर्ण स्थान है।

मछली उत्पादन में वृद्धि के लिए सरकार द्वारा चलाई गई नई योजनाएं 'नीली क्रांति' कहलाई। स्वतंत्रता के पश्चात हमारे देश की कृषि व्यवस्था बहुत ही खराब स्थिति में चल रही थी। फसलों के लिए उर्वरकों की कमी बढ़ती ही जा रही थी। इसी कारण उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से सरकार ने नए किस्म के रसायनों को बढ़ावा देने के लिए जो प्रयास किये वो 'धूसर क्रांति' कहलाई। भारत में मुर्गी पालन के व्यवसाय एवं उनके मांस एवं अण्डे की उत्पादकता को बढ़ाने के उद्देश्य से 'रजत क्रांति' की शुरूआत की गयी।

भारत में फलों एवं सब्जियों के उत्पादन को बढ़ावा देने के उद्देश्य से 'सुनहरी क्रांति' की शुरूआत की गयी। 'सुनहरी क्रांति' का मुख्य उद्देश्य सेब उत्पादन को बढ़ावा देना है। इस क्रांति के आने से हमारे यहाँ फसल सब्जियां एवं मसालों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। 'इद्रधनुषी क्रांति' का उद्देश्य भारत में समग्र क्रांति को साथ लेकर चलने का था। सन 2002 में कृषि मंत्री रहे नीतिश कुमार ने भारत में 'नई राष्ट्रीय कृषि नीति' लागू की। इस नीति का उद्देश्य था भारत में सभी क्रांति के विकास को बढ़ावा देने का था।

1.5 किसान एवं कृषि नीतियाँ

स्वतंत्रता के पश्चात भारत की कृषि व्यवस्था में नया मोड़ आया। विभाजन के पश्चात भारत की भूमि का उपजाऊ हिस्सा पाकिस्तान चला गया | चूंकि भारत की जनसंख्या का 75% हिस्सा कृषि कार्यों में संलग्न है और यदि इस स्थिति में कृषि की स्थिति ही खराब है तो यह किसी भी देश के लिए चिंताजनक परिस्थिति है। अंग्रेजों के जाने के पश्चात देश में सरकार की तरफ से कृषि दशा को सुधारने के अनेक प्रयास किये गए।

क) पंचवर्षीय योजनाएं

भारत सरकार ने प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951 से शुरू किया। यह योजना प्रमुख रूप से कृषि विकास पर ही केन्द्रित थी। 'प्रथम योजना' के समय कृषि की स्थिति अत्यंत खराब थी। किसानों के पास जमीनें बहुत कम थीं और जो थी भी वह भी अलग-अलग जगह छोटे टुकड़ो में, न तो उनके पास पैसा था और न ही कृषि की ठीक जानकारी। न वो अच्छे बीज खरीद सकते थे, न खाद। सिंचाई के लिए भी वे मानसून पर निर्भर थे। सरकार की तरफ से इनकी दशा सुधारने के लिए नई-नई योजनाएं चलाई गईं। किसानों के लिए अनेक प्रकार के उन्नत किस्म के बीज उपलब्ध कराए गए एवं उनको जागरूक करने के अनेक प्रयास किए गए। 'दूसरी पंचवर्षीय योजना' मुख्यतः उद्योग पर केन्द्रित थी। किन्तु शीघ्र ही सरकार को यह ज्ञात हो गया कि कृषि की दशा में सुधार लाए बिना भारतीय अर्थव्यवस्था की स्थिति अच्छी नहीं हो सकती। फिर भी दूसरी योजना के दौरान भी कृषि व्यवस्था में कुछ सुधार हुए। 'तीसरी पंचवर्षीय योजना' में भी कृषि विकास पर जोर दिये गये। इस योजना से सबको उम्मीद थी कि इससे देश में 'हरित क्रांति' आयेगी किन्तु 1965-66 में सूखे के कारण कृषि पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। कहा जाता है कि प्रथम तीन योजनाओं (1950-51 से 1964-65 तक) ने कृषि की दशा में महत्वपूर्ण सुधार किए। इस संबंध में मैत्रेयी कृष्णराज का कहना है कि- ''पहली तीन पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि अनुसंधान, शिक्षा

और इसके विस्तार को सुदृढ़ करने के अलावा खेती से जुड़ी जरूरी चीजों मसलन बीज खाद और बिजली के उत्पादन के लिए कई कदम उठाए गए।"[47]

'चौथी पंचवर्षीय योजना' में इस बात पर बल दिया गया कि किसानों एवं कृषि के विकास के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ बनाई जाए। सरकार द्वारा चलायी गई योजनाओं और नीतियों का प्रचार किया जाए किन्तु यह योजना सफल न हो सकी। 'पांचवी पंचवर्षीय योजना' में कृषि की दशा में सुधार लाने के लिए सरकार द्वारा कृषि पर 8,740 करोड़ रूपये का व्यय किया गया। योजना के बीच में ही देश में आपातकाल की घोषणा कर दी गयी और यह योजना बीच में ही समाप्त कर दी गयी।

'छठी पंचवर्षीय योजना' या 'दूसरी हरित क्रांति' की शुरूआत कृषि उत्पादन में वृद्धि करने के उद्देश्य से की गयी थी। पहली हरित क्रांति की विफलता के कारण ही दूसरी हरित क्रांति योजना को लागू किया गया। 'दूसरी हरित क्रांति' के बारे में रामनाथ शिवेंद्र ने अपने लेख 'भारतीय कृषि प्रबंधन के दोष' में स्पष्ट किया है- "हरित क्रांति-1 की विफलता के बाद अचानक बायोटेक्नोलॉजी व जीन इंजीनियरी के नगाड़े पीटे जाने लगे। फिर हमारी कृषि व्यवस्था का हरित क्रांति-2 की तरफ धकेला जाने लगा और किसानों को समझाया जाने लगा कि अब कृषि उत्पादन के लिए आवश्यक हो गया है जी.एम. (जेनेटिकली मोडिफाइड) बीजों का प्रयोग किया जाने लगा। बायोटेक कम्पनियों ने सौ से अधिक किस्म के बीजों का जी.एम. संस्करण भी बना लिया है।"[48] पहली हरित क्रांति आने का कारण चावल एवं गेहूँ के उन्नत किस्म के बीज थे तो दूसरी हरित क्रांति में सरकार द्वारा कृषि नीतियों एवं सेवाओं का लाभ कृषकों तक ठीक प्रकार से पंहुचा। पहली हरित क्रांति का विस्तार पंजाब-हरियाणा, पश्चिमी उत्तर-प्रदेश तक ही सीमित रह गया था, दूसरी हरित ने क्रांति प.बंगाल, बिहार, उड़ीसा, मध्य-प्रदेश आदि राज्यों तक अपना विस्तार किया। छठी योजना में सरकार द्वारा कृषि के प्रति निर्धारित लक्ष्य को नहीं प्राप्त किया जा सका।

'सातवीं पंचवर्षीय योजना' में कृषि संबंधी अनेक प्रोजेक्ट सरकार द्वारा तैयार किये गये। इस योजना में सिर्फ रूई के उत्पादन को छोड़ और किसी क्षेत्र में निर्धारित लक्ष्य नहीं प्राप्त किया जा सका।

'आठवीं पंचवर्षीय योजना' में कृषि लक्ष्यों की प्राप्ति हुई। इस योजना में तिलहन, गन्ना, रूई आदि का उत्पादन निर्धारित लक्ष्य से अधिक ही रहा। 'नौंवी पंचवर्षीय योजना' को कृषि उत्पादन की दृष्टि से सफल नहीं माना जाता है।

'दसवीं पंचवर्षीय योजना' का भारत की अर्थव्यवस्था में अधिक महत्व है। इस योजना में अब तक की सभी योजनाओं का मूल्यांकन किया गया। इस योजना में प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर बल दिया गया। इस योजना ने अधिक कीमत वाली फसलों के उत्पादन पर बल दिया। इस योजना में फल, सब्जियों, वृक्षा रोपण, पशुपालन आदि पर बल दिया गया। इस योजना का महत्व इसलिए भी अधिक है कि इसने सरकार द्वारा चलाई गई 'राष्ट्रीय कृषि नीति'(2000) के आधार पर भी कार्य किया। इस तरह से 'राष्ट्रीय कृषि नीति' का लक्ष्य अधिक से अधिक कृषि उपज थी। इससे देश में ठेके की खेती, व्यापारिक खेती को बढ़ावा दिया गया। भारत में विदेशी कंपनियों को खेती के लिए छूट दे दी गई। इसी नीति के तहत भारत सरकार द्वारा किसानों को कृषि उपकरणों पर दी जाने वाली सब्सिडी को भी कम कर दिया गया। 'समयांतर' पत्रिका के अगस्त, 2017 के अंक में 'जन संघर्ष समन्वय समिति' ने अपने विचार प्रकट किए हैं- "भारत सरकार द्वारा किसानों को खाद, बीज, कीटनाशक दवा, कृषि उपकरण, बिजली, डीजल पर जो छूट दी जा रही है उसे धीरे-धीरे समाप्त किया जा रहा है इसके कारण कृषि में लागत बढ़ रही है और किसानों को उनकी पैदावार का उचित मूल्य भी नहीं मिल रहा है जिसके कारण उनकी खेती घाटे में जा रही है।"[49] इस तरह से सरकार की 'राष्ट्रीय कृषि नीति' ने इस तरह की नीति अपनाई कि देश में गरीब किसानों एवं मजदूरों की स्थिति और भी दयनीय अवस्था में पहुँच गई। 'जन संघर्ष समन्वय समिति' का विचार है कि- ''नई राष्ट्रीय कृषि नीति' का परिणाम यह हुआ कि किसानों और कृषि मजदूरों की बची खुची उम्मीद भी इस 'राष्ट्रीय कृषि नीति के भेंट चढ़ गई।"[50]

'ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना' में भी तकनीकि कृषि पर बल दिया गया। इस योजना के तहत आधुनिकतम कृषि बाजारों का विकास, समुचित जल प्रबंधन की व्यवस्था, सिंचाई के उपयुक्त साधन

उपलब्ध कराना, वर्षा के जल संरक्षण आदि कार्यों को करने पर बल दिया गया। मैत्रेयी कृष्णराज एवं अरुणा कांची के अनुसार- "ग्यारहवीं योजना के लिए कृषि के दृष्टिकोण पत्र में करों और शुल्कों को विरूपण-रहित और अंतर्राष्ट्रीय मूल्यों के अनुरूप प्रतिस्पर्धी बनाने को प्राथमिकता दी गयी है। इसमें विशेष आर्थिक क्षेत्रों और विशेष आर्थिक प्रान्त बनाये जाने का समर्थन किया गया है। और जिन मुद्दों पर जोर दिया गया है वो हैं पर्यावरणीय स्थिरता, हवा और पानी की गुणवत्ता में सुधार ठोस-कूड़ा प्रबंधन को बढ़ावा, जैव विवधता का संरक्षण, भूमि के क्षरण को कम करना, हरित क्षेत्र में वृद्धि और संयुक्त वन प्रबन्धन।"[51]

ख) नई मूल्य निर्धारण योजना

सन 2004 में यूरिया को कम मूल्य पर उत्पादन करने एवं भुगतान करने के लिए सरकार के सलाह के लिए एक कार्यकारी दल का गठन किया गया था।

ग) सहकारी ऋण व्यवस्था

सन 1982 में भारत सरकार ने संसद के कानून द्वारा 'नाबार्ड' नामक एक संस्था का निर्माण किया जिसका कार्य कृषि संबंधी गतिविधियों को प्रोत्साहन करना तथा विकास के लिए ऋण एवं अन्य सुविधाएं जनता को उपलब्ध कराना। इस योजना का पुनर्निर्माण 2004 में वैद्यनाथन की अध्यक्षता में सहकारी ऋण व्यवस्था के लिए एक समिति गठित की गई। इसका उद्देश्य ग्रामीण सहकारी संस्थानों के कार्यों में सुधार लाना है। क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक सरकार द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में खोले गये। जिससे समाज में कमजोर वर्ग को ऋण लेने में सुविधा हो।

घ) किसान क्रेडिट कार्ड योजना

किसान क्रेडिट कार्ड योजना का लक्ष्य किसानों को आसानी से कृषि करने के लिए कम ब्याज पर ऋण उपलब्ध कराना है। किसान इस कार्ड का उपयोग कृषि के लिए बीज खरीदने, खाद, कीटनाशक

आदि खरीदने में कर सकते हैं। जी.एस. भल्ला के अनुसार- ''भूमि के आकार, फसल चक्र, वित्त प्रबंधन का पैमाना इत्यादि के आधार पर ऋण की सीमाएं तय की जाती हैं तथा पूरे वर्ष की प्रत्येक वित्तीय आवश्यकताओं तथा फसल उत्पादन से जुड़ी सहायक गतिविधियाँ जैसे कृषि उपकरणों। औजारों का रख-रखाव, बिजली का खर्च इत्यादि का आकलन किसान क्रेडिट कार्ड के अंतर्गत ऋण की सीमाओं को निश्चित करने के उद्देश्य से किया जाता है।''[52]

ङ) कृषि बीमा: राष्ट्रीय कृषि बीमा योजना

1999-2000 रबी के फसल के समय इस योजना को प्रारंभ किया गया था। इस योजना का उद्देश्य किसानों को संकट के समय सहायता प्रदान करना है। कई बार ऐसा होता है किसान सारे जोखिम उठाकर अपनी फसल तैयार करता है। प्राकृतिक आपदा या टिड्डी दलों के कारण उनकी फसलें पूरी तरह नष्ट हो जाती हैं। इसी नुकसान के समय में किसान की मदद करने के उद्देश्य से 'फसल बीमा योजना' की शुरुआत की गयी। जी.एस भल्ला के अनुसार- "इस योजना का उद्देश्य प्राकृतिक आपदा, जानवर और बीमारी के कारण किसी भी उल्लेखित फसल में हुई हानि के लिए बीमा तथा वित्तीय सहायता उपलब्ध कराना, विशेषकर आपदा के वर्षों में कृषि आय को स्थायित्व देने में सहायता करना था। यह योजना सभी किसानों (ऋण लेने और न लेने वाले दोनों) के लिए है तथा जोत के आकार से इस योजना के लाभ का कोई सम्बन्ध नहीं है।"[53]

च) त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम

यह कार्यक्रम 1996-1997 में सिंचाई परियोजनाओं को पूरा करने के लिए शुरू किया गया। इस परियोजना पर सरकार ने लगभग 500 करोड़ रुपये व्यय किये। इसका लक्ष्य किसानों को नियमित रूप से समय पर सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराना था किंतु यह परियोजना सफल न हो सकी।

छ) ग्रामीण आधारभूत संरचना विकास कोष

इस योजना की शुरूआत 1995-96 में नाबार्ड के संरक्षण में हुई। इसका उद्देश्य राज्य सरकारों को सिंचाई, मृदा संरक्षण आदि के लिए ऋण प्रदान करना है। इस प्रकार सरकार ने कृषि को बढ़ावा देने के लिए अनेक कृषि अनुसंधान खोले। किसानों विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों को योजनाओं से अवगत कराने के तमाम तरीके अपनाएं। इस संबंध में जी.एस.भल्ला का कथन है कि- ''कृषि को बढ़ावा देने वाले अन्य कदमों में राष्ट्रीय बीज निगम राष्ट्रीय सहकारिता विकास निगम, कृषि पुनर्वित निगम तथा केन्द्र एवं राज्यों के कई अन्य निगम जैसी नई संस्थाओं की स्थापना सम्मिलित थे, जिनका उद्देश्य किसानों को उन्नत बीज रासायनिक उर्वरक, कीटनाशक, औजार एवं मशीनरी, सिंचाई सुविधाएं तथा कृषि ऋण की आपूर्ति सुनिश्चित कराना था।''[54]

1.6 किसान और किसान आंदोलन

हमारे देश में हमेशा से किसानों का शोषण होता रहा है। प्राचीनकाल हो मध्यकाल हो या आधुनिक काल हमेशा उनके साथ कठोर व्यवहार किया जाता रहा है। प्राचीन भारत में भी किसानों को भारी मात्रा में लगान अपने सामंतों को देना पड़ता था। जमीन पर राजा और सामंतों का ही अधिकार होता था। वो जब चाहे उसे हड़प सकता था। मध्यकाल में भी यही सामंती व्यवस्था थी और इस समय भी कृषकों से मनमाने तरीके से लगान वसूली की जाती थी। किसानों को लगान समय पर ही चुकाना पड़ता था। नहीं तो जमीन छिन जाने का भय निरंतर बना रहता था। फसल अच्छी हो या खराब उसे तो लगान अदा ही करना होता था। 'पल-प्रतिपल' पत्रिका के अंक 83 में उल्लेख किया गया है कि- ''किसानों की समस्याओं की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। किसानों को उपज का तीसरा हिस्सा लगान के रूप में राज्य को देना होता था, जो बहुत ज्यादा था। जब किसान नहीं दे पाते थे तो फौज की मदद से उनसे वसूली की जाती थी।''[55] इस तरह से यदि किसान अपनी उपज का तीन हिस्सा लगान दे देंगे तो उनके पास क्या बचेगा, क्योंकि खेती का खर्च भी उन्हें ही उठाना पड़ता था। राजा या सामंतों के व्यक्तिगत कार्यों में भी

उन्हें बेगार करनी पड़ती थी। इस तरह से किसानों के शोषण करने के कई तरीके राजा और सामंतों के पास होते थे। 'पल-प्रतिपल' पत्रिका में उल्लेखित है- ''करों की अदायगी के अलावा किसानों को मुख्यतः किलों और नगरों के निर्माण में राज्य के लिए बेगार भी करनी पड़ती थी। इस बात का फायदा वह सामंत खुलकर उठाते थे और दिनों-दिन और ज्यादा शक्तिशाली भू-स्वामी होते जा रहे थें। ऐसे में कृषकों के दिलों में दमन के प्रति विक्षोभ का होना लाजमी था।''[56]

इस तरह से यदि हम देखें तो मध्यकाल में मुगल शासन के दौरान ही कृषकों के मन में शोषण के खिलाफ रोष पैदा होने लगा था। यदि हम पहले कृषक विद्रोह की बात करें तो वह हमें 1419 में ही मिलता है। यह विद्रोह सारंग खाँ के नेतृत्व में हुआ- ''जिसे सुल्तानों के चारक 'बेअक्स रिआया' और 'जाहिलों' का बलवा' बताते रहे।''[57] सारंग खाँ के नेतृत्व ने इस आंदोलन को भड़काया उसके पास किसानों का समूह एकत्रित होने लगा और अंत में खिज्र खाँ की सेना ने इस आंदोलन को दबा दिया। सारंग खां पकड़ा गया और उसकी हत्या कर दी गई। ऐसा ही दूसरा विद्रोह हमें मुगलकाल में अब्दुल्ला भट्टी का दिखाई देता है, जिसके दादा और पिता बादशाह अकबर के खिलाफ थे। उनकी मत्यु के बाद अब्दुल्ला ने उनकी लड़ाई खुद अपने हाथ में ले ली। वह लाहौर से दिल्ली जाने वाली रसद को लूट कर गरीबों में बांट देता था। अकबर ने अब्दुल्ला को मारने के लिए कई बार अपने सैनिक भेजें लेकिन वह बच जाता था। आज भी पूरा पंजाब उस पर गर्व करता है और उसी की याद में लोहड़ी का त्योहार मनाते हैं। अब्दुल्ला भट्टी के योगदान का उल्लेख 'पल-प्रतिपल' के किसान अंक में भी मिलता है- ''वह कृषि प्रधान देश का एक कृषक पुत्र था, जो मुगलों से उसी तरह नफरत करता था जैसे सारा पंजाब करता था। उसकी नजरों में मुगल बाहरी थे, जो हमारे सिर पर आ बैठे थे।''[58]

इस तरह से किसानों का शोषण होना हमारे देश में एक परंपरा सी बन गई है। अंग्रेजों ने यह परंपरा निभाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। हमारे देश के प्राचीन धर्म पुराण ग्रंथों में भी किसानों के शोषण की गाथा मिलती है। मनृस्मृति में कहा गया है-''जैसे मधुमक्खी जोंक या गाय का बछड़ा अपना

भोजन पाता है, उसी तरह राजा भी अपने राज्य से साधारण कर लेता है। सोने और पशुओं में जो बढ़ती हो, उसका पांचवा हिस्सा राजा का होगा। फसल का छठा, आठवां या बारहवां हिस्सा राजा ले सकता है। युद्ध काल में कोई क्षत्रिय राजा फसल का चौथाई हिस्सा भी ले ले और प्रजा की शक्ति भर रक्षा करे तो उसे दोष नहीं दिया जाएगा।''[59] इस तरह से जिस देश की संस्कृति एवं परंपरा में ही किसानों के शोषण को मान्यता मिली हो, वहां आमजन शोषित हुए बगैर कैसे रह सकता है। अंग्रेज किसानों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते थे। उन्होंने यहां के किसानों का इस तरह से शोषण किया कि गरीबी एवं दुर्दशा उनका भाग्य ही बन गई। हमारे देश के जमींदार, साहूकार, महाजनों ने भी अंग्रेजों को खुश करने के लिए अपने ही देश के किसानों का भरपूर शोषण किया। किसानों से दिन-रात काम लिया जाता और मजूरी कम दी जाती बेगार भी कराए जाते। उनके पास अपना और अपने परिवार का पेट भरने के लिए भी अन्न नहीं होता था। विवश किसान महाजनों से कर्ज लेने पहुंच जाता था। यहां से उनकी दशा और खराब हो जाती थी, वो जीवनपर्यन्त महाजनों से लिए कर्ज का ब्याज चुकाते रह जाते। मृत्यु के पश्चात यही कर्ज वो आगे आने वाली पीढ़ियों पर छोड़ जाते थे। इस प्रकार महाजन उन्हें अपना दास बना लेता था। इस तरह से वर्षों से पीड़ित किसानों के हदय में विद्रोह का भाव धीरे-धीरे जन्म लेने लगा। यही आगे चलकर आंदोलन में परिवर्तित हो गया। किसान अपने शोषण के खिलाफ लड़ने की तैयारी करने लगे। उन्होंने आपस में संगठन बनाना शुरू किया। इस तरह से गाँव में होने वाली किसान सभाएं अपने जिलों की सभाओं से जुड़ गई। 1936 में पहली 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना हुई। इस तरह से किसान सभाओं के माध्यम से हजारों किसान संगठित हो अपने शोषण के खिलाफ आंदोलन छेड़ने की तैयारी करने लगे। यदि हम 1857 की बात करें तो उसमें भी हमारे देश के किसानों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। यदि किसान आंदोलन की बात करें तो यह हमारे देश में बहुत पहले से ही शुरू हो चुका था।

1.6.1 स्वतंत्रता से पूर्व किसान आंदोलन

स्वतंत्रता से पूर्व किसानों द्वारा अपनी समस्याओं को लेकर जो आंदोलन किए गए वे भिन्न-भिन्न रूपों में हमारे सामने आते हैं।

क) सन्यासी विद्रोह

किसानों द्वारा किया जाने वाला यह विद्रोह अंग्रेजी शासन और भारतीय जमींदारों के खिलाफ पहला विद्रोह था। यह विद्रोह 1763 से 1800 ई. तक चला। इस संबंध में 'कृषि, कृषकों की आवश्यकता बनाम विवशता कृषक आंदोलन के आइने में' लेख में डॉ. द्वारिका प्रसाद चंद्रवंशी का कथन है कि- ''इस विद्रोह ने भारतीय कृषक समाज में भूचला ला दिया। सन्यासी धार्मिक भिक्षु थे। इन विद्रोहियों का पहला आक्रमण ढाका की ईस्ट इंडिया की कोठी पर हुआ। इस विद्रोह ने अंग्रेजों के दांत खट्टे कर दिये। इसके प्रसिद्ध नेता मजनू शाह, मूसा शाह, भवानी पाठक, देवी चौधरानी आदि थे। इस तरह सन्यासी विद्रोह किसान आंदोलन की ऐसी मिशाल थी जिसने अंग्रेजों और देसी जमींदारों के छक्के छुड़ा दिये।''[60] सन्यासी विद्रोह के बाद ही 1766 में बंगाल और बिहार के कुछ जिलों में 'चुनार विद्रोह' की शुरूआत हुई। यह विद्रोह 1772 तक ही चलाकर स्थगित कर दिया गया और पुनः यह विद्रोह 1816 तक चला।

ख) रंगपुर किसान विद्रोह

इसकी शुरूआत 1783 ई. में हुई। यह आंदोलन रंगपुर में जमींदार देवीसिंह के अत्याचार के खिलाफ किया गया। देवीसिंह अपने पास के छोटे किसानों का शोषण मननाने तरीके से करता था, जिससे सारे किसानों ने उसके खिलाफ विद्रोह छेड़ दिया।

ग) संथाल विद्रोह

यह विद्रोह 1855-56 में हुआ। आदिवासियों द्वारा किया गया यह विद्रोह शोषण के खिलाफ था उन दिनों भागलपुर से राजमहल के बीच का क्षेत्र 'दामन-ए-कोह' के नाम से प्रसिद्ध था और यहाँ पर

संथाल जनजातियाँ प्रमुख रूप से बसती थी। इनसे इनकी जमीनें छीनी जा रही थीं। इनका मनमाने तरीकों से शोषण किया जा रहा था जिससे खिन्न होकर इन्होंने आन्दोलन छेड़ दिया। इनके आंन्दोलन करने के कारण का जिक्र 'कलक्ता रिव्यू' में इस प्रकार था- ''जमींदार, पुलिस, राजस्व विभाग और अदालतों ने संथालो पर बेइंतहां जुल्म ढाए। उनकी जमीन जायदाद छीन ली। हर कदम पर संथालों को अपमानित किया जाता था और मारा-पीटा जाता था। संथालों को कर्ज देकर 50 से 500 फीसदी की दर से ब्याज बसूला जाता था। धनी और ताकतवर लोग जब मन में आता था, मेहनतकश संथालों को उजाड़ देते थे। उनकी खड़ी फसलों पर हाथी दौड़ा दिये जाते थे। यह अत्याचार आम बात हो गई थी। दिकू और सरकारी कर्मचारी भी संथालो की निगाह में अत्याचारी थे। ये लोग संथालों से बेगार कराते थे। चोरी करना, झूठ बोलना और शराब पीना इनकी आदत सी बन गई थी।''[61] आदिवासी किसान आंदोलनों में इसके अलावा 1879 में रंपा आदिवासियों द्वारा मनसबदारों के खिलाफ आंदोलन किया गया।

घ) बिरसा मुंडा विद्रोह

यह आंदोलन 1899-1900 तक चला। बिरसा का जन्म एक ऐसे परिवार में हुआ था जो बटाई पर खेती किया करता था। उन दिनों आदिवासी इलाकों में सामूहिक खेती का प्रचलन था किन्तु जमींदारों और जागीदारों ने उनकी इस परंपरा को तोड़ दिया इससे आदिवासी भड़क उठे और बिरसा मुद्रा के नेतृत्व में यह आंदोलन चल पड़ा बिरसा ने कहा-''दिकुओं से अब हमारी लड़ाई होगी और खून से जमीन इस तरह लाल होगी जैसे लाल झंडा।''[62] और यह सच भी हुआ बहुत से आदिवासी इस आंदोलन में मारे गये और अन्त में बिरसा को गिरफ्तार कर जेल में डाल दिया गया जहाँ उसकी मृत्यु हो गई।

ङ) नील आंदोलन

यह आंदोलन 1859-60 के बीच चला। यह आंदोलन बंगाल में हुआ। बंगाल में किसानों को जबरदस्ती नील की खेती करने पर मजबूर किया जाता था जबकि किसान वहाँ पर धान की खेती करना चाहते थे। दूसरा कारण उन्हें नील का दाम भी बहुत कम दिया जाता था। इस संदर्भ में बिपिन चन्द्र का

कथन है- ''सारे झगड़े की जड़ यह है कि नील उत्पादक बिना पैसा दिए ही रैयतों को नील की खेती करने पर मजबूर करते हैं।''[63] यदि किसान नील की खेती करने से इनकार करते थे तो किसानों का अपहरण, उन्हें कोड़े मारना, उनके घर की औरतों और बच्चों की पिटाई, उनकी फसलों में आग लगाना आदि अत्याचार उन पर किए जाते थे। 1959 में कलारोवा के डिप्टी मजिस्ट्रेट हेम चंडाकर ने एक सरकारी आदेश को पढ़ने में थोड़ी भूल कर दी और वह फरमान ही बदल गया। विपिन चंद्र के अनुसार- ''नील उगाने वाले रैयतों से संबंधित विवादों में जमीन पर रैयतों का कब्जा रहेगा और वे उस पर अपनी मरजी की फसल उगा सकेंगे। पुलिस की यह जिम्मेदारी है कि कोई नील उत्पादक या अन्य कोई व्यक्ति रैयतों के मामले में हस्तक्षेप न करने पाये।''[64] किंतु इस आदेश पर कोई अमल नहीं किया गया और किसानों का शोषण पूर्ववत जारी रहा जिससे किसानों ने क्रोधित हो नील की खेती बंद कर दिया और शासन के खिलाफ जंग छेड़ दी। इस आंदोलन के पश्चात बंगाल में नील की खेती बंद हो गई।

च) पाबना विद्रोह

यह आंदोलन 1872 में बंगाल में हुआ। इस आंदोलन का कारण था बंगाल के जमींदारों ने लगान की दरें ज्यादा वसूलनी शुरू कर दी जबकि कानून में उसकी एक सीमा तय की गयी थी जिससे सारे किसान संगठित होकर आंदोलन किए। यह आंदोलन सफल हुआ, क्योंकि किसानों ने सिर्फ लगान की दरें उचित मात्रा में लागू करने की माँग की थी।

छ) दक्कन विद्रोह

यह आंदोलन महाराष्ट्र के पूना और अहमदनगर जिलों में चला। यहां रैयतवारी प्रथा लागू की गई थी जिसमें किसानों से सीधे लगान वसूली की जाती थी, किन्तु किसान महाजन से कर्ज लिए बगैर लगान चुकाने की स्थिति में नहीं थे। जमींदारों और किसानों में तनाव का कारण यह हुआ कि अमेरिकी गृहयुद्ध के स्थगित होने पर कपास की निर्यात में मंदी आई और उसकी कीमतें गिर गईं, जिससे किसानों की स्थिति

बहुत ही दयनीय हो गई। वह लगान चुकाने की स्थिति में नहीं था, ऊपर से महाजनों द्वारा उनका शोषण भी किया जाता था, जिससे तंग आकर सारे किसानों ने महाजनों का बहिष्कार करना शुरू कर दिया।

ज) तेभागा किसान आंदोलन

1946 से 1947 के बीच बंगाल में चले इस आंदोलन का कारण जमींदारी प्रथा के शोषण एवं अत्याचार का विरोध करना था। इस आंदोलन का नेतृत्व बंगाल 'प्रांतीय किसान सभा' ने किया। सभा के कार्यकर्ता, जमींदारों को सबक सिखाने के लिए जबरदस्ती खेतों में जाकर धान काटने लगे। इस आंदोलन में अनेक किसानों की हत्याएं हुईं, किंतु आंदोलन सफल हुआ इस आंदोलन के बारे में क्रिलियन सिग्रिस्ट लिखते हैं- ''पहली बार जुझारू आंदोलन ने शासक वर्गों को इस विचार के लिए बाध्य कर दिया कि देहातों में बढ़ते हुए असंतोष एवं विद्रोह का मुकाबला सुधारों से ही किया जा सकता है।''[65]

इन किसान आंदोलनों के अलावा भी राजस्थान में मेर विद्रोह, भील विद्रोह, मीणा विद्रोह आदि भी शोषण के खिलाफ हुए। बिहार में सन 1917 में चंपारण सत्याग्रह के समय गांधी जी ने कहा था- ''हमें किसान ही मुक्ति दिला सकते हैं, वकीलों, डॉक्टरों या धनी जमींदारों के बूते की यह बात नहीं।''[66] चंपारण में अंग्रेजों द्वारा किसानों से जबरदस्ती भूमि के तीन भाग पर नील की खेती कराई जाती थी। राजकुमार शुक्ल के प्रयासों ने गाँधी जी को चंपारण जाने पर मजबूर कर दिया और गांधी जी ने इस प्रथा को समाप्त करने में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1936 में किसानों को संगठित एवं जागरूक करने के लिए 'अखिल भारतीय किसान सभा' की स्थापना की गई। इस सभा की कार्यवाही के पहले दिन ही इसमें करीब 20 हजार किसानों ने अपनी भागीदारी दी। 1938 में अखिल भारतीय किसान सभा' का तीसरा अधिवेशन हुआ। इस अधिवेशन में किसानों को जमींदारी प्रथा के खिलाफ लड़ने के लिए प्रेरित किया गया। 1939 में सभा का तीसरा अधिवेशन हुआ। 1940 में पांचवा अधिवेशन हुआ। 1948 में किसान सभा के अधिवेशन के बारे में सहजानंद सरस्वती अपनी पुस्तक 'महारूद्र का महातांडव' में कहते हैं- ''अर्द्ध र्सवहारा या खेत मजदूर ही जिनके पास या तो कुछ भी जमीन नहीं है या बहुत थोड़ी है और

टुटपुंजिए खेतिहर जो अपनी जमीन से किसी तरह काम चलाते हैं, गुजर-बसर करते हैं यही दो दल हैं जिन्हें हम किसान मानते हैं, और अंततोगत्वा वे ही लोग किसान सभा बनाएंगे उन्हें ही ऐसा करना होगा।''[67]

1.6.2 स्वातंत्र्योत्तर किसान आंदोलन

भारत स्वतंत्र होने के बाद भारतीय कृषकों के सामने नई तरह की समस्याएं आने लगीं तब किसान उन समस्याओं के खिलाफ विरोध करना शुरू किया जो आंदोलन के रूप में हमारे सामने आते हैं।

क) शेतकारी संगठन किसान आंदोलन

1970 के दशक यह आंदोलन महाराष्ट्र में हुआ। इस आंदोलन का नेतृत्व शरद जोशी ने किया। आजादी के बाद का यह पहला किसान आंदोलन है। महाराष्ट्र के किसानों का यह संगठन कृषि उपज की उचित मांग को लेकर हुआ।

ख) महाराष्ट्र का किसान आंदोलन

यह आंदोलन 1980 में हुआ। इस दौरान महाराष्ट्र में प्याज के मूल्यों में गिरावट के कारण किसान सड़कों पर उतरने पर मजबूर हो गएं। यह आंदोलन महाराष्ट्र के प्रमुख किसान आंदोलनों में से एक था।

ग) रेठा संघ किसान आंदोलन

1980 में यह आंदोलन कर्नाटक के किसानों द्वारा किया गया। यह आंदोलन किसानों की आर्थिक स्थिति में सुधार लाने के उद्देश्य से हुआ। किसानों के लिए खेती में व्यापार के अवसर, प्रतिव्यक्ति आय में बृद्धि, कृषि संबंधी वस्तुओं के मूल्यों में बृद्धि जैसे- बीज, खाद, आदि भी आंदोलन के प्रमुख मुद्दे थे। आंदोलन को दबाने के लिए सरकार द्वारा किसानों पर गोलियां भी चलवाई गई। इस आंदोलन के बाद कर्नाटक का 'रेठा संगठन' किसानों की मांग उठाने वाला प्रमुख आंदोलन बन गया।

घ) 1984 का पंजाब किसान आंदोलन

1978 से 1984 के बीच पंजाब में यह आंदोलन हुआ। इस आंदोलन का मुख्य कारण कर्ज माफ़ी रहा, इसके अलावा गेहूं और चावल के मूल्यों में बृद्धि, सस्ती बिजली, डीजल एवं खाद जैसे मुद्दे भी आंदोलन में रखे गए। तकरीबन 1 हफ्ते तक किसानों ने चंडीगढ़ में पंजाब राजभवन को घेरे रखा। आंदोलन में पंजाब के अकाली दल के नेता 'हरचंद सिंह' द्वारा यह ऐलान किया गया कि किसान अब अपनी फसलें एफसीआई को नहीं बेचेंगे। किंतु यह आंदोलन बिना किसी परिणाम के समाप्त हो गया।

ङ) दिल्ली बोट क्लब किसान आंदोलन

1988 में यह किसान आंदोलन प्रमुख किसान नेता महेंद्र सिंह टिकैत के नेतृत्व में हुआ। इस आंदोलन में किसानों को अपनी वास्तविक शक्ति का अहसास हुआ। यह आंदोलन उत्तर प्रदेश के मुजफ्फरपुर जिले के एक गाँव से शुरु हुआ था, किंतु यह आंदोलन राष्ट्र स्तर पर ही नहीं विश्व स्तर पर भी चर्चा का विषय बना। आंदोलन में कम से कम 1 लाख किसान शामिल हुए, किसानों की प्रमुख मांग बिजली आपूर्ति की थी। किसान एकता को देखते हुए सरकार ने किसानों की मांगे मान ली, किंतु यह आंदोलन यहीं नहीं खत्म हुआ। जनवरी, 1988 में भारतीय किसान यूनियन के बैनर तले किसानों का यह आंदोलन पुनः मेरठ में शुरु हुआ। इस किसान आंदोलन में पूरे देश के किसान शामिल हुए और करीब 25 दिनों तक किसानों का यह आंदोलन चला। 25 अक्टूबर, 1988 से किसान मेरठ से दिल्ली के 'बोट क्लब' पर एकत्रित होने लगें। तत्कालीन कांग्रेस सरकार ने किसानों को रोकने की भरपूर कोशिश की लेकिन सफल न हो सकी। फसल के उचित मूल्य, बिजली के दाम कम करने 35 मांगों को किसानों ने सरकार के समक्ष रखा। किसानों के जोश को देखकर प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने किसानों की 35 सूत्रीय मांगो को मानने का आश्वासन दिया तब जाकर बोट क्लब से किसानों का आंदोलन समाप्त हुआ।

1.6.3 इक्कीसवीं सदी के किसान आंदोलन

किसानों के शोषण की कहानी कभी नहीं खत्म होती है। आज भी किसानों को अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठाना पड़ता हैं। अपनी समस्याओं को लेकर इक्कीसवीं सदी में भी किसान आंदोलन करने को विवश हैं।

क) नंदीग्राम किसान आंदोलन

यह आंदोलन 2007 में हुआ। इस आंदोलन के कारण बंगाल की दिशा ही बदल गई। करीब दो दशक से सत्ता पर विराजमान कम्युनिस्ट पार्टी का सदा के लिए बंगाल की भूमि से सफाया हो गया। इस आंदोलन की शुरुआत 2007 में तब हुई, जब सत्ता पर विराजमान तत्कालीन सरकार ने इण्डोनेशिया के सलीम ग्रुप को बंगाल के नंदीग्राम में रासायनिक फैक्ट्री लगाने के लिए 10 हजार एकड़ भूमि देने का निर्णय लिया। किसान अपनी भूमि देना नहीं चाहते थे और सरकार किसी भी कीमत पर किसानों की जमीनें हड़पना चाहती थी। इस कारण से किसानों और प्रशासन के बीच आमने-सामने की लड़ाई हुई, जिसमें अनेकों किसानों की जानें गईं। इस आंदोलन से सरकार की खूब निंदा हुई।

ख) मंदसौर किसान आंदोलन

1 जून, 2017 से मध्यप्रदेश के कई जिलों में किसान आंदोलन जोर पकड़ रहा है। मंदसौर जिले के अलावा मध्यप्रदेश के ही इंदौर, रतलाम, उज्जैन, नीमच, खरगौन, देवास, धार आदि जिलों में भी यह आंदोलन जोरों पर है। मध्यप्रदेश के किसानों का यह आंदोलन कर्ज माफ़ी और फसलों के उचित मूल्य को लेकर चलाया गया। सरकार किसानों की मांगों को गंभीरता से नहीं लेती है, इसी कारण यह आंदोलन हिंसक हो गया। सरकार किसी भी आंदोलन को दबाने के लिए पुलिस का सहारा लेती है, मंदसौर में भी यही हुआ। परिणामस्वरूप कई किसानों की जानें गईं जिसके कारण सरकार की खूब निंदा की गई।

ग) तमिलनाडु का किसान आंदोलन

सन 2017 में तमिलनाडू के किसानों ने दिल्ली के जंतर मंतर पर करीब एक महीने तक अपना आंदोलन जारी रखा। यह आंदोलन 'साउथ इंडियन रिवर लिंकिंग एसोसिएशन' के तमिलनाडु के अध्यक्ष और किसान नेता अय्याकन्नू के नेतृत्व में चला। यह आंदोलन किसान अपने अधिकारों को प्राप्त करने के लिए कर रहे हैं। करीब 1 महीने तक दिल्ली के जंतर-मंतर पर किसानों का आंदोलन जारी रहा। किसानों ने मृत किसानों की खोपड़ियां लेकर एवं स्वयं को नग्न करके अपने विरोध का प्रदर्शन किया।

घ) कृषि अधिनियम 2020 के खिलाफ आंदोलन

वर्ष 2020 में जून के महीने में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी द्वारा लोकसभा में तीन नए कृषि कानून पारित किए गए। जिनमें पहला 'कृषि उत्पादन व्यापार और बाणिज्य' (संवर्धन और सुविधा) विधेयक 2020, दूसरा 'मूल्य आश्वासन एवं कृषि सेवाओं पर कृषक अनुबंध' विधेयक 2020, तीसरा 'आवश्यक वस्तु संशोधन बिल' आदि विधेयक पारित किए गए। इनमें अप्रत्यक्ष रूप से न्यूनतम समर्थन मूल्य को खत्म करने की बात की गई है, कॉन्ट्रैक्ट फॉर्मिंग, मंडियों से बाहर अनाज बेचने की सुविधा जैसी कई नीतियां बनाई गई हैं। किसान इन नई कृषि नीतियों के विरोध में नवम्बर 2020 से सिंघू बॉर्डर, टीकरी बॉर्डर एवं गाजीपुर बॉर्डर पर अपना आंदोलन कर रहे हैं। अब तक के इतिहास में यह सबसे लम्बा किसान आंदोलन है, इस आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह एक अहिंसक किसान आंदोलन है। इस आंदोलन में देश के विभिन्न राज्यों के किसान शामिल हैं दूसरी बात इस आंदोलन में महिलायें भी समान रूप से अपनी भूमिका निभा रही हैं। वैसे तो यह किसान आंदोलन में संपूर्ण भारत के किसान शामिल हैं किंतु आंदोलन की अगुवाई एक तरह से पंजाब के किसान कर रहे हैं। इस आंदोलन को लगभग छ: महीने होने को हैं किंतु किसानों की मांग पर सरकार कोई विचार नहीं कर रही है। आन्दोलन से संबंधित किसानों एवं सरकार के बीच कम-से-कम दस वार्ता हो चुकी है किंतु इसका कोई सकारात्मक परिणाम अब तक सामने नहीं आया है।

ङ) टप्पल किसान आंदोलन

यह आंदोलन अलीगढ़ के टप्पल नामक गाँव में 2010 में हुआ। यह आंदोलन किसानों ने भूमि अधिग्रहण के खिलाफ छेड़ा था। दरअसल सरकार द्वारा नोएडा से आगरा तक एक्सप्रेसवे के निर्माण करने के लिए टप्पल के आसपास के करीब पांच गाँवों की भूमि का अधिग्रहण किया जा रहा था। भूमि अधिग्रहण के तहत सरकार द्वारा जो मुवावजे की राशि तय की गई थी वह अन्य जगहों की मुवावजे की राशि की तुलना में कम थी जिसके कारण टप्पल के किसान भड़क उठे और सड़कों पर उतर आएं। यह आंदोलन हिंसात्मक हो गया था और आंकड़ों के आधार पर इसमें तीन किसानों की मृत्यु भी हुई थी।

कुछ बड़े आंदोलनों के अतिरिक्त भारत के विभिन्न राज्यों में किसान आंदोलन एवं किसानों के प्रदर्शन समय-समय पर होते रहे हैं। जैसे 2017 में आंध्रप्रदेश और तेलंगाना के किसानों ने अपनी उपज का ठीक मूल्य न मिलने के कारण आंदोलन का रास्ता अपनाया। महाराष्ट्र के किसानों ने तो मुंबई में दूध और सब्जियों की आपूर्ति ही बंद कर दी। किसान कितने भी आंदोलन कर लें लेकिन उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं आता है। कोई भी सरकार आए वह किसानों के हित के लिए सिर्फ वादे करती है। कृषि उन्नति मेला 2016 में प्रधानमंत्री ने कहा- ''कृषि क्षेत्र को एक अलग नजरिये से विकासित करने की दिशा में सरकार प्रयास कर रही है।''[68] सरकार किसान विरोधी जो भी कानून बनाती है उसी के खिलाफ किसान आंदोलन करते हैं। कभी विकास के लिए तो कभी कंपनियों या अस्पतालों के नाम पर किसानों से उनकी भूमि हड़प लेती है, और इन्हीं अत्याचारों के खिलाफ किसान आन्दोलन करता है।

1.7 प्रमुख किसान नेता

भारत में किसानों की समस्याएं हमेशा से समाज में व्याप्त रही हैं, किंतु किसान समाज का सबसे भोला वर्ग होता है। उसे स्वयं अपनी ही समस्याओं की जड़ के बारे में नहीं पता होता है, इसलिए उसे उसकी समस्याओं से संघर्ष करने के लिए किसी नेतृत्व की आवश्यकता होती है। यही काम हमारे देश के किसान नेताओं ने किया।

क) चौधरी चरण सिंह

इनका नाम प्रमुख किसान नेताओं की श्रेणी में लिया जाता है। इन्होंने आजादी से पूर्व के किसान आंदोलनों में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनका मानना था कि कृषि क्षेत्र के विकास के बगैर भारत में औद्योगिक विकास असंभव है। 1952 में ये कृषि मंत्री भी नियुक्त किए गए, इस दौरान इन्होंने उत्तर प्रदेश में जमींदारी एवं भूमि सुधार कानून पारित करके वहां के किसानों को भूमि पर मालिकाना हक़ भी दिलाया। वे कृषि विरोधी नीतियों का सीधा विरोध करते थे, इस कारण उन्हें जेल की हवा भी खानी पड़ी।

ख) चौधरी देवीलाल

इनका जन्म हरियाणा में हुआ और ये हरियाणा के प्रमुख किसान नेता के रूप में जाने जाते हैं। ये भारत के उप-मुख्यमंत्री भी रह चुके हैं। इन्हें 'ताऊ देवी लाल' के नाम से भी जाना जाता है। इन्होंने आजीवन किसानों, मजदूरों एवं समाज के गरीब वर्ग के लिए लड़ाइयाँ लड़ी।

ग) महेन्द्र सिंह टिकैत

महेन्द्र सिंह टिकैत का जन्म उत्तर प्रदेश के एक गाँव में हुआ, स्वतंत्रता के पूर्व भारत में हुए किसान आंदोलनों में इन्होंने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। ये सिर्फ राजनीतिक रूप में नहीं बल्कि सच्चे धरातल पर किसानों के सच्चे हितैषी बनकर उभरे, ये गाँव-गाँव घूमकर किसानों एवं मजदूरों को जागरूक करने का काम किया। इन्होंने अपने किसान आंदोलन को राजनीति से पूरी तरह अलग रखकर सफल बनाया।

घ) बाबा रामचंद्र

इनका जन्म मध्यप्रदेश में हुआ। उत्तर प्रदेश के अवध के किसानों की बदहाली को देखकर बाबा जी ने उत्तर प्रदेश को अपनी कर्मभूमि बनाया। 1919 से 1922 के दौरान अवध क्षेत्र में जो भी किसान

आंदोलन हुए उनका नेतृत्व बाबा जी ने प्रमुख रूप से किया। अपने कठिन प्रयास के कारण ही 1920 में ये 'अवध किसान सभा' गठित करने में सफल हुए।

ङ) स्वामी सहजानंद सरस्वती

इनका जन्म पश्चिमी उत्तर प्रदेश में हुआ। इन्होंने भी भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में अपनी भूमिका निभाते हुए किसानों के प्रमुख नेता के रूप में अपनी पहचान बनाई। इन्होंने बिहार के किसानों को जागरूक करने के साथ-साथ 'बिहार प्रांतीय सम्मेलन' का भी गठन किया। इनके अनुसार भारतवर्ष का शासन उसी के अधिकार में होना चाहिए जो अन्न उपजाता है। ये जमींदारी प्रथा के सख्त विरोधी थे, इसलिए इनकी लड़ाई का केंद्र बिंदु जमींदारी प्रथा का खात्मा ही था।

च) सर छोटूराम

इनका जन्म 1945 में हरियाणा में हुआ। ये अपने भाईयों में सबसे छोटे थे, इसलिए इन्हें छोटूराम नाम दे दिया गया। इन्होंने एक समाज सुधारक के रूप में अपनी पहचान बनाने के साथ-साथ किसानों के लिए भी कार्य किए। इन्होंने किसानों में चेतना का विकास किया जिससे वे अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठा सकें | इन्होंने ही किसानों को जीवन जीने का सही मूलमन्त्र दिया।

छ) राकेश टिकैत

ये प्रमुख किसान नेता महेंद्र सिंह टिकैत के बड़े पुत्र हैं। वर्तमान में ये भारतीय किसान यूनियन के राष्ट्रीय प्रवक्ता हैं। इनके निर्देशन में ही इक्कीसवीं सदी में किसान अपनी समस्याओं को लेकर सड़कों पर उतरता है। अपने पिता की भांति ही इनका उद्देश्य भी किसानों को समस्याओं से मुक्त कराना है।

1.8 किसान और बहुराष्ट्रीय कंपनियां

भारत में स्वतंत्रता के बाद कृषि की प्रक्रिया में अनेक सुधार करने के प्रयास किये गए। कई योजनाएं चलाई गईं, कृषि क्रांतियां आईं जिससे कृषि की दशा में सुधार लाया जा सके। कृषकों की दशा में सुधार

लाने के लिए देश में अनेक कृषि अनुसंधान खोले गये। भारत में 1910 में आईटीसी लिमिटेड कंपनी ने भारत में अपना कारोबार शुरू किया। जया मेहता के अनुसार- ''आईटीसी लिमिटेड द्वारा निर्यात किये जाने वाले कृषि उत्पादों की सूची में पशुओं को चारे के तौर पर खिलाई जाने वाली सोयाबीन की खली शीर्ष पर थी इसलिए स्वाभाविक रूप से आपरेशन ई-चैपाल वर्ष 2000 में सबसे पहले मध्य प्रदेश के सोया किसानों के बीच शुरू किया गया।''[69] इस तरह से इस कम्पनी ने भारत में अपनी पैठ बनानी शुरू की और धीरे-धीरे उसने हमारे यहां से कॉफी, गेहूं, मछली, आदि खरीद कर अपना विस्तार करना शुरू किया।

देश में पहली हरित क्रांति ने रासायनिक खाद, हाइब्रिड बीज आदि को इस्तेमाल करने पर जोर दिया तो दूसरी हरित क्रांन्ति में अमेरिका से कृषि व्यापार को जोड़ा जा रहा है। अमेरिकी कंपनियाँ वालमार्ट मोसेंटों ने भी देश में लगातार अपने व्यापार को बढ़ावा दिया है। हमारे देश में बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते हस्तक्षेप ने किसानों को बहुत प्रभावित किया है। आज वे अपने रसायनों और बीजों का हमारे देश में प्रचार कर रही हैं किंतु उन बीजों से किसान एक ही बार अन्न उपजा सकता है। अगले साल फिर उसे नए बीज खरीदने की जरूरत पड़ती है ऊपर से इन रसायनों के इस्तेमाल से खेतों की उर्वरा शक्ति दिन प्रतिदिन घट रही है। प्रभाकर श्रोत्रिय के शब्दों में- ''कृषि उन्न्त खेती के उपक्रम हुए और बहुराष्ट्रीय कंपनियों को धड़ल्ले से आमंत्रित किया गया। कृषियोग्य भूमि पर बड़े-बड़े कारखाने लगाने, इमारतें बनाने और उन्नत कृषि-बीज, उर्वरक तथा कीटनाशकों के अति प्रयोग से पृथ्वी की उर्वरा शक्ति को अपूरणीय क्षति पँहुची इससे किसान की अन्न उपजाने की सामर्थ्य भी लगातार घटी है क्योंकि उपज, कर्ज और धरती की उर्वरता के क्षरण में अटूट सम्बन्ध कायम हो गया जो बढ़ता गया और किसान को हताश करता गया।''[70] सरकार जमीन का बड़ा हिस्सा इन कंपनियों को खेती करने के लिए दे रही है, जिससे कृषि जमीन घट रही है और खेती किसानों के हाथ से निकल रही है। सरकार द्वारा चलाई गई नीतियों से किसान अपनी जमीन से बेदखल हो रहा है। गौरीनाथ जी के शब्दों में-''धरती पर अनाज, फल, सब्जी बगैरह की पैदावार तो तब

भी होगी, लेकिन खेती किसान नहीं, बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ करेंगी अपने फार्म-हाउसों में। सकल कृषि भूमि पर उन्हीं कम्पनियों का अधिकार होगा और कृषक जन मजदूर बन जाएंगे।''[71] देश में खेती का व्यापार करने वाली कंपनियां किसानों के साथ मिलकर काम नहीं करती वो तो सिर्फ किसानों को खेती से बाहर करने के मौके तलाशती है।

1.9 किसान और भूमिसुधार व्यवस्था

यदि हम ब्रिटिश शासन के पहले की बात करें तो मुगलों ने ऐसी व्यवस्था बना रखी थी जिसमें जमींदार और जागीरदार किसानों से लगान वसूली करते थे। ये जमींदार और जागीरदार किसानों के प्रति कुछ दयालु भी होते थे, किन्तु ब्रिटिश सरकार ने इस व्यवस्था को खत्म कर दिया और किसानों के लिए नए नियम लागू कर दिए गए। 'भारत विभाजन की अंतःकथा' पुस्तक में प्रियंवद ने कहा है- ''भारत की प्राचीन न्याय पंरपराओं से अलग यह इंग्लैण्ड की अपनी न्याय परंपरा थी जिसमें सब बराबर थे। गवाह, लिखित दण्ड संहिताएं, जज वकील आदि के माध्यम से एक पूरी न्यायिक सरंचना उपस्थित थी जो मुगलों के एकाधिकार व सामन्ती न्याय से अलग थी। भूमि के छोटे-छोटे, झगड़े, जमींदारों के उत्तराधिकारियों के बीच या साधारण किसान की अपील पर बड़े जमींदार के विरूद्ध आसानी से इस न्यायालय में लाये जा सकते थे।''[72] इस तरह से अंग्रेजो ने प्राचीन व्यवस्था को तोड़कर नयी भूमि व्यवस्थाएं लागू की।

क) स्थायी बंदोबस्त

भारत में ईस्ट इंडिया कंपनी के आने के बाद हमारे देश के कृषि क्षेत्र में कई बदलाव आए। 1793 में लार्ड कार्नवालिस ने बंगाल, बिहार, उड़ीसा में स्थायी बंदोबस्त लागू किया। कारण यह था कि कम्पनी को सीधे तौर पर किसानों से लगान वसूलने और उसका हिसाब-किताब रखने में परेशानी का सामना करना पड़ता था। इस प्रथा में ब्रिटिश शासन द्वारा जमींदार और जागीदारों की नियुक्ति की जाती थी। और उनका काम होता था किसानों से लगान वसूल कर सरकार तक पहुँचाना। इन जमींदारों पर सरकार द्वारा लगान निश्चित रहता था। वे जमीन की मालगुजारी के हिसाब से जमींदारों से लगान लेते थे। यदि वे ऐसा

करने में असमर्थ होते तो उनकी जमींदारी उनसे छीन ली जाती थी। यह कार्नवालिस की एक चाल थी। सब्यसाची भट्टाचार्य के अनुसार- "शायद कार्नवालिस की नीति के पीछे एक राजनीतिक चाल भी थी वह यह कि अपने वर्ग-स्वार्थ की खातिर जमींदार ब्रिटिश राज्य का समर्थक हो जाएगा। चौथे अगर जमींदार भू-राजस्व जमा करने में असमर्थ होगा तो जमींदारी नीलाम हो जाएगी-यह नियम (जिसे सूर्यास्त कानून कहा जाता था, क्योंकि भू-राजस्व जमा करने की तारीख बीतते ही जमींदारी खत्म हो जाती थी) इस उम्मीद से बनाया गया था कि दक्षता के अभाव में जमींदारी एक हाथ से दूसरे हाथ में चली जाएगी।"[73] जब कभी जमींदार अपने दायित्व को पूरा करने में असमर्थ होते तो उसे उसका खामियाजा अपनी जमींदारी खो कर चुकानी पड़ती थी। स्थाई बन्दोबस्त में ऐसी कई घटनाएं सामने आती हैं जब कम्पनी द्वारा उनकी जमीनें छिनने के साथ-साथ उनकी जमींदारी भी छीन ली गयी। यह इस प्रथा के अंतिम चरण में हुआ। रजनी पाम दत्त के अनुसार- ''जमीन को बेचने और जब्त करने के कानून से थोड़े ही दिनों में बंगाल के बहुत से बड़े-बड़े जमींदार तबाह हो गए। किसी भी देश या काल में इतने थोड़े दिनों में भूमि-व्यवस्था में कहीं भी इतना बड़ा परिवर्तन नहीं किया गया, जितना बंगाल में।"[74] इस तरह यदि जमींदार निश्चित लगान को समय पर नहीं चुका पाते थे तो कंपनी उनसे जमीन हड़प लेती थी। ये जमींदार कंपनी को तय लगान चुकाने के लिए कृषकों से लगान वसूली करते थे। उनके साथ कोई सहूलियत नहीं बरती जाती थी। लगान समय से न चुकाने पर उनके साथ अत्याचार किये जाते थे। उनकी जमीनें हड़प ली जाती थी। जमींदार अपनी जमींदारी बचाने के लिए अकाल के समय में भी लगान वसूली में कोई कोताही नहीं बरतते थे। आलम यह होता था कि किसान भूख से मर रहे होते थे, किंतु कम्पनी को उसका पूरा लगान मिलता था। हंटर साहब ने कहा है- the revenues were never so closely collected before, पहले ऐसी कठोरता के साथ कभी राजस्व वसूल नहीं किया गया था। दूसरे ही वर्ष बंगाल में घोर अकाल पड़ा। राज पुरुषों में विलायत में कर्त पक्ष को लिखा, यहाँ बेशुमार आदमी भूखे मर रहें हैं। भाषा में ऐसा शब्द नहीं है जिससे

लोगों के कष्टों का वर्णन किया जाए। खूब उपजाऊ पूर्णिया जिले में भी इन कई महीनों में तिहाई आदमी मर गए हैं, पर आनन्द की बात यह है ही इससे पहले जितनी सोची थी उतनी राजस्व की हानि नहीं हुई।''[75]

ख) रैयतवारी व्यवस्था

यह व्यवस्था 1792 ई0 में सर्वप्रथम मद्रास और फिर बंबई में लागू की गई। इस प्रथा में लगान वसूली के लिए बिचौलियों को खत्म कर दिया। इस प्रथा में जमीन का मालिक स्वयं किसान होता था और कंपनी उससे सीधे-लगान वसूल करती थी। जी.एस.भल्ला के अनुसार- ''शुरूआत में लगान इतना अधिक था कि प्रायः पूरी उपज लगान में ही चली जाती थी। 1860 ई0 बम्बई में और 1855 में मद्रास में हुए लगान के पुनः निर्धारण में यह पहले से भी अधिक हो गया, जिससे अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई और किसान विद्रोह हुए।''[76] इस व्यवस्था से किसानों का भूमि पर अधिकार तो हो गया, किंतु उनकी दशा में कोई परिर्वतन नहीं हुआ। लगान की वृद्धि के कारण उनकी दशा और दयनीय होने लगी और उन पर ऋण का बोझ बढ़ने लगा। यह व्यवस्था आगे चलकर पंजाब, मध्य-प्रदेश और उड़ीसा में भी लागू कर दी गई।

ग) महलवारी व्यवस्था

यह व्यवस्था 1822 ई0 में हाल्ट मैंकेजी द्वारा भारत में सर्वप्रथम उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश तथा पंजाब में लागू किया गया। इस व्यवस्था में भूमि पर पूरे ग्राम समुदाय का सामूहिक अधिकार होता था। और वे संयुक्त रूप से लगान अदा करते थे।

घ) चकबन्दी

इस व्यवस्था से छोटे एवं बड़े सब किसान को लाभ हुआ। इस व्यवस्था में किसी भी किसान या जमींदार के जमीन के अलग-अलग हिस्सों को एक ही जगह कर दिया गया जिससे कृषि करने में आसानी होने लगी। और खेती में होने वाला खर्च भी कम हुआ।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि खेती के शुरूआती दौर से अभी तक हमारे देश के किसानों की स्थिति में खास परिर्वतन नहीं हुआ। प्राचीनकाल से अभी तक किसानों की स्थिति में बहुत ज्यादा परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। आजादी के बाद सरकार द्वारा किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के लिए बहुत सी योजनाएं चलाई गईं, किंतु इन योजनाओं का लाभ भी सब किसानों तक नहीं पहुँच पाता और ज्यादातर किसानों का जीवन अभी भी संकट में ही है। किसान एवं खेतिहर मजदूर अपनी समस्याओं से जीवनभर संघर्ष करता रहता है इसलिए वे अपनी समस्याओं को लेकर समय-समय पर आंदोलन करते रहे हैं। यदि हम किसान एवं खेतिहर मजदूरों के आंदोलन की बात करें तो ये आजादी से पूर्व ही शुरू हुए और आज तक समाज में किसान एवं खेतिहर मजदूरों के आंदोलन लगातार होते रहे हैं। इतना सब करने के बावजूद आज भी वे जहालत का जीवन जीने पर मजबूर हैं।

संदर्भ

1. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाषचौक,लक्ष्मीनगर, दि.-110002; संस्करण: 2017; पृ. 113
2. सिद्धू, जसपाल सिंह, अनिल चमड़िया; कृषि सन्दर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू; हंस (संपादक) राजेन्द्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली -110002; अगस्त, 2006; पृ. 186
3. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि.110002; संस्करण: 2017; पृ. 114
4. वही, पृ. 68
5. मजुमदार, रमेशचन्द्र एवं अन्य; भारत का बृहत् इतिहास; S.G. Wasani for Macmillan India Limited and Printed by V.N. Rao at Macmillan India Press, Madras-600041; संस्करण: 1994; पृ 66
6. वही, पृ. 109
7. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि. 110002; संस्करण: 2017; पृ. 7
8. शर्मा, रामशरण; भारतीय सामंतवाद; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002; संस्करण: 2019; पृ. 251
9. वही, पृ. 262
10. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002; संस्करण: 2015; पृ. 40
11. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002; संस्करण: 2018; पृ. 50
12. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि.- 110002; संस्करण: 2017; पृ. 112
13. (सं.) वर्मा, रामचंद्र; संक्षिप्त हिन्दी शब्दसागर; नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी; संस्करण वि. संवत् 2060; पृ. 202
14. बाहरी, हरदेव; राजपाल हिन्दी शब्दकोश; 1590 मदरसा रोड, कश्मीरी गेट दिल्ली- 110006 पृ. 67
15. वर्मा, एस. के. एवं अन्य; अंग्रेजी - हिंदी शब्दकोश; Oxford University Press, New Delhi; Edition: 2003; पृ.- 64
16. भारत विश्वकोशकोश; अर्जुन पब्लिसिंग हाउस, 4831/24 प्रहलाद गली, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002, संस्करण : 2014; पृ. 688
17. वही, पृ. 688
18. वही, पृ. 688
19. जगरूप, पंजाब का कृषि क्षेत्र बदलती जमीनी हकीकत और संघर्ष का निशाना; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली,पोस्ट-बेगमाबाद गढ़ी वाया दोघट, जिला बागपत,उत्तर प्रदेश; सितंबर,2016; पृ 9
20. शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002; संस्करणः 2010; पृ. 251
21. वही, पृ, 262

22. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि (सं.) अवधेश प्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि.- 110002; संस्करण: 2012; पृ. 401
23. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि.- 110002; संस्करण: 2017; पृ. 112
24. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि (सं.) अवधेश प्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दि.- 110002; संस्करण: 2012; पृ. 319
25. कृष्णराज, मैत्रयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.) अरविंद कुमार सिंह; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन-5 इंस्टीट्यूशन एरिया, नई दिल्ली-110070; संस्करण: 2014; पृ. 07
26. प्रसाद, भागवत; भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता मार्गदर्शिका; अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान भारत जननी परिसर, रानीपुर भट्ट, सीतापुर चित्रकूट (उ.प्र.) 210204; संस्करण: 2004; पृ. 10
27. सिद्धू, जसपाल सिंह, अनिल चमड़िया; कृषि सन्दर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू; हंस (संपादक) राजेन्द्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 188
28. देस हरियाणा; सं. सुभाष चन्द्र; लेख; 912, सेक्टर- 13 कुरुक्षेत्र, (हरियाणा) पिन- 136118; सितम्बर- अक्टूबर 2017; पृ. 04
29. सिद्धू, जसपाल सिंह, अनिल चमड़िया; कृषि सन्दर्भ और उत्पाद के विभिन्न पहलू; हंस (संपादक) राजेन्द्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली -110002; अगस्त, 2006; पृ. 188
30. प्रसाद, भागवत; भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता मार्गदर्शिका; अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान भारत जननी परिसर, रानीपुर भट्ट, सीतापुर चित्रकूट (उ.प्र.) 210204; संस्करण: 2004; पृ. 10
31. भल्ला, जी. एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद (अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशलन एरिया, फेज-2 नई दि.- 110070; संस्करण: 2016; पृ. 240
32. श्रीनिवास, एम.एन.; भारत के गाँव (अनु.) मधु बी. जोशी; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2011; पृ. 21
33. शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ. 15
34. झा, धीरेन्द्र; खेत मजदूर: हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप; हंस (सं.); राजेंद्र यादव अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली -110002; अगस्त, 2006; पृ. 124
35. शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2010; पृ. 15
36. कृष्णराज, मैत्रयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.)अरविंद कुमार सिंह; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन-5 इंस्टीट्यूशन एरिया, नई दिल्ली-110070; संस्करण: 2014; पृ. 2
37. भल्ला, जी. एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद (अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशलन एरिया, फेज-2 नई दि.- 110070; संस्करण: 2016; पृ. 78
38. वही, पृ. 90
39. रविभूषण; भारतीय किसानों की आत्महत्या और हत्या; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; जुलाई, 2017; पृ. 37

40. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002; संस्करण: 2018; पृ. 49
41. वही, पृ. 49
42. दत्त, रजनी पाम; आज का भारत (अनु.) रामविलास शर्मा; ग्रंथ शिल्पी प्रा. लि., बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-110092; संस्करण: 2000; पृ. 237
43. वही, पृ. 239
44. वही, पृ. 239
45. शिवेंद्र, रामनाथ; भारतीय कृषि प्रबंधन के दोष; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; दिसम्बर, 2017; पृ. 20
46. वही, पृ. 20
47. कृष्णराज, मैत्रयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.) अरविंद कुमार सिंह; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन-5 इंस्टीट्यूशन एरिया, नई दिल्ली-110070; संस्करण: 2014; पृ. 2
48. शिवेंद्र, रामनाथ; भारतीय कृषि प्रबंधन के दोष; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; दिसम्बर, 2017; पृ. 20
49. (विचार) जन संघर्ष की अनिवार्यता; ज. स. स. समिति; समयांतर (सं.) पंकज बिष्ट; 79- ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली-110095; दिसंबर, 2017; पृ 16
50. वही, पृ. 16
51. कृष्णराज, मैत्रयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.) अरविंद कुमार सिंह; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन-5 इंस्टीट्यूशन एरिया, नई दिल्ली- 110070; संस्करण: 2014; पृ. 17
52. भल्ला, जी. एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद (अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-2 नई दि.- 110070; संस्करण: 2016; पृ. 129
53. वही, पृ. 132
54. वही, पृ. 35
55. पल-प्रतिपल; (सं.) देश निर्मोही; लेख; एस. सी. एफ. 26, सेक्टर 16, पंचकुला; अप्रैल-जून 2018; पृ. 35
56. वही, पृ. 35
57. वही, पृ. 35
58. वही, पृ. 35
59. दत्त, रजनी पाम; आज का भारत (अनु.) रामविलास शर्मा; ग्रंथ शिल्पी प्रा. लि., बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-110092; संस्करण : 2000; पृ. 218
60. पाण्डेय, डॉ. राम किंकर; हिन्दी साहित्य में किसान; अनंग प्रकाशन, बी -107/1 उत्तरी घोण्डा, दि.- 110053; संस्करण: 2016; पृ. 112
61. चंद्र, बिपिन एवं अन्य; भारत का स्वतंत्रता संघर्ष; हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय; संस्करण: 2009; पृ. 18
62. वही, पृ. 20
63. वही, पृ. 22
64. वही, पृ. 23

65. पाण्डेय, डॉ. राम किंकर; हिन्दी साहित्य में किसान; अनंग प्रकाशन, बी -107/1 उत्तरी घोण्डा, दि.- 110053; संस्करण: 2016; पृ. 215
66. शशिधर, रामाज्ञा; किसान आंदोलन : वैचारिक परिपेक्ष्य; हंस (सं.); राजेंद्र यादव अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 129
67. वही, पृ. 129
68. रविभूषण; भारतीय किसानों की आत्महत्या और हत्या; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; दिसम्बर, 2017; पृ. 37
69. मेहता, जया; भारतीय खेती में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां; हंस (सं.); राजेंद्र यादव अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 199
70. नया ज्ञानोदय; (सं.) अखिलेश जैन; (सं.) किसान आत्महत्या क्यों करता है; 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, पोस्ट बॉक्स नं. 3113 नई दिल्ली- 110003; मार्च, 2006; पृ. 5
71. गौरीनाथ; हम किस दिन के इंतजार में हैं ?; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; अगस्त, 2017; पृ. 29
72. प्रियंवद; भारत विभाजन की अन्तःकथा; भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नई दि.-110003; संस्करण: 2014; पृ. 73
73. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली- 110002; संस्करण: 2015; पृ. 48
74. दत्त, रजनी पाम; आज का भारत (अनु.) रामविलास शर्मा; ग्रंथ शिल्पी प्रा. लि., बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली-110092; संस्करण: 2000; पृ. 224
75. देउस्कर, सखाराम गणेश; देश की बात (अनु.) बाबूराव विष्णु पराड़कर; नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली- 110016; संस्करण: 2005; पृ, 78
76. भल्ला, जी. एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद (अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-2 नई दि.- 110070; संस्करण: 2016; पृ. 15

द्वितीय अध्याय

हिंदी के प्रमुख किसानी उपन्यास

उपन्यास में मानव जीवन को समीप से देखकर उन्हें व्यक्त करने की क्षमता होती है, इसी कारण इसे उपन्यास की संज्ञा दी गयी है। उपन्यास में लेखक मनुष्य जीवन की घटनाओं को अपने कल्पना के अनुसार प्रस्तुत करता है चूंकि वह स्वयं भी इस समाज में रह रहा होता है, इसलिए वह इन घटनाओं का यथार्थ चित्रण कुछ काल्पनिक आधार पर करता है। हिन्दी साहित्य में उपन्यास विधा का महत्व इसलिए भी अधिक रहा है कि जिस तरह से मानव जीवन का समग्र चित्रण उपन्यास में हो सकता है उस तरह से साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं हो सकता है। इस संबंध में रॉल्फ फॉक्स का कथन है- ''मनुष्य के जीवन को सर्वांगीण रूप में जितना उपन्यास चित्रित कर सकता है उतना साहित्य का दूसरा अंग नहीं कर सकता।''[1]

साहित्य में उपन्यास की तुलना महाकाव्य से की जाती है क्योंकि उपन्यास की ही भांति महाकाव्य में भी समाज एवं मावन जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता है, किन्तु काव्य या कविता का पक्ष भावनात्मक होता है उसे पढ़कर आनंद की प्राप्ति तो होती है किन्तु उसकी अपनी सीमाएं होती हैं। इसके अतिरिक्त कविता की अभिव्यक्ति का माध्यम पद्य है और उपन्यास गद्य विधा है, इसलिए इसमें जीवन के विविध पक्षों की अभिव्यक्ति ठीक प्रकार से हो सकती है। आचार्य रामचन्द शुक्ल ने 'हिन्दी साहित्य के इतिहास' में लिखा है- ''वर्तमान जगत में उपन्यासों की बड़ी शक्ति है। समाज जो रूप पकड़ रहा है, उसके भिन्न-भिन्न वर्गो में जो प्रवृत्तियाँ उत्पन्न हो रही हैं, उपन्यास उनका विस्तृत प्रत्यक्षीकरण ही नहीं करते, आवश्यकतानुसार उसके ठीक विन्यास सुधार अथवा निराकरण की प्रवृत्ति भी उत्पन्न करते हैं।''[2]

उपन्यास का उदय यूरोप में 15वीं शताब्दी के पूर्व ही हो चुका था, किन्तु भारत में उपन्यास साहित्य का आगमन औपनिवेशिक काल के बाद हुआ। यूरोप से उपन्यास साहित्य भारत में सर्वप्रथम बंगला भाषा में आया इसके पश्चात मराठी भाषा में उपन्यास लेखन आरंभ हुआ। हिंदी साहित्य में उपन्यास लेखन बंगला भाषा के बाद प्रारंभ होता है। इस प्रकार हम मान सकते हैं कि भारत में उपन्यास साहित्य पश्चिमी सभ्यता की ही देन है।

2.1 हिन्दी के प्रमुख किसानी उपन्यास

हिंदी साहित्य में उपन्यास विधा एक ऐसी विधा है जो मानव जीवन के हर पहलू पर विस्तारपूर्वक चर्चा करता है। इन्हीं पहलुओं में से एक किसानों एवं खेतिहर मजदूर भी हैं जिनकी समस्याओं पर उपन्यास लेखन के शुरुआती दौर से ही बात की जाती रही है। किंतु यदि हम विभिन्न दौर के उपन्यासों पर गौर करें तो किसानों की समस्याएं अलग-अलग रूप में हमारे सामने आती हैं।

2.1.1 स्वतंत्रता से पूर्व किसानी उपन्यास

यह समय हिन्दी साहित्य में उपन्यास का प्रांरभिक युग था। इसमें उपन्यास अपनी आरंभिक अवस्था में था जिससे हमें इस समय के उपन्यासों में वास्तविक रूप में सामाजिक समस्याओं का चित्रण नहीं मिलता। किन्तु इसी युग में कुछ ऐसे उपन्याकार भी थे जिन्होंने उस समय के समाज में व्याप्त परिस्थितियों जैसे विधवा, पर्नुविवाह, स्त्री शिक्षा पर बल देना, बाल विवाह का विरोध, किसानों और मजदूरों के शोषण का विरोध आदि विषयों पर भी उपन्यास लिखें किन्तु हमें इस प्रकार के उपन्यासकारों की संख्या इस युग में अत्यंत सीमित मात्रा में मिलती है। इसी युग में किसानों की समस्या को आधार बनाकर कुछ उपन्यासकारों ने उपन्यास रचना की। गोपाल राय के अनुसार- ‘‘इस अवधि का उपन्यास देश के उस विशाल जनसमुदाय से कटा हुआ है जो ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के शोषण चक्र में पिस रहा था। यह जनसमुदाय किसानों का था, जो मुख्यतः गाँवों में रहता था और विदेशी सरकार, जमींदार, महाजन और पुरोहित सबका भक्ष्य बना हुआ था। किशोरीलाल गोस्वामी, भुवनेश्वर मिश्र, मेहता

लज्जाराम शर्मा आदि कुछ उपन्यासकारों ने किसानों पर जमींदारों के अत्याचार, ग्रामीणों की निर्धनता, अशिक्षा तथा उनकी दीनहीन स्थिति का यत्र- तत्र चित्रण किया है, किन्तु यथार्थ के इस ज्वलन्त पक्ष पर उनकी सर्जनात्मक दृष्टि नहीं पड़ी है।''[3]

क) गुप्त बैरी : बालकृष्ण भट्ट

इस उपन्यास की रचना 1882 ई. में हुई। इस उपन्यास की रचना बालकृष्ण भट्ट ने एक जमींदार की जीवन शैली को आधार बनाकर किया है।

ख) अंगूठी का नगीना : किशोरीलाल गोस्वामी

इन्होंने इस उपन्यास की रचना 1918 ई. में की। इस उपन्यास में राजा कन्दर्पमोहन और राय रामप्रकाश मिश्र के रूप में जमींदारों के पारिवारिक एवं सामाजिक जीवन का वास्तविक चित्र प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में जमींदार और किसानों के आपसी संबंध को बखूबी प्रस्तुत किया गया है। जमींदार किसानों से किस तरह से लगान वसूल करते हैं, इसका भी उल्लेख उपन्यास में भली-भाँति किया गया है। गोपाल राय के शब्दों में- "फसल हो या न हो, रैयत के घर में चाहे अनाज का एक दाना भी न हो, पर उसे मालगुजारी देनी ही पड़ती थी जो आसामी प्यादों के बुलावे पर जमींदार की कचहरी में हाजिर नहीं होता था, उसे घसीटकर लाया जाता था, उस पर तरह-तरह के अत्याचार किये जाते थे और उसके घर के बैल बछिए, चौखट किवाड़ तक जब्त कर लिये जाते थे।"[4] किसानों की स्थिति कैसी भी हो उसे जमींदारों को लगान देना ही पड़ता था। एक तरफ जहाँ किसान दाने-दाने को मोहताज होते हैं, वहीं दूसरी तरफ जमींदारों के शान-शौकत देखने योग्य होती है।

ग) बलवंत भूमिहार : भुवनेश्वर प्रसाद मिश्र

यह उपन्यास 19वीं सदी का श्रेष्ठ उपन्यास है। इस उपन्यास में दो जमींदार परिवारों के संघर्ष की कहानी है। इस उपन्यास के माध्यम से उपन्यासकार ने उत्तरी बिहार के जमींदारों की सामाजिक,

पारिवारिक, जमींदारी प्रथा का चित्रण प्रस्तुत किया है। इस उपन्यास में भी जमींदारों का किसानों के प्रति उनकी कठोरता, लगान वसूली आदि का उल्लेख मिलता है। गोपालराय के अनुसार- ''इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य जैसा भूमिका में कहा गया है, तत्कालीन भूमिहार जमींदार समाज का चित्र प्रस्तुत करना है, और जो चित्र प्रस्तुत किया गया है वह सच्चा और मार्मिक है।''[5] यह उपन्यास उस समय लिखे जाने वाले अन्य उपन्यासों से पूर्णतः भिन्न है। वैसे तो यह उपन्यास भी अपने निष्कर्ष रूप में आदर्श समाज की स्थापना की शिक्षा देता है किन्तु जमींदार और किसानों की समस्याओं का जो चित्र यह उपन्यास प्रस्तुत करता है वैसा बालकृष्ण भट्ट और किशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यासों में नहीं देखने को मिलता है।

घ) हिन्दू गृहस्थ : मेहता लज्जाराम शर्मा

इस उपन्यास की मूल समस्या कर्ज की समस्या है। उपन्यास में किसानों को नए ढंग की खेती करने पर जोर दिया गया है। किसानों के कर्ज संबंधी समस्या का उल्लेख भी मिलता है। जमींदारों के अत्याचार और शोषण के कारण ही किसान कर्ज के जाल में फंसे हुए हैं।

स्वतंत्रता से पूर्व उपन्यासों में किसान जीवन की समस्याओं चित्रण तो मिलता है किन्तु उनकी संख्या सीमित मात्रा में ही है। प्रेमचंद के आगमन के पश्चात ही हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में उपन्यास को एक निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति हुई। उन्होंने समाज के उस वर्ग को अपने उपन्यासों में स्थान दिया जो अपेक्षित रहे हैं और जिनका शोषण होता रहा है। इस वर्ग में स्त्रियाँ, किसान मजदूर, मिल मजदूर आदि आते थे जिनकी दुर्दशा के लिए ब्रिटिश शासन सर्वाधिक उत्तरदायी था। उस समय भारत में औपनिवेशिक शासन था। अंग्रेज किसानों से उनकी फसल के पैदावार से ज्यादा लगान वसूली करते थे। कृषकों की लगान वसूली की दुर्दशा का वर्णन प्रेमचंद ने इन शब्दों में किया है- "भारतीय किसानों की इस समय जैसी दशा है उसे कोई शब्दों में अंकित नहीं कर सकता। उनकी दुर्दशा को वे स्वयं जानते हैं, या उनका भगवान जानता है। जमींदार को समय पर मालगुजारी चाहिए, सरकार को समय पर लगान चाहिए, खाने के लिए दो मुट्ठी अन्न चाहिए, पहनने के लिए एक चीथड़ा चाहिए, चाहिए सब कुछ, पर एक ओर तुषार और

अतिवृष्टि फसल को चौपट कर रही है....दूसरी तरफ रोग, प्लेग, हैजा, शीतला उनके नौजवानों को हरी-भरी तथा लहलहाती जवानी में उसी तरह दुनिया से उठाए लिए चली जा रही है जिस तरह लहलहाता खेत अभी छ: दिन पूर्व के पत्थर-पाले से जल गया ।"[6] समाज के बड़े किसान नेता पढ़े-लिखे लोग भी उन्हीं अंग्रेजों के समर्थक होते थे । प्रेमचंद ने समाज में शोषण के शिकार इन्हीं किसानों मजदूरों को अपने उपन्यासों में स्थान दिया और हिन्दी जगत के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार का स्थान प्राप्त किया ।

ङ) खरा-सोना : जगदीश झा बिमल

इस उपन्यास की रचना जगदीश जी द्वारा 1921 में किया गया । यह उपन्यास किसान जीवन पर आधारित है । जमींदारों का किसानों पर अत्याचार उपन्यास में प्रमुख रूप से उभरकर सामने आया है । किसानों के साथ-साथ मजदूरों की समस्याओं पर भी प्रकाश डाला गया है। उपन्यास में किसान एवं मजदूर जमींदारों का विरोध तो करते हैं किंतु उनके विरोध को जमींदारों द्वारा दबा दिया जाता है । मजदूरों के विरोध को मिलमालिकों से सुलह कराकर रोक दिया जाता है। कुल मिलाकर उपन्यास में किसानों, मजदूरों एवं जमींदारों के आपसी टकराव को दर्शाया गया है ।

च) प्रेमाश्रम : प्रेमचंद

इस उपन्यास की रचना प्रेमचंद ने 1922 ई. में किया । इस उपन्यास की रचना प्रेमचंद ने उत्तर प्रदेश के लखनपुर नामक गाँव के किसानों को आधार बनाकर किया है। उपन्यास में प्रभाशंकर जो कि पुराने किस्म के जमींदार हैं जो किसानों से लगान वसूली करते हैं और बेगार भी कराते हैं, किन्तु उनके व्यवहार में किसानों के प्रति कुछ विनम्रता का भाव भी है । वे किसानों की फसल अच्छी न होने पर लगान में छूट भी देते हैं । उनके घरेलू कामकाज में किसानों की सहायता भी करते हैं । उनके इसी व्यवहार से प्रभांशकर और किसानों का तालमेल बना हुआ है किन्तु उनका भतीजा ज्ञानशंकर जिसके मन में किसानों के लिए कोई दयाभाव नहीं है, वह किसानों से मनमाने तरीके से लगान वसूलना चाहता है उनसे बेगार कराना चाहता है जिससे उस गाँव के किसान उसका विरोध करने लगते हैं, किन्तु वे उससे हार जाते हैं । किसानों

के विरोध प्रदर्शन को तो प्रेमचंद ने दिखाया है किंतु मुखर रूप में नहीं। उस समय की परिस्थितियां ऐसी थीं कि किसान अंग्रेजी शासन के क़दमों तले दबा हुआ था। किसान चाहकर भी खुले रूप में उनका विरोध नहीं कर सकते थे। शायद इसीलिए प्रेमचंद ने 'प्रेमाश्रम' में किसानों के विरोध को पूरी तरह से नहीं दिखाया है। इस संबंध में सुरेन्द्र चौधरी का कथन है- " प्रेमाश्रम में किसान -संघर्ष थोड़ा उभरने के बजाय यहां दब गया है। इस उतार-चढ़ाव की अपनी विशेष परिस्थितियां हैं।"[7] ज्ञानशंकर का बड़ा भाई प्रेमशंकर अपने चाचा प्रभाशंकर के विचारों का समर्थक है वह भी किसानों के प्रति विनम्र हैं। किन्तु उपन्यास में प्रेमचंद का लक्ष्य ज्ञानशंकर के माध्यम से तत्कालीन समाज में जमींदार वर्ग का किसानों के प्रति शोषण को दर्शाना है जैसा कि उपन्यास के बारे में रामविलास शर्मा का कथन है-"न तो इसमें कोई एक व्यक्ति नायक है और न ही ज्ञानशंकर के सारे खलनायकत्व के बावजूद, कोई एक व्यक्ति इसका खलनायक है... एक ओर लखनपुर के गाँव के किसान हैं, विकसित होती अपनी प्रतिरोध और संघर्ष क्षमता के साथ और दूसरी ओर ज्ञानशंकर के साथ उसका समूचा दमन-तंत्र है। लखनपुर के किसान ही सामूहिक रूप में प्रेमाश्रम के नायक हैं और अपनी पूरी शक्ति के साथ भारत में औपनिवेशिक व्यवस्था को सहायता पहुँचाता ज्ञानशंकर और उसका समूचा तंत्र ही 'प्रेमाश्रम' का खलनायक है। अपने सारे अवास्तविक और यूरोपियन निष्कर्षों के बावजूद 'प्रेमाश्रम' का वास्तविक महत्व जैसा कि रामविलास शर्मा जी लिखते हैं, इसलिए है- 'प्रेमचंद की कला इस बात में है कि वे हिंदुस्तान के बदले हुए किसान का चित्र खींच सके हैं।''[8]

छ) रंगभूमि : प्रेमचंद

यह उपन्यास देश में विदेशी शासन के दौर का उपन्यास है। जिसका प्रमुख पात्र सूरदास गाँधीवादी विचारों का पोषक है अपने जमीन के एक टुकड़े को बचाने के लिए गोलियों का शिकार हो जाता है। सूरदास शांत तरीके से बिना हिंसा के अपनी लड़ाई लड़ता है। देश में उस समय स्वतंत्रता आंदोलन शिथिल पड़ गया था। सूरदास प्रेमचंद के उपन्यास का जुझारू नायक है। नामवर सिंह के अनुसार- "सूरदास प्रेमचंद का सबसे लड़ाकू नायक है। यह 'हीरो' तब सामने आया, जब राष्ट्रीय आंदोलन उतार

पर था, पस्ती पर था, मंदी पर था। प्रेमचंद ने कहा था कि साहित्य वह मशाल है जो राजनीति के आगे चलती है।"[9]

ज) कसौटी : विश्वनाथ सिंह शर्मा

यह उपन्यास 1929 के दौर का है जब देश में जमींदारी प्रथा व्याप्त थी। जमींदार किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार करते थे। समाज में जिन अधिकारियों को जनता की रक्षा के लिए नियुक्त किया गया है वे भी किसानों एवं मजदूरों पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं। उपन्यास में युवाओं की जागरूकता का बखान भी किया गया है। युवा वर्ग ही मजदूरों पर हो रहे अत्याचार का विरोध करने के लिए 'मजदूर संघ' की स्थापना करते हैं। इस प्रकार यह उपन्यास भी गरीब किसानों एवं मजदूरों के जमींदारों द्वारा शोषण की कहानी बयां करता है।

झ) कर्मभूमि : प्रेमचंद

यह उपन्यास जमींदारों के शोषण पर आधारित है। प्रेमचंद ने 1932 में इस उपन्यास की रचना की, उस समय देश में सविनय अवज्ञा आंदोलन चल रहा था। 'कर्मभूमि' में उन्होंने किसानों एवं मजदूरों के आंदोलन को दिखाया है। उपन्यास का प्रमुख पात्र अमरकान्त समाज सेवी व्यक्ति है। वह जिस गाँव में समाज सेवा के लिए जाता है वहाँ के किसान एक महन्त जी, जो कि वहाँ के जमींदार हैं उनके शोषण के शिकार है। अमरकान्त उनके शोषण के विरोध में आन्दोलन करता है, जेल जाता है किन्तु उसका आन्दोलन सफल होता है और लगान वसूली की प्रक्रिया बंद कर दी जाती है। रामविलास के अनुसार- "प्रेमचंद ने 'कर्मभूमि' में पहली बार मजदूरों और विद्यार्थियों को एक साथ अंग्रेजों का मुकाबला करते दिखाया है। जैसा कि सभी लोग जानते हैं, इसके बाद भी नौजवानों ने अनेक बार मजदूरों और किसानों के साथ मिलकर अंग्रेजों का मुकाबला किया था। प्रेमचंद ने राष्ट्रीय आंदोलन की एक महत्वपूर्ण कड़ी को पकड़ा था और उसका यहाँ चित्रमय वर्णन किया है।"[10]

ञ) अलका : निराला

इस उपन्यास की रचना निराला जी ने 1933 ई. में अवध के किसानों की स्थिति को आधार बनाकर किया। उपन्यास में जनसाधारण एवं किसानों की दयनीय स्थिति का चित्रण किया है। इसके अतिरिक्त उन्होंने उपन्यास में किसानों का जमींदारों के प्रति बगावत का भी यथार्थ वर्णन किया है। समाज के बड़े-बड़े नेताओं का साथ न पाने के बावजूद किसान अपने अधिकार के प्रति सजग दिखाई देते हैं।

ट) तितली : जयशंकर प्रसाद

इस उपन्यास में ब्रिटिश राज में किसानों एवं मजदूरों के संघर्षो पर प्रकाश डाला गया है। 1934 में रचे गए इस उपन्यास में किसानों एवं जमींदारों के जीवन के विभिन्न पहलुओं पर चर्चा की गई है। ग्रामीण जीवन की सुंदर अभिव्यक्ति के साथ-साथ जमींदारों के किसान एवं मजदूरों पर होने वाले अत्याचार का चित्रण मिलता है। उपन्यास में जमींदार किसानों की भूमि को हड़पने की योजना बनाते रहते हैं इन सब में तहसीलदार और महंत जमींदारों की भरपूर मदद करता है।

ठ) गोदान : प्रेमचंद

हिन्दी साहित्य के किसान जीवन की गाथा का यह सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। इसकी रचना प्रेमचंद ने 1936 में किया था। उपन्यास का मुख्य पात्र होरी अपनी थोड़ी सी जमीन से अपने परिवार का भरण-पोषण करने की कोशिश करता है। उसकी एक छोटी सी इच्छा है गाय पालने की। वह किसी तरह से गाय खरीदता भी है किन्तु इसी के साथ उसके सामने समस्याओं और विपत्तियों का पहाड़ सा टूट पड़ता है। अपने जीवन भर वह इन्हीं समस्याओं से जूझता रहता है। उसकी जमीन भी उससे छिन जाती है। वह किसान से मजदूर बन जाता है। होरी के माध्यम से प्रेमचंद एक किसान के किसान से मजदूर बनने की समस्त घटना का मार्मिक दृश्य प्रस्तुत करते हैं। रामदरश मिश्र के अनुसार- "होरी अपने जीवन के अतिंम दिनों में किसान छोड़कर मजदूर बन जाता है। अब पंडित दातादीन और होरी के सम्बन्ध सामन्ती नहीं

रहे, वे मालिक और मजदूर बन जाते हैं। होरी का बेटा गाँव छोड़कर शहर जाता है कमाने के लिए वह वहाँ मजदूर बनता है। विस्थापित किसान मजदूर के रूप में स्थापित हो रहा है।"[11] प्रेमचंद ने जब गोदान उपन्यास की रचना की तब देश में जमींदारी प्रथा के अंत का समय नजदीक था। जमींदार सीधे तौर पर किसानों का शोषण नहीं करते थे। रायसाहब को ही देखा जाय तो वे होरी जैसे किसानों के जज्बात का फायदा उठाते हैं। उसे तो लगता है कि रायसाहब बहुत ही दयालु इंसान हैं किंतु रायसाहब अपनी चालाकियों से किसानों को छलते हैं। भोले-भाले किसानों को उनकी चाल समझ नहीं आती। वे किसानों के सामने अपने आपको भी मजबूर दिखाते हैं। जबकि उनकी वास्तविकता कुछ और ही है। रामविलास शर्मा के अनुसार- "गोदान में किसानों के शोषण का दूसरा ही रूप है। यहाँ सीधे-सीधे रायसाहब के कारिंदे होरी का घर लूटने नहीं पहुँचते। लेकिन उनका घर जरूर लुट जाता है। यहाँ अंग्रेजी राज के कचहरी-कानून सीधे-सीधे उसकी जमीन छीनने नहीं पहुँचते। लेकिन जमीन छिन जरूर जाती है। होरी के विरोधी बड़े सतर्क हैं। वे ऐसा काम करने में झिझकते हैं जिससे होरी दस-पांच को इकट्ठा करके उनका मुकाबला करने पहुँच जाए। वह उनके चंगुल में फंसकर तिल-तिल कर मरता है लेकिन समझ नहीं पाता कि यह सब क्यों हो रहा है।"[12] होरी के रूप में प्रेमचंद ने जिस भारतीय किसान का चित्र प्रस्तुत किया है, वह एक संघर्षशील भारतीय किसान है। वह जीवन भर अपनी कठिनाइयों से लड़ता रहता है किंतु हार नहीं मानता है।

ड) गरीब : जगदीश झा बिमल

1941ई. में रचित इस उपन्यास कथावस्तु जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण पर आधारित है। जमींदार किसानों का शोषण करने के साथ-साथ उनकी स्त्रियों पर भी अपना अधिकार जमाये हुए हैं। वे किसानों की जमीनों को छल-प्रपंच से हड़प कर उन पर अपना कब्ज़ा जमा लेते हैं। उपन्यास में प्रशासन विभाग की सच्चाइयों पर भी प्रकाश डाला गया है।

ढ) कमला : रामचंद्र तिवारी

इस उपन्यास की रचना का परिवेश उत्तर भारत का एक गाँव है। उपन्यास की रचना 1943 में की गई, जिसमें गरीब, साधनहीन, अशिक्षित एवं पीड़ित किसानों के जीवन का यथार्थ चित्रण किया गया है। किसानों के जीवन के विभिन्न पक्ष जैसे-उनके आचार, व्यवहार, रहन-सहन, उनकी आकांक्षाओं आदि के साथ-साथ ग्रामीण जीवन के विभिन्न पक्षों का यथार्थ वर्णन किया गया है।

अतः हमें यह देखने को मिलता है कि स्वतंत्रता से पूर्व किसानों की समस्याओं को लेकर प्रर्याप्त मात्रा में उपन्यासों की रचना हुई है। प्रेमचंद के आगमन से हिन्दी उपन्यास को नई दिशा मिली एवं उनके बाद आने वाले उपन्यासकारों के लिए प्रेमचंद एक प्रेरणास्रोत बने।

2.1.2 स्वातंत्र्योत्तर किसानी उपन्यास

इस समय के उपन्यास साहित्य में हिन्दी उपन्यासों की कई धाराएँ बंट गयी। लेकिन किसानों की समस्या को लेकर इस समय भी पर्याप्त उपन्यास लेखन हुआ। किसानों की जो समस्याएं स्वतंत्रता से पूर्व में थीं वही समस्याएं हमें स्वातंत्रयोत्तर उपन्यासों में भी देखने को मिलती हैं।

क) रतिनाथ की चाची : नागार्जुन

जमींदारों द्वारा किसानों के शोषण को इस उपन्यास की विषयवस्तु बनाया गया है। जमींदार किसानों को कृषि करने के लिए भूमि देते हैं बदले में उनसे बेगार करवाते हैं। किसान या मजदूर जो एक बार जमींदार से कर्ज ले लेते हैं तो बदले में उनको जीवनभर के लिए उनका बंधक बनना पड़ता है। किसानों एवं मजदूरों की किसी भी अपराध की सजा के रूप में जमींदार उनको भूमि से बेदखल कर देते हैं। किसान जमींदार के शोषण का शिकार तो होते हैं किंतु वे उनके खिलाफ विरोध प्रदर्शन भी करते हैं।

ख) गंगा मैया : भैरवप्रसाद गुप्त

इस उपन्यास की रचना 1952 हुई। उपन्यास में ग्रामीण समाज के अभावग्रस्त जीवन एवं उनके आपसी मतभेद को बखूबी निखारा गया है। गाँव के लोग खुद ही एक दूसरे के दुश्मन बने बैठे हुए हैं। किसान आपस में एक दूसरे का नुकसान करने पर तुले होते हैं। जमींदारों के हितैषियों के रूप में प्रशासन को प्रस्तुत किया गया है। उपन्यास में मटरू सिंह पहलवान को एक साहसी किसान नेता के प्रतीक के रूप में दिखाया गया है, जिसके नेतृत्व में किसान एवं मजदूर अपने हक की लड़ाई लड़ते हैं।

ग) बलचनमा : नागार्जुन

इस उपन्यास की रचना नागार्जुन ने 1952 में किया। यह उपन्यास किसानों एवं मजदूरों के शोषण की कहानी पर आधारित है। गोपालराय के अनुसार- ''बलचनमा एक ऐसे परिवार का सदस्य है, जिसमें सब के सब मजदूर ही हैं। उसकी माँ और बहन, और बचपन से ही वह खुद, जमींदार के यहाँ खवासी करते हैं।''[13] नागार्जुन ने उपन्यास में मजदूर परिवार की स्त्रियों का जमींदारों द्वारा शोषण का वर्णन भी करते हैं। बलचनमा और उसका परिवार जीवन भर मजदूरी करते हैं एवं जमींदारों के शोषण का शिकार होते रहते हैं, इसके बावजूद यही बलचनमा जमींदारों के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिए भी तत्पर दिखाई देता है।

घ) बाबा बटेसरनाथ : नागार्जुन

1954, में रचे गए इस उपन्यास में किसानों की शोषण की कहानी देखने को मिलती है। किसान एक लंबे समय से गरीबी एवं जहालत का जीवन जीने पर मजबूर हैं। उपन्यास में औपनिवेशिक काल में कृषकों की दुर्दशा, जमींदारी अत्याचार, सरकारी कर्मचारियों का अत्याचार, निर्धनता, अकाल, भुखमरी, बाढ़ एवं उससे किसानों की दुर्दशा का यथार्थ चित्रण किया गया है। एक तरह से यह उपन्यास 'बलचनमा'

का पूरक कहा जाता है क्योंकि 'बलचनमा' उपन्यास तत्कालीन समाज के चित्र को प्रस्तुत करता है और 'बाबा बटेसरनाथ' अतीत के चित्र को प्रस्तुत करता है।

ङ) मैला आँचल : फणीश्वरनाथ रेणु

इस उपन्यास में भी हमें किसानों की अनेकों समस्याएँ देखने को मिलती हैं। जमींदार उनका निर्दयतापूर्वक शोषण करते हैं यहाँ तक कि जो किसान धनी हैं वो भी गरीब किसानों का शोषण करने से नहीं चूकते हैं। गोपालराय के अनुसार- ''मेरीगंज की सारी धरती दो-तीन आदमियों के अधिकार में है। शेष ग्रामीण या तो खेतिहर मजदूर हैं या बटाईदारी पर खेती करते हैं। उन्हें भरपेट भोजन और तन ढंकने को कपड़ा तक नहीं मिलता और आवास के नाम पर फूस की झोपड़ी में उनकी सारी जिंदगी कट जाती है।''[14]

च) हाथी के दाँत : अमृत राय

यह उपन्यास अपने समय के किसानों की दशा को दर्शाता है। उपन्यास की रचना 1956 में हुई जब भारत स्वतंत्र हो गया था, किंतु यह स्वतंत्रता भारतीय किसानों के जीवन में कोई परिवर्तन नहीं कर सकी। स्वतंत्रता के बाद कांग्रेसी बड़े-बड़े पदों पर बैठ गए जिनका उद्देश्य ही अपना स्वार्थ सिद्ध करना था। राजनीतिक सहायता से जमींदारों की शक्ति और भी मजबूत होने लगी जिससे वे और भी तत्परता से किसानों को अपने शोषण का शिकार बनाने लगें।

छ) परती परिकथा : फणीश्वरनाथ रेणु

इस उपन्यास की रचना रेणु जी ने 1957 में की। उपन्यास अंचल विशेष को केंद्र में रखकर लिखा गया है, जिसमें पिछड़ी मानसिकता के ग्रामवासियों की कहानी मिलती है। गाँव के किसानों एवं मजदूरों की दरिद्रता को दूर करने के लिए एवं वहां की धरती को हरा-भरा बनाने के लिए जितेन्द्र नामक युवक संघर्षरत है। जितेन्द्र के प्रयासों के कारण ही गाँव के किसानों को सिंचाई के लिए कोसी नदी घाटी

परियोजना को अमल में लाने का कार्यक्रम बनाया जाता है, जिससे गाँव की हजारों एकड़ परती जमीन को खेती के योग्य बनाने का भी लक्ष्य प्राप्त हो सकता है।

ज) लोहे के पंख : हिमांशु श्रीवास्तव

इस उपन्यास की रचना 1957 में हुई। इसमें एक ऐसे व्यक्ति की कहानी है जो खेतिहर मजदूर से किसान बनने का सपना देखता है। किंतु उसका यह सपना भी नहीं पूरा हो पाता है, अपनी मजबूरियों के कारण वह मिल मजदूर बन जाता है, और फिर मिल मजदूर के पश्चात रिक्शा चालक बनने पर मजबूर होता है।

झ) सती मैया का चौरा : भैरवप्रसाद गुप्त

इस उपन्यास में लेखक ने मुख्य रूप से किसानों के संघर्ष को दिखाया है। 1959 में रचित इस उपन्यास में मजदूरों के हड़ताल की चर्चा भी की गई है। सबसे बड़ी बात उपन्यास की यह है कि किसान एवं मजदूर अपने शोषण के खिलाफ लड़ाई में सफल भी होते हैं। इस उपन्यास में यह भलीभांति पता चलता है कि किसान एवं मजदूरों में यह चेतना आ गई है कि वे अपने अधिकारों को लेकर सजग हैं।

ञ) नदी बह चली : हिमांशु श्रीवास्तव

इस उपन्यास खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को केंद्र में रखकर की गई है। उपन्यास का रचना वर्ष 1961 है। उपन्यास में खेतिहर मजदूरों की समस्याओं के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। ग्रामीण समाज के खेतिहर मजदूर और शहरी समाज के मजदूरों की समस्याओं को एक दृष्टि से देखकर चित्रण किया गया है।

ट) पानी के प्राचीर : रामदरश मिश्र

यह उपन्यास 1961 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की कथावस्तु उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल क्षेत्र में बसे 'पांडेपुरवा' नामक एक गांव की है। यह गाँव राप्ती, गर्रा आदि नदियों से घिरा हुआ है। गाँव के

किसानों की निर्धनता, उनका पिछड़ापन, आपसी कलह एवं किसानों का जमींदारों द्वारा शोषण आदि का चित्रण इस उपन्यास में मिलता है।

ठ) आधा गाँव : राही मासूम रजा

इस उपन्यास में देश विभाजन के पश्चात समाज की बदली हुई स्थिति का चित्रण है। 'आधा गाँव' उपन्यास 1966 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास में उत्तर प्रदेश के एक गाँव के मुसलमान जमींदार और मध्यवर्गीय किसानों के आपसी संघर्ष को दिखाया गया है। उपन्यास में यह दर्शाया गया है कि जिस तरह से समाज में हिंदु किसान औपनिवेशिक शासन के अत्याचारों को झेल रहे हैं वैसे ही मुसलमान कृषक भी अंग्रेजों के अत्याचार को सहने को विवश हैं। उपन्यास में इस बात की तरफ खास ध्यान दिलाया गया है कि शोषण के रास्ते में जाँति-पाँति का कोई मतलब नहीं है।

ड) लोग : गिरिराज किशोर

यह उपन्यास 1966 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास की रचना की उस समय की है जब भारत में ब्रिटिश शासन का अंतिम दौर चल रहा था। उपन्यास में जमींदार वर्ग के अंत की कहानी है कि बदलते समय में जमींदार वर्ग किस तरह अपने अधिकारों से वंचित हो जाएगा। इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि किस तरह से यह वर्ग ब्रिटिश शासन से वफादारी निभाने के बावजूद टूटन की स्थिति तक पहुँच गया है।

ढ) अलग-अलग वैतरणी : शिवप्रसाद सिंह

इस उपन्यास का प्रकाशन 1967 में हुआ। इस उपन्यास में आजादी के बाद भारतीय गाँव की बदतर जिंदगी का चित्रण है। देश तो आजाद हो गया किन्तु भारत वर्ष के गाँव की वही दशा है जो आजादी से पूर्व थी उनके सामने वही समस्याएं हैं उसी गरीबी और भुखमरी से वे आज भी जूझ रहे हैं और इन सबके जिम्मेदार गाँव के जमींदार हैं। गोपालराय के अनुसार-''जिसे निर्मित किया है भूतपूर्व जमींदार ने

धर्म तथा समाज के पुराने ठेकेदारों ने, भ्रष्ट सहकारी ओहदेदारों ने और इस वैतरणी में जूझ और छटपटा रही है गाँव की प्रगतिशील नयी पीढ़ी।''[15]

ण) जल टूटता हुआ : रामदरश मिश्र

यह उपन्यास एक तरह से 'पानी के प्राचीर' उपन्यास का विस्तार है। इस उपन्यास की रचना 1969 में हुई। यह उपन्यास उन किसानों की दयनीय स्थिति का उल्लेख करता है जो यह सपना देख रहा है कि आजादी के बाद उनकी स्थिति सुधर जायेगी। किन्तु इसके विपरीत होता यह है कि किसानों एवं मजदूरों का शोषण करने वाले जमींदार मंत्री या नेता के रूप में पुनः किसानों का शोषण करने लगते हैं। उपन्यास सुगन मास्टर कहते हैं- "इतने साल हो गये आजादी मिले हुए। यह अभागी जिन्दगी टस से मस नहीं हुई।"[16]

त) जुगलबन्दी : गिरिराज किशोर

यह उपन्यास 1973 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में दो जमींदार पीढ़ियों की कथा है जो पूरी तरह से अंग्रेजों के भक्त हैं। पहली पीढ़ी अंग्रेजी शासन के अनेक अपमान सहने के बावजूद वो उन्हीं के पदचिन्हों पर चलते हैं क्योंकि वे खुद को उन्हीं के रंग में ढालना चाहते हैं। जमींदारों की दूसरी पीढ़ी जो अंग्रेजों की वास्तविकता को जानती है इसलिए वह अपने आप को बदलने के लिए संघर्षरत हैं।

थ) गली आगे मुड़ती है : शिवप्रसाद सिंह

इस उपन्यास का प्रकाशन 1974 में हुआ। इसमें एक ऐसे किसान पुत्र की कहानी है जो अपने गाँव समाज से दूर काशी में अपना जीवनयापन कर रहा होता है। उपन्यास पढ़कर हमें यह पता चलता है कि किस तरह आज की नई पीढ़ी अपने घर-परिवार, जमीन से अपने आप को दूर करता जा रहा है। क्योंकि उन्हें खेती में अपना कोई भविष्य नहीं दिखाई देता है। इस उपन्यास का मूल पात्र रामानन्द तिवारी कहता है- "मजदूर और किसान के बाद छात्र को तीसरी शक्ति के रूप में देखना एक भ्रम मात्र है।''[17]

द) मुट्ठी भर काँकर : जगदीश चंद्र

इस उपन्यास का प्रकाशन वर्ष 1976 है। उपन्यास की पृष्ठभूमि का आधार विस्थापित किसानों की त्रासदी है। देश विभाजन के पश्चात पंजाब से आए शरणार्थियों के कारण दिल्ली के आसपास के किसानों को अपनी जमीन से विस्थापित होना पड़ा। पंजाब से आये शरणार्थियों के आगे धीमी गति से चलने वाले किसान टिक नहीं पाए, उनकी जमीन उनसे छिन गई और उनके हाथ में रुपयों की गड्डियाँ आ गईं और वे भूमिहीन हो गए।

ध) लोकऋण : विवेकी राय

यह उपन्यास वर्ष 1977 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास का केंद्र विंदु पूर्वांचल का एक आधुनिक गाँव है, आधुनिक गाँव इसलिए कि गाँव में आजादी के बाद चकबंदी हो चुकी है, गाँव वासियों के लिए बिजली की व्यवस्था की गई है। इन सबके बावजूद गाँव के किसान अभावग्रस्त जीवन जीने को मजबूर हैं। क्योंकि जमींदारों ने अपने फायदे के लिए गाँव की सारी उपजाऊ भूमि को हड़प लिया है, चकबंदी जैसी योजना का लाभ गाँव के छोटे किसानों को नहीं प्राप्त हुआ।

न) हवेलियों वाले : द्रोणवीर कोहली

इस उपन्यास का प्रकाशन 1980 में हुआ। उपन्यास के केंद्र बिंदु में मुसलमान किसान हैं। मुसलमान किसानों की भूमि पर हिंदु साहूकारों ने कब्ज़ा जमा रखा है। ग्रामीण समाज सामंती दृष्टिकोण पर आधारित है। हिंदु साहूकार किसानों का शोषण करते हैं, फलस्वरूप किसानों एवं साहूकारों के बीच समय-समय पर संघर्ष भी होता रहता है।

प) सोना माटी : विवेकी राय

यह उपन्यास भी पूर्वांचल के ही किसानों की कथा है। यह उपन्यास वर्ष 1983 में प्रकाशित हुआ। 'सोनामाटी' में वहाँ के गाँव की उपजाऊ भूमि का चित्रण है जहाँ की मिट्टी में सोना उगलने की क्षमता है

किन्तु समय-सयम पर बाढ़ द्वारा सब कुछ नष्ट हो जाता है। इस स्थिति पर किसानों की होने वाली दयनीय स्थिति का वर्णन इस उपन्यास में मिलता है। बड़े किसानों द्वारा छोटे किसानों एवं खेतिहर मजदूरों का शोषण होता है। उनके विकास के नाम पर चलने वाली योजनाएं एवं फसल नष्ट होने पर मिलने वाले मुआवजे आदि की राशि भी पीड़ित किसानों तक पहुँचने के बजाय भूमिपतियों एवं ठेकेदारों तक ही रह जाती है।

फ) घास गोदाम : जगदीश चंद्र

इस उपन्यास में भी दिल्ली के विस्थापित किसानों का दर्द दिखाई देता है। यह उपन्यास वर्ष 1985 में प्रकाशित हुआ। दिल्ली का विस्तार होने के कारण किसान अपनी जमीनें बेचने पर मजबूर हो गए। इसका परिणाम यह हुआ कि किसानों के हाथ में ढेर सारे पैसे तो आ गए किंतु नए कामों के प्रति प्रशिक्षित न होने से इनका जीवन कठिन हो गया। इस प्रकार किसान जमीन से भी वंचित हो गए और उनके पैसे भी धीरे-धीरे खत्म हो गए।

ब) मय्यादास की माड़ी : भीष्म साहनी

यह उपन्यास 1988 में रचा गया। उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के अत्याचार और बढ़ते प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए,उस समय की जमींदारी व्यवस्था का चित्रण है जब देश पर अंग्रेजी शासन का अधिकार हो चुका था। जमींदारों का अत्याचार अपने चरम पर था ये वही देशी जमींदार थे, जो किसी भी कीमत पर अंग्रेजों के वफादार बनना चाहते थे। इसके लिए वो अपने ही देश के किसानों और मजदूरों का जमकर शोषण करते थे।

भ) समर शेष है : विवेकी राय

यह उपन्यास 1988 में प्रकाशित हुआ। यह उपन्यास 'सोनामाटी' उपन्यास की कथा को आगे बढ़ाता है। गोपालराय के अनुसार- ''समर शेष है' एक विक्षोभकारी विजन पर आधारित उपन्यास है।

इस विजन के केन्द्र में पूर्वांचल के किसान मजदूर हैं, जो लम्बे समय तक शोषण और अन्याय सहते रहने के बाद अब संघर्ष की मुद्रा में तनकर खड़े हो रहे हैं।''[18] इस उपन्यास में ऐसे गाँव की कथा है जिसके निवासी यह सपना देख रहे हैं कि स्वराज प्राप्ति के बाद गाँव का विकास होगा, स्वराज तो मिल जाता है लेकिन वह इस गाँव तक नहीं पहुँचता है। इस उपन्यास के किसान बुद्धिजीवी हैं जो अपने शोषण के खिलाफ आवाज उठाते हैं।

म) कालकथा : कामतानाथ

यह उपन्यास 1988 ई. में प्रकाशित हुआ। उपन्यास उत्तर-भारत के चंदनपुर नामक एक गाँव की कहानी को बयां करता है। उपन्यास में तत्कालीन समाज में जमींदारी व्यवस्था के समाप्त होने की कहानी है। उपन्यास में किसान एवं खेतिहर मजदूर की स्थिति एवं किसान आंदोलन की चर्चा भी दिखाई देती है। किंतु उस समय सत्ता पर विराजमान कांग्रेसी नेताओं का आंदोलन के प्रति सकारात्मक रवैया नहीं होता है।

य) डूब : वीरेन्द्र जैन

यह उपन्यास 1991 में प्रकाशित हुआ। उपन्यास में ठाकुरों और साहूकारों द्वारा गरीब किसानों के शोषण की कहानी है। डूब ऐसे किसानों की कहानी बयां करता है जिनकी जमीनें बाँध बनाने के लिए अधिग्रहित कर ली जाती हैं। किसानों को जबरन उनकी जमीन छोड़ने पर मजबूर किया जाता है। मुआवजे के नाम पर किसानों को ठगा जाता है। किसान भूमिहीन हो जाते हैं और मुवावजे की जो राशि उन्हें मिली थी वह भी जमींदारों ने अपने कर्ज वसूलने के नाम पर ले ली। न तो उनके पास पैसा बचा न ही जमीन। अरुण प्रकाश के अनुसार- "परियोजना में कृषि योग्य भूमि ले ली जाती है। लेकिन गाँव के रिहाइशी इलाके को छोड़ दिया जाता है। किसानों के पास पैसा आया तो साहूकारों ने अपने पुराने कर्ज वसूले और जा बसे जिला शहर ललितपुर, झांसी, बीना या भोपाल में। किसानों का पैसा धीरे-धीरे फुंक गया। फिर अपनी रिहाइशी जमीनों के मुआवजे के लिए बैठे रहे इंतजार में। उधर परियोजना के लिए पानी इकट्ठा कर

ऊंचाई पर पहुंचाना फिर नीचे की ओर गिरना। लड़ैई पर बाढ़ का निरंतर हमला होगा। कुछ साहूकार इस ताक में थे कि लोग गाँव छोड़कर भागें तो सस्ती जमीन खरीदकर सरकार से ऊँचा मुआवजा वसूला जाए।"[19]

र) बेदखल : कमलाकांत त्रिपाठी

यह उपन्यास 1997 में प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में किसानों एवं जमींदारों के बीच सीधा संघर्ष दिखाया गया है। किसानों और जमींदारों के बीच चल रहे आंदोलन में सरकार जमींदारों का साथ देती है। उपन्यास में एक तरफ कांग्रेसी नेता किसानों और मजदूरों को शांति की सीख देते हैं और दूसरी तरफ जमींदार उनका शोषण करते रहते हैं। उपन्यास में बीसवीं शताब्दी के दूसरे-तीसरे दशक में बाबा रामचंद के नेतृत्व में चल रहे किसान आंदोलन का सजीव वर्णन किया गया है।

2.1.3 इक्कीसवीं सदी के किसानी उपन्यास

हिंदी में किसान जीवन की समस्याओं पर जो उपन्यास लेखन की परंपरा स्वतंत्रता से पूर्व शुरू हुई वह हर युग में चलती रही। हर युग के किसान एवं खेतिहर मजदूर की समस्याएं अलग-अलग होते हुए भी एक दूसरे से जुड़ी हुई दिखाई देती हैं। किसान एवं खेतिहर मजदूर के जीवन की समस्याओं से समाज को जोड़े रखने के लिए ही इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकारों ने अपने उपन्यासों में किसान एवं खेतिहर मजदूरों को जगह दिया है।

क) जमीन : भीमसेन त्यागी

इस उपन्यास की रचना भीमसेन त्यागी ने 2004 में गरीब किसानों एवं मजदूरों के जीवन को आधार बनाकर की है। उपन्यास की शुरुआत आजादी से प्रारंभ होकर पं. जवाहरलाल नेहरु की मृत्यु पर समाप्त होता है। किसान एवं खेतिहर मजदूर जमींदारों के शोषण एवं अत्याचार से दबे हुए हैं। गाँव के जमींदार किसानों से बेगार करवाने के साथ-साथ उनके घर की स्त्रियों का शारीरिक शोषण भी करते हैं।

उपन्यास में 'जमींदारी उन्मूलन' कानून से लेकर 'भूदान' आंदोलन का उल्लेख भी मिलता है। किसान जमींदारों के शोषण एवं कर्ज से इस तरह बेहाल हैं कि वे जमींदारों को अपनी भूमि देने पर मजबूर हो जाते हैं। इस तरह से यह उपन्यास किसानों के भूमिहीन होने की प्रक्रिया को भी दर्शाता है।

ख) सल्तनत को सुनो गाँव वालो : जयनंदन

इस उपन्यास की रचना जयनंदन 2005 में खेती किसानी की समस्या को आधार बनाकर किया है। मंडी की समस्या को उपन्यास के प्रारंभ में ही दिखाया गया है। गाँव के किसानों ने ईख की खेती करना सिर्फ इसलिए बंद कर दिया कि सरकार द्वारा चीनी की मिल को बंद कर दिया गया है। गाँव की जमीन धान की पैदावार के लिए अनुकूल होते हुए भी पानी की कमी से किसानों के खेत सूख जाते हैं किंतु यह उपन्यास जमींदारी शोषण पर न आधारित होकर, कृषि के व्यवसायीकरण एवं युवाओं का कृषि में रोजगार के अवसरों दिलाने की कहानी पर आधारित है। सल्तनत और भैरव मिलकर गाँव के युवाओं में खेती के प्रति रूचि पैदा करने का काम कर रहे हैं। राजनीतिक भ्रष्टाचार उपन्यास में बखूबी निखारा गया है।

ग) हलफनामे : राजू शर्मा

यह उपन्यास किसान जीवन की त्रासदी पर आधारित है, जिसकी रचना 'राजू शर्मा' ने वर्ष 2007 में किया। उपन्यास की मूल समस्या पानी की कमी है। पानी की कमी के कारण ही उपन्यास का मुख्य पात्र स्वामीराम आत्महत्या कर लेता है। स्वामीराम की मृत्यु के पश्चात उसका पुत्र मकई मुआवजे की राशि के लिए कोर्ट के चक्कर लगाता है, तभी मकई को शासन तंत्र की सच्चाई का पता चलता है। उपन्यास में इस बात पर भी प्रकाश डाला गया है कि विभिन्न पदों पर बैठे अधिकारी किस तरह से किसानों का शोषण करते हैं।

घ) आखिरी छलांग : शिवमूर्ति

इस उपन्यास में शिवमूर्ति ने किसान जीवन के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला है। एक किसान जिसको पहलवान नाम से जाना जाता है। वह अपनी समस्याओं से इस कदर घिर गया है उसे और कोई चीज दिखती ही नहीं, उपन्यास में किसानों के सामने पानी की समस्या, बीज की समस्या सामने दिखाई देती हैं। खेती में पर्याप्त आमदनी न होने के कारण किसान कर्ज के जाल में फंसे हुए हैं। किसान के सामने सिर्फ खेती-किसानी का संकट ही नहीं होता है बल्कि परिवार से जुड़े अन्य कार्यों के लिए कर्ज लेने पर वे मजबूर होते हैं।

ङ) कालीचाट : सुनील चतुर्वेदी

यह उपन्यास ऐसे किसानों की कहानी है जो लाख प्रयत्न करने के बावजूद अपनी समस्याओं को कम नहीं कर पाते हैं। युनुस नाम का किसान जो अपनी समस्याओं को दूर करने के लिए सरकार द्वारा चलाई गई नीतियों को अपनाता तो है, किंतु एक बार भी सफल नहीं होता है। अंत में मजबूर होकर आत्महत्या कर लेता है। उपन्यास में सरकारी नीतियों के दुष्प्रभाव को दिखाया गया है कि सरकार नीतियां तो चलाती तो है किंतु उनके प्रचार-प्रसार न होने के कारण किसान उन नीतियों में फंस जाते हैं। सुनील चतुर्वेदी ने औद्योगीकरण के प्रभाव को भी उपन्यास में दिखाया गया है। औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप गाँव के युवाओं का खेती से मोहभंग हो रहा है।

च) कंदील : राजकुमार राकेश

यह उपन्यास पहाड़ी किसान जीवन पर आधारित है। उपन्यास में राजकुमार राकेश ने पारबती नाम की महिला को केंद्र में रखकर किसानों की विविध समस्याओं से परिचय कराया है। कभी पानी की अधिकता से किसानों की फसलें खराब हो जाती हैं तो कभी सूखे की समस्या से किसान की फसलें सूख

जाती हैं। भूमि अधिग्रहण की समस्या और राजनेताओं के अत्याचार से किसान जूझ रहा है। इन सबके बावजूद किसान अपनी समस्याओं से हार नहीं मानता है वह उनसे संघर्ष करता है।

छ) अकाल में उत्सव : पंकज सुबीर

यह उपन्यास छोटे किसान की समस्याओं को आधार बनाकर लिखा गया है। रामप्रसाद नाम के किसान की संपूर्ण जीवन की समस्याओं को उपन्यास में बखूबी निखारा गया है। रामप्रसाद एक छोटा किसान है जिसकी जीविका का साधन सिर्फ खेती ही है। उसी के सहारे वह अपने पूरे परिवार का भरण-पोषण करता है किंतु बैंक के फर्जीवाड़े ने उसकी समस्याओं को और बढ़ाने का काम किया। बारिश से उसकी पूरी फसल नष्ट हो जाती है, अब उसके पास कर्ज चुकाने के लिए भी कुछ नहीं बचा है। नष्ट हुई फसल का मुआवजा प्राप्त करने के लिए उससे घूस की रकम माँगी जाती है। जब उसे कोई रास्ता नहीं दिखता तो वह हारकर आत्महत्या कर लेता है। उसकी आत्महत्या का कारण उसका पागल होना बताया जाता है। एक तरफ किसानों की फसलें नष्ट होने से किसान मातम मना रहे होते हैं दूसरी तरफ जिले में महोत्सव का आयोजन चल रहा होता है।

ज) आदिग्राम उपाख्यान : कुणाल सिंह

इस उपन्यास की मूल समस्या भूमि अधिग्रहण की है, जिसकी रचना कुणाल सिंह ने की है। किसानों की भूमि छीनने के लिए उनको तरह-तरह के प्रलोभन दिए जाते हैं। आदिग्राम की भूमि पर सरकार की तरफ से एक केमिकल फैक्ट्री लगाने का आदेश दिया जाता है अपनी भूमि बचाने के लिए किसान आंदोलन करते हैं। उपन्यास में ईस्ट इंडिया कंपनी के अत्याचार को भी दिखाया गया है। आदिग्राम के किसान भूखों मर रहे होते हैं फिर भी कंपनी उनसे लगान वसूलती है।

झ) तेरा संगी कोई नहीं : मिथिलेश्वेर

इस उपन्यास में बलेसर नाम के किसान को केंद्र में रखकर किसानों की समस्याओं से हमें अवगत कराया गया है। बलेसर के माध्यम से किसानों के भूमि प्रेम को भी दिखाया गया है। किसान गाँव में हजारों समस्याओं को झेलते हुए भी अपनी भूमि को छोड़ना नहीं चाहते हैं। बलेसर के बेटे उन्हें खेती छोड़ने के लिए तरह-तरह से विवश करते हैं किंतु बलेसर अपने फैसले पर अडिग रहते हैं। उनकी खेती उनकी मृत्यु के पश्चात ही छूटती है। उपन्यास में किसान आंदोलन पर भी प्रकाश डाला गया है। खेतिहर मजदूर के गाँव से शहर की तरफ पलायन के कारण को भी उपन्यास में दिखाया गया है।

ञ) फांस : संजीव

उपन्यास की रचना ने संजीव किसान आत्महत्याओं को केंद्र में रखकर किया है। उपन्यास की केंद्र भूमि विदर्भ के किसान हैं। विदर्भ की भूमि के किसान पानी की समस्या से त्रस्त हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कारण किसान परंपरागत कृषि छोड़ने पर मजबूर हो रहे हैं, जिसके परिणामस्वरुप छोटे किसान एवं खेतिहर मजदूरों के लिए खेती कठिन होती जा रही है। सरकारी नीतियों के कारण भी किसान कर्ज में डूब रहा है। सरकार द्वारा चलाई गई 'पशुपालन' एवं 'मुर्गीपालन' जैसी योजनाएं किसानों के लिए प्राणघातक सिद्ध हो रही हैं।

ट) यह गाँव बिकाऊ है : एम.एम.चंद्रा

इस उपन्यास में किसान एवं खेतिहर मजदूरों के जीवन के विविध पहलुओं से हमें अवगत कराया है। खेतिहर मजदूर काम की तलाश में गाँव से शहर जाता है और वहां भी काम न मिलने पर पुनः गाँव का ही रास्ता देखता है। यही स्थिति फतह की है वह गाँव से शहर काम की तलाश में गया था किंतु वहां भी फैक्ट्री बंद होने के कारण उसे पुनःगाँव लौटना पड़ता है। बल्ली के माध्यम से बड़े किसानों की समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है।

ठ) बहुत लंबी राह : कर्मेंदु शिशिर

बिहार की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर इस उपन्यास की रचना की गई है। इस उपन्यास की मूल समस्या गैर-मजरूआ भूमि की है। गैर-मजरूआ ऐसी भूमि होती है जिस पर सरकार का अधिकार होता है। किंतु जमींदारों ने अपने पैसे और रुतबे के दम पर उस पर कब्ज़ा कर लिया है । महतो ऐसे ही गैर-मजरूआ भूमि पर बसा है उसके बदले उसे गाँव के जमींदार मिसिर के यहाँ बेगार करनी पड़ती है, क्योंकि मिसिर ने ही महतो को उस जमीन पर बसाया है। महतो अपने पिता के जमाने से ही मिसिर के घर बेगार करता आ रहा है। महतो के बेटे विभूति ने मिसिर के तालाब से मछली क्या पकड़ ली, मिसिर ने उसकी पूरी जिंदगी ही बदल दी। महतो का पूरा परिवार छिन्न-भिन्न हो गया। जमींदारी शोषण की पराकाष्ठा उपन्यास में दिखाई देती है।

ड) हिडिम्ब : एस.आर.हरनोट

इस उपन्यास की रचना 2011 में पहाड़ी किसान को आधार बनाकर किया गया। शावणू नाम का एक किसान जो अपने परिवार की मदद से खेती करता है, उस पर शासन तंत्र की ऐसी कु-दृष्टि पड़ती है कि उसका पूरा परिवार बिखर जाता है। मंत्री को शावणू की भूमि पसंद आ जाती है, वह उसे हथियाने के लिए तरह-तरह के हथकंडे अपनाता है किंतु शावणू किसी भी कीमत पर अपनी जमीन मंत्री को देने को तैयार नहीं होता है। यहीं से शावणू के परिवार पर मंत्री द्वारा तरह-तरह के अत्याचार शुरु हो जाते हैं, यह अत्याचार तब तक चलता रहता है जब तक कि शावणू का पूरा परिवार समाप्त नहीं हो जाता।

ढ) चलती चाकी : सूर्यनाथ सिंह

2020 में रचित इस उपन्यास में खेतिहर मजदूर की मजदूरी संबंधी समस्याओं पर प्रकाश डाला गया है। खेतिहर मजदूर के काम संबंधी समस्या के साथ-साथ आधुनिक ढंग से कृषि करने पर जोर दिया

है। खेती के नए-नए तकनीकों एवं सिंचाई के नए तौर-तरीकों के बारे में भी जानकारी दी गई है। खेती में युवाओं की रुचि उत्पन्न करने के प्रयासों पर भी जोर दिया गया है।

ण) ताकि बची रहे हरियाली : अनंत कुमार सिंह

इस उपन्यास रचना 2015 में कृषि संस्कृति को आधार बनाकर की गई है। वैश्वीकरण की आंधी में जिस तरह से खेती करने के तौर-तरीकों में बदलाव हो रहा है, किसानों की समस्याएं भी बढ़ती जा रही है। एक तरफ बीज, खाद और कीटनाशक बनाने वाली कंपनियां हैं जिनका एकमात्र उद्देश्य होता है मुनाफा कमाना। दूसरी तरफ वे कृषि क्षेत्र से जुड़े हुए वे लोग जो किसानों की समस्याओं को कम करने के प्रयास में लगे होते हैं। उपन्यास में रासायनिक खादों के दुष्प्रभाव पर प्रमुख रूप से प्रकाश डाला गया है, साथ ही किसानों को जैविक खेती करने के लिए प्रेरित किया गया है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य के उपन्यास परम्परा में किसान जीवन की समस्याओं को लेकर उपन्यास प्रेमंचद पूर्व युग ये ही लिखे जाते रहे हैं। किन्तु उन्हें एक पुख्ता जमीन प्रेमचंद युग से ही मिली या यूं कह सकते हैं कि प्रेमचंद के आगमन ने ही हिन्दी उपन्यास को मानव जीवन की वास्तविक समस्याओं से जोड़ने का कार्य किया। मानव जीवन की अनेक समस्याओं में से प्रमुख रूप से किसान जीवन की समस्याओं को प्रेमचंद ने अपनी रचना का प्रमुख आधार बनाया और किसान और उनके जीवन की समस्याओं पर जो भी उपन्यास रचे जा रहे हैं प्रेमचंद आज भी उनके प्रेरणाश्रोत बने हुए हैं। आज इक्कीसवीं सदी में भी किसानों पर केन्द्रित उपन्यासों की रचना की जा रही हैं। किसान तो समस्याओं से आज भी जूझ ही रहा है हां उनके शोषण के तरीके बदल गए हैं।

संदर्भ

1. फॉक्स, रॉल्फ; उपन्यास और लोकजीवन; पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड, एम. एम. रोड़, नई दिल्ली; संस्करण: 1957; पृ. 7
2. शुक्ल, रामचन्द्र; हिन्दी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, 1.बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली 110002; संस्करण: 2015; पृ. 367
3. राय, गोपाल; हिन्दी उपन्यास का इतिहास; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2016; पृ. 124
4. वही, पृ. 105
5. वही, पृ. 110
6. चौधरी, सुरेन्द्र; साधारण की प्रतिज्ञा: अंधेरे से साक्षात्कार (सं.) उदयशंकर; अंतिका प्रकाशन सी- 56/ यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2, गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण: 2009; पृ. 20
7. वही, पृ. 18
8. मधुरेश; हिन्दी उपन्यास का विकास; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियांगज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2016; पृ. 38
9. सिंह, नामवर; प्रेमचंद और भारतीय समाज (सं.) आशीष त्रिपाठी; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण: 2017; पृ. 124
10. शर्मा, रामविलास; प्रेमचंद और उनका युग; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2018; पृ. 84
11. मिश्र, रामदरश; हिन्दी उपन्यासः एक अन्तर्यात्रा; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियांगज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण: 2016; पृ. 56
12. शर्मा, रामविलास; प्रेमचंद और उनका युग; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, 110002; संस्करण: 2018; पृ. 98
13. राय, गोपाल; हिन्दी उपन्यास का इतिहास; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2016; पृ. 217
14. वही, पृ. 243
15. वही, पृ. 273
16. वही, पृ. 306
17. वही, पृ. 308
18. वही, पृ. 316
19. प्रकाश, अरुण; उपन्यास के रंग; अंतिका प्रकाशन, सी- 56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन- 2, गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण: 2013; पृ. 77

तृतीय अध्याय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान जीवन का संघर्ष और चुनौतियाँ

भूमंडलीकरण, विश्वबाजार, बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव ने हमारे समाज में गरीबी और अमीरी के बीच के अंतर को बहुत अधिक बढ़ा दिया है। गरीब और गरीब तथा अमीर और अमीर होता जा रहा है। विकास के मामले में हम अन्य देशों की बराबरी करना चाहते हैं, किन्तु हमारे देश का किसान आज भी गरीबी और बदहाली का जीवन जीने को मजबूर है। उसकी दशा में कोई खास परिवर्तन नहीं दिखाई देता है। एक तरफ हमें यह दिखाया जाता है कि आने वाले समय में हमारा देश अमेरिका और ब्रिटेन की भी अर्थव्यवस्था को पछाड़ देगा तो दूसरी ही तरफ हमारे सामने भूख से दम तोड़ते उड़ीसा के गरीब बच्चे और विदर्भ में अकाल और सूखे से आत्महत्या करते किसान की घटनाएं आती हैं।

भारत के सबसे समृद्ध राज्य पंजाब तक में आये दिन आत्महत्या की घटनाएं हमारे सामने आ रही हैं। इससे साफ़ प्रतीत होता है कि हमारा देश कितना भी विकास कर रहा हो, किन्तु हमारे यहाँ किसानों की दशा वही है जो आजादी के पहले थी। इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में किसान अनेक समस्याओं में जकड़ा हुआ दिखाई देता है। कभी उसके सामने महंगी, खाद, बीज की समस्या आती है तो कभी सिंचाई के अभाव में उसके खेत सूख रहे हैं। कभी वह कर्ज से परेशान है तो कभी बैंक और उसके दलालों द्वारा कर्ज न लेते हुए भी उसे कर्जदार घोषित कर दिया जाता है। यदि इन सब समस्याओं से वह किसी तरह से बच जाये तो प्राकृतिक आपदा उसकी कमर तोड़ देती है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में हमें कर्ज, बहुराष्ट्रीय कंपनियां, भूमिअधिग्रहण, सरकारी नीतियाँ, मंडी की समस्या, पलायन, जमींदारी प्रथा,

राजनेताओं के किसानों पर अत्याचार आदि किसानों की समस्याएं देखने को मिलती हैं। इन्हें हम विभिन्न बिन्दुओं के माध्यम से जान सकते हैं।

3.1. भारतीय समाज में किसान की स्थिति

भारत में कृषि व्यवस्था का आरंभ ऋग्वैदिक काल से ही होता है। हमारा देश सदा से प्राकृतिक संसाधनों से भरा-पूरा रहा है। खेती-किसानी लोगों की जीविका का मुख्य साधन रही है। प्राचीन समय में भी किसान कृषि एवं पशुपालन पर ही निर्भर थे। समाज में वर्ण व्यवस्था को ही आधार बनाकर कार्य बांटे गए थे। अन्न उपजाने के मामले में इस काल तक यह साक्ष्य नहीं मिलते हैं कि किसान किन उपजों की खेती करते थे। रमेशचन्द्र मजुमदार के अनुसार- "गांववालों की प्रधान जीविका खेती थी। कृषिकला का महत्व कृष्टि या चर्षणि (खेतिहर) नाम से साफ व्यक्त होता है। यह नाम साधारण रूप से जनता के लिए और विशेष रूप से पांच प्रधान जनों के लिए, जिनमें प्रारंभिक वैदिक काल के लोग बंटे थे, लागू होता है। जोते हुए खेत उर्वरा या क्षेत्र कहे जाते थे। ये बहुधा नहरों से सींचे जाते थे। खाद का उपयोग भी ज्ञात था। भूमि में उत्पन्न अन्न धान या यव कहा जाता था। किंतु इन नामों की ठीक-ठीक विशेषता प्राचीनतम साहित्य से ठीक-ठीक नहीं मालूम होती।"[1]

कृषि हमारे देश में प्राचीनकाल से ही प्रचलित है, उसकी दशा में आज तक सुधार क्यों नहीं हो पाया ? यह विचारणीय तथ्य है। प्राचीनकाल से मध्यकाल और आज हम आधुनिक काल में जी रहे हैं फिर भी कृषि व्यवस्था के ढाचे में और भारतीय किसानों की स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ है। सामंतवाद से लेकर आज तक किसान शोषण का ही शिकार बना हुआ है। परिवर्तन के नाम पर हमारे देश में सिर्फ नाम बदल दिए जाते हैं। राजतंत्र की समाप्ति के पश्चात और अंग्रेजों के आगमन से देश में सामंतवाद का तो खात्मा हो गया, किंतु अंग्रेजों ने सामंतवाद से अपना मैत्रीपूर्ण संबंध स्थापित करने के लिए देश में जमींदारी प्रथा को लागू कर दिया। अंग्रेजों का तो भारत में आगमन का मुख्य उद्देश्य ही भारत में व्यापार को बढ़ावा देना और मुनाफा कमाना था। इसके लिए उन्होंने भारतीय किसानों का भरपूर शोषण किया।

वे भारत से कच्चा माल विदेशों को भेजते थे। इसके लिए उन्हें जिस भी फसल की जरूरत होती थी, वे किसानों को वही उपजाने को बाध्य करते थे। जमींदार अंग्रेजों के लिए किसानों से लगान वसूलने का कार्य करते थे। वे किसानों को तरह-तरह से शोषण का शिकार बनाते थे। इस तरह 'सामंतवाद' के अंत की जगह जमींदारी प्रथा किसानों के शोषण में अपनी भूमिका निभाती रही। सुमित सरकार ने 'आधुनिक भारत' में कहा है- "देशी राजाओं और जमींदारों से तो सकारात्मक नेतृत्व की आशा और भी कम थी। 1857 के बाद से ब्रिटिश सरकार की नीति सदैव ऐसे 'सामंतवादी' तत्वों से मैत्री रखने की रही।.... समस्त व्यवस्था के अंतर्गत भारत के एक-तिहाई भाग में, जो सिद्धांत रूप में देशी शासन के अंतर्गत था, सामंतवादी तामझाम और निरंकुशता को बढ़ावा दिया जाता रहा। यह इस बात का एक और प्रमाण है कि भारत में सच्चा आधुनिकीकरण लाने में उपनिवेशवादी ब्रिटिश सरकार की रूचि कितनी कम थी।"[2]

भारत में किसानों की समस्याओं का एक बड़ा कारण हम अंग्रेज़ी शासन को भी मान सकते हैं। ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के साथ ही हमारे देश में किसानों की दशा बहुत ही खराब हो गई। कंपनी ने जमीन पर स्वयं कब्ज़ा करके जमींदार नियुक्त कर दिए। इससे किसानों के हाथों से जमीन जमींदार के पास चली जाती है। जमींदार किसानों को खेती के लिए भूमि देते हैं और कर वसूल करते हैं। जमींदारी प्रथा से किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार किये जाते हैं। आज हमारे देश में कानूनी रूप से 'जमींदारी प्रथा' का अन्त हो गया है किन्तु भारत के पिछड़े गावों में व्यावहारिक रूप से यह आज भी कायम है। कंपनी का मूल उद्देश्य था मुनाफा कमाना जिससे किसानों की स्थिति बद से बदतर होती गई। बंगाल की पृष्ठभूमि को आधार बनाकर लिखे गए कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' में आदिग्राम के किसानों की दुर्दशा का उत्तरदायी कंपनीराज ही है। कंपनी द्वारा नियुक्त जमींदार किसानों से मनचाहा लगान वसूल करते थे यदि किसान समय से लगान देने में समर्थ नहीं है तो उनकी जमीन वापस ले ली जाती थी। इस तरह से काश्तकार जमींदारों की दया पर ही निर्भर होता था और जमींदार किसानों से धन लूट कर कंपनी का खजाना भरते थे। इस सन्दर्भ में कुणाल सिंह ने उपन्यास 'आदिग्राम उपाख्यान' में लिखा है- "इस

प्रकार रातों-रात पूरे इलाके पर ईस्ट इंडिया कंपनी का राज हो गया। अब किसान अपनी ही जमीन पर मजदूरी करेंगे। फसल बोने से पहले उन्हें कंपनी की इजाजत लेनी पड़ेगी कि धान रोपें या मान लीजिये अफीम या नील की खेती करें।"[3] कंपनी द्वारा किसानों की जमीन पर अधिकार किये जाने के पश्चात किसानों पर कंपनी के अत्याचार भी शुरू हो जाते हैं। जिस जमीन पर किसान अन्न उपजा रहे हैं वही अन्न कंपनी उन्हें खाने तक नहीं दे रही है। 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में लिखा है- "बंगाल में फिर दूसरा अकाल पड़ा। तब तक ईस्ट इंडिया कंपनी नलहाटी बाजार में अनाज की आढ़त और गोदाम बनवा चुकी थी। यहाँ का अनाज बैलगाड़ियों में लादकर कलकत्ते पहुँचाया जाता। कहा जाता है कि जब दूसरा अकाल पड़ा, कंपनी के गोदामों में कोई एक लाख मन धान जमा रखा हुआ था।"[4]

सन 1765 में जब ईस्ट इंडिया कंपनी ने बंगाल के सूबे की संग्रह की कमान संभाली, तभी से वहां किसानों की दुर्दशा की शुरुआत हो गयी थी। अंग्रेजों ने बंगाल के किसानों से कर वसूलने के लिए तरह-तरह की प्रथाएं लागू कीं। जमींदारी, रैयतवारी और महलवारी प्रथाएं कर वसूलने के लिए ही बनाई गई थीं। जमींदार अपने को कंपनी का सच्चा हितैषी दिखाने के लिए किसानों से लगान वसूलते और उन पर तरह-तरह के अत्याचार करते। प्राकृतिक प्रकोप हो या अन्य किसी भी कारणवश फसल खराब होने पर भी कंपनी किसानों को कोई छूट नहीं देती थी। जमींदार हर हालत में कंपनी को उतनी राशि देते थे, जितना वे कंपनी से तय किए रहते थे। बंगाल में पड़े भयंकर अकाल के समय भी कम्पनी किसानों से उसी मुस्तैदी से कर वसूलती थी। किसान रोता-गिड़गिड़ाता रहता किंतु उसे कोई राहत नहीं मिलती थी इस प्रसंग में सब्यसाची भट्टाचार्य ने अपनी पुस्तक' आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास' में लिखा है- "क्वार-कार्तिक में एक बूँद पानी नहीं बरसा। खेतों में फसल लगी थी उसे राजा के कर्मचारियों ने सिपाहियों के लिए खरीद लिया। लोगों को खाना नहीं मिल पा रहा था... पर मुहम्मद रजा खां मालगुजारी वसूली का मालिक था... उसने एकदम से सौ पर दस रूपए मालगुजारी बढ़ा दी। पूरे बंगाल में हाहाकार मच गया। लोगों ने पहले भीख माँगना शुरू किया, बाद में भीख देने वाला भी कोई नहीं रहा। लोगों ने अपने बैल-बछिया बेच दिए

। हल-फाल, घर द्वार बेच दिए और बीज के लिए रखा धान खा गए, जमीनें बेच दीं, फिर अपनी लड़कियों को बेचने लगे, फिर अपने लड़के बेचने लगे। बाद में लड़की-लड़कों, स्त्रियों को भी कौन खरीदे ? खरीददार कहीं नहीं थे, सभी सिर्फ बेचना चाहते थे। कुछ भी खाने को नहीं रहा तो लोग पेड़ों के पत्ते खाने लगे, घास खाना शुरू किया। जंगली जड़ी-बूटी खाने लगे। कुछ देश छोड़कर परदेश भाग गए। जो भागे वे परदेश में भूख से मरे। जो नहीं भागे वे न खाने लायक चीजें खाकर, बिना खाए या बीमार होकर मरने लगे।"[5]

कंपनी के फ़ौज के कमांडर गाँव में घूम-घूम कर मुनादी कराते हैं कि जो भी किसान कंपनी को मालगुजारी नहीं देगा उसे कोड़ों से पीटा जाएगा। इसके बाद भी अगर उसने मालगुजारी नहीं चुकता की उसे सूली पर चढ़ा दिया जाएगा। बंगाल अकाल के समय जब वहां के किसान भूखे मर रहे थे, तब भला उनके पास मालगुजारी चुकाने के लिए रकम कहाँ से आती। ऐसे समय में कंपनी उन्हें कोई सहूलियत नहीं देती है। अकाल के समय किसानों की दुर्दशा को 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास की इन पंक्तियों में दिखाया गया है- "पाँच-छ: साल बाद भीषण अकाल पड़ा। अब तक दर्ज इतिहास में बंगाल पर पड़ने वाला पहला अकाल। लोग दाने- दाने के लिए मोहताज हो गए। चारो तरफ हाहाकार मच गया। लेकिन कंपनी ने मालगुजारी में कोई रियायत नहीं बरती। खाने को कोई अन्न नहीं, मालगुजारी कहाँ से दें। बच्चे बूढ़े सब पर कोड़े बरसे, औरतों ने अफसरों की सेवा-टहल तक कुबूल कर ली, फिर भी मालगुजारी चुक्ता करने भर पैसे इक्कट्ठा नहीं हुए।"[6]

ईस्ट इंडिया कंपनी ने हमारे देश में इस तरह अपनी पैठ बना ली कि धीरे-धीरे किसानों की भूमि पर कब्ज़ा कर लिया। बंगाल की सरजमीं पर ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के बाद से ही वहां की जमीन पर कंपनी का कब्ज़ा हो गया। तब से लेकर आज तक हमारे सामने ऐसी कई घटनाएं सामने आयीं जब वहां के किसानों को अपनी जमीन से हाथ धोना पड़ा है। किसान के लिए उसकी भूमि ही सबकुछ होती है। वह उसे बचाने के लिए सबकुछ करने को तैयार रहता है। 'नंदीग्राम' की ही बात की जाए तो किसान

अपनी जमीन किसी भी कीमत पर नहीं देना चाहते थे। उन पर बहुत से अत्याचार किए जाते हैं। किंतु अपनी भूमि को बचाने के लिए वे डटे रहते हैं। किसान फैक्ट्री के नुमाइंदों से कहते हैं- "क्या आप जानते हैं कि हमारी जमीन ही हमारी फैक्टरी है। सालेम की एक फैक्टरी लगाने के लिए हमारी तरह के हजारों किसान अपनी-अपनी फैक्टरी से अपना स्वामित्व छोड़ दें।"[7] कंपनी का मूल उद्देश्य था किसानों की जमीन पर अपना कब्ज़ा करना था जिससे किसानों स्थिति बद से बदतर होती गई।

आजादी के बाद देश से जमींदारी प्रथा तो खत्म हो गई किंतु जमींदारों के अत्याचार नहीं समाप्त हुए। इस दृष्टि से भीमसेन त्यागी का 'जमीन' उपन्यास उल्लेखनीय है। जमींदारों के अत्याचार से किसान किस तरह से पीड़ित थे, इसका उदाहरण हमें भीमसेन त्यागी के 'जमीन' उपन्यास का अकेला महकू ही दे सकता है- "महकू अपनी कोठरी के आगे छप्पर में जमीन पर बैठा बान बट रहा है। जिस्म पर सिर्फ आठ अंगुल चौड़ी लंगौटी। जिस्म जली लकड़ी जैसा रुखा और खुरदुरा।"[8] महकू जिस चारपाई पर बैठा है वह टूटने के कगार पर है। उसकी चारपाई के चार पाये ही उसकी गरीबी और दीनता को प्रकट करने के लिए काफी है- "कामरेड जोशी उस नायाब चारपाई को देखते रह गए। उसके चारों पाये अलग-अलग नस्ल के हैं। एक खराद किया गया पाया उस ज़माने का है, जब कभी यह चारपाई बनी होगी। बाकी तीन इतिहास के अलग-अलग दौर के साक्षी हैं। टेढ़ी-मेढ़ी लकड़ियों को काटकर बिना छीले-तराशे, उसमें सुराख करके बाहीं-सेखे ठोंक दिए गए हैं। एक बाही और एक सेरवा बांस के हैं। दूसरी बाहीं ठाकुर चन्दन सिंह के बगीचे से अमरूद की शाखा काटकर बनायी गई हैं और दूसरे सेखे की जगह लोहे का जंग खाया सरिया लगा है। चारपाई के आधे बाण टूट चुके हैं। वे झालर की मानिंद नीचे झूल रहे हैं। महकू इस चारपाई पर टाट बिछाकर ठाठ से सोता है।"[9] गाँव के जमींदार ठाकुर चन्दन सिंह जो किसानों पर तरह-तरह के अत्याचार करते हैं। महकू की कई पीढ़ियाँ ठाकुर चन्दन सिंह का कर्ज नहीं चुका पाती हैं क्योंकि उसे खुद नहीं पता कि उन्होंने ठाकुर चन्दन सिंह से कितना कर्ज लिया है। उसकी पीढ़ी दर पीढ़ी ठाकुर चन्दन सिंह के यहाँ बेगार करती आ रही हैं किन्तु उनका कर्ज खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा है- "हर

साल दशहरे पर ठाकुर चन्दन सिंह महकू के अंगूठे की टीप लेता है। कलम की मार। बेचारा महकू कुछ नहीं समझता। उसे पता नहीं कि ठाकुर का क्या लेना देना है। बस, इतना पता है कि उसके दादा ने चन्दन सिंह के दादा से दो बिस्सी और दस रुपये लिए थे। कुल जमा बीस तक गिनती जानता है महकू। लंबा चौड़ा हिसाब उसकी समझ में नहीं आता। समझने से फायदा भी क्या ? कर्ज पहाड़ बन चुका है। महकू को मालूम है कि अपनी खाल बेचकर भी वह ठाकुर का कर्ज नहीं चुका सकता। तो फिर इसके अलावा क्या चारा है कि वह और उसका कुनबा ठाकुर की बेगार करता रहे।"[10]

जमींदार किसानों से बेगार कराने के साथ-साथ उनकी पत्नी और पुत्री का शारीरिक शोषण भी करते थे। जब भी किसी किसान का विवाह होता था तो वह अपनी पत्नी को मालिक के पास पैर छुवाने ले जाता है। उसकी बहू को एक दिन के लिए जमींदार के पास ही ठहरना पड़ता है। महकू की पत्नी कहती है- "इन जिमींदारों ने जैसे जमीन आपस में बाँट रखी है वैसे ही रैयत-रियाया भी। ये रैयत की जोरू को अपनी जियाजाद सिमझैं ! तूने पहले क्यूं नहीं बताया था। बता देता तो मैं वहां कभी न जाती।"[11] गाँव का कोई भी किसान अपनी पत्नी को ठाकुर के पास नहीं भेजना चाहता, किन्तु वह जानता है कि उसके चाहने न चाहने से कुछ भी नहीं होने वाला है। यदि वह अपनी इच्छा से नहीं भेजेगा तो ठाकुर जबर्दस्ती उसे उठाकर ले जावेंगे। उसे बेदखल करने की धमकी देते हैं- "गाँव की रीत ही ऐसी है। उसने खुशामद भरे लहजे में अनारो से कहा- "भागमान,एक दफै फिर कहूँ-चली चल। तू नहीं जाएगी तो ठाकुर जान ले लेगा।"[12]

जमींदार अपने ताकत और डर बनाकर ही गाँव के किसानों पर हुक्म चला रहे हैं। इन जमींदारों को भली-भांति पता है कि जब तक जमीन इनके हाथ में है तभी तक ये किसानों पर अपना हुक्म चला सकते हैं। ठाकुर रौनक सिंह कहते हैं- "इस जमीन की बदौलत ही तो हम जमींदार हैं। इसी से रुतबा कायम है। दयामी पट्टे लिख दिए तो समझो खुद अपने हाथ कटवा लिए। यह ठीक है कि लगान फिर भी

मिलता रहेगा। लेकिन किसी को बेदखल करने का हक तो नहीं रहेगा। असल चीज़ तो हक है वही न रहा तो फिर हमारी दाब में कौन आयेगा और दाब न रही तो हो चुकी जमींदारी।"[13]

जमींदारों के अत्याचार से किसानों को मुक्त कराने के लिये हमारे देश में 1950 में जमींदारी उन्मूलन कानून पास किया गया। 'जमींदारी उन्मूलन' कानून पास होने के पहले ही जमींदारों को इस बात की भनक लग जाती है। उन्हें यह बात भली-भांति पता है कि कानून पास होते ही जमीन उनके हाथ से निकलकर सीधे सरकार के कब्जे में चली जाएगी। इसलिए वे किसानों के शोषण का एक और मौका कैसे गंवा देते। वे किसानों को भूमि पट्टा कराने का लालच देकर उनसे पैसे ऐंठने लगे। किसानों के हाथ में जमीन तो आई नहीं हाँ भूमि का पट्टा कराने के लिए उन्हें अपना घर-बार अवश्य बेचना पड़ गया। क्योंकि जमींदारों ने चलाकी से अपनी भूमि अपने सगे संबंधियों के नाम कर दी। जिससे वे पूर्ववत जमींदार ही बने रहें। रामकिशोर मेहता के अनुसार- "चतुर। चालाक जमींदारों। जागीरदारों को आने वाले जमींदारी उन्मूलन कानूनों की हवा उनके कानून बनने से पहले ही लग गयी थी। उन्होंने अपनी जागीर का एक बहुत बड़ा हिस्सा अपने रिश्तेदारों संबंधियों के नाम किसानी के रूप में पहले से ही दिखा दिया, जिससे जमीन का वह हिस्सा उनके वास्तविक कब्जे में बना ही रह गया और जिस पर जमीन से वंचित किसान आज भी खेती कर उपज का एक बहुत बड़ा हिस्सा उन्हीं जमींदारों को दे देते हैं।"[14]

'जमीन' उपन्यास में जमींदारी उन्मूलन कानून का किसानों पर पड़े दुष्प्रभाव को दिखाया गया है। जमींदार किसानों को जमीन पट्टा कराने के लिए कहते हैं। सौ रुपए में एक बीघे भूमि का पट्टा यदि किसान पट्टा नहीं करवाते हैं तो उनको बेदखल कर दिया जायेगा। तमाम किसान पर विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ता है किन्तु वे इतना पैसा कहाँ से लाएँ कि जमीन का पट्टा करा सके। रतनू जिसके पास दस बीघे जमीन है। उसे पट्टा कराने के लिये एक हजार रुपये नकद चाहिए, किन्तु रुपये कहाँ से लाये। जमीन बचाने के लिए उसे महाजन पुन्नू के पास जाना पड़ता है। पुन्नू किसानों को पैसे देकर उन पर ब्याज पर ब्याज चढ़ाता है और अब उसे पता है कि रतनू के पास उसके घर को छोड़ और कुछ नहीं बचा है। तो वह कहता है कि

अपने मकान को मेरे पास गिरवी रख दे। रतनू जिसके पास सिर्फ मकान ही है जो उसके बाप दादा की निशानी है। यदि यह मकान भी न बचा तो उसका परिवार कहाँ रहेगा। जमीन बचाने के लिए उसे अपना मकान तक गिरवी रखना पड़ता है। वह सोचता है कि यदि जमीन बच गई तो वह मेहनत करके मकान भी छुड़वा लेगा। भूमि पट्टा कराने के बाद किसानों को पता चलता है कि उन्हें सरकारी लगान का दस गुना चुकाना होगा, तब कहीं जमीन उनके नाम होगी।

किसान बेचारे एक बार फिर जमींदारी जाते-जाते उनके शोषण के शिकार हो जाते हैं- "रतनू जमींदारी खात्मे की खबर सुनकर जितना खुश था, उतना ही उदास हो गया। खुश इसलिए कि वह हमेशा-हमेशा के लिए रौनक सिंह के फंदे से निकल जाएगा और उदास इसलिए कि उसे पता होता कि सरकार क़ानून बना रही है तो वह दमामी पट्टा क्यों कराता ! ठग लिया ठाकुर रौनक ने ! रौनक ही क्यों। चन्दन सिंह ने तो और भी ज्यादा दमामी पट्टे किये। बड़ी कुत्ती जात है जमींदार की। इन्होंने पहले ही सूंघ लिया था कि जमींदारी खत्म होने वाली है। बस रगड़ दिए बेचारे काश्तकारों को।"[15] जो किसान आजादी आने और जमींदारी प्रथा के खत्म होने से खुश थे, उन्हें इसका को लाभ नहीं हुआ उनकी स्थिति पूर्ववत ही बनी रही। अरुण प्रकाश के अनुसार- "खेती-बारी और पशुपालन के बूते अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करता गाँव और बेहतरी का स्वप्न पाले उसके किसान। इसी से जुड़ा है आजादी का सपना। यह पूरा हो तो उसके सारे सपने पूरे हो जायेंगे। आजादी आयी भी लेकिन किसानों की जिन्दगी में बेहतरी का स्वप्न धरा का धरा रह गया।"[16] जमींदारी प्रथा तो समाप्त हो गई, किन्तु किसानों की समस्याएं वैसे ही बनी हुई हैं। रतनू और चंपा अपने खेत में जी-जान लगाकर मेहनत करते हैं किन्तु उन्हें पेट भरने लायक अनाज नहीं मिल पाता है। किसी तरह से वे कर्ज लेकर अपना खर्च चलाते हैं। पेट भरने लायक अनाज अगर जुटा भी लें तो उनके सामने तीज-त्यौहार बच्चों की पढ़ाई का खर्च भी है। वे यही नहीं तय कर पाते कि किस तरह से अपने बेटे की फीस भरें। हमेशा उन्हें यही डर लगा रहता है कि यही हाल रहा तो एक दिन उनकी जमीन भी उनसे छीन ली जायेगी- "बरसात आती है तो किसान के घर में सूखा पड़ जाता है। ईख के पैसे

तो पहले ही ठिकाने लग जाते हैं, बरसात आते-आते अनाज के दाने भी किनारे आ लगते हैं। दस रुपये का खर्च भी आ जाए तो किसी न किसी के सामने हाथ फैलाना पड़ता है। विजय के दाखिले में चालीस-पचास तो लगेंगे ही। और हाथ में फूटी कौड़ी भी नहीं। तो क्या करें।"[17]

हमारे देश का किसान आज भी संसाधनों की समस्या से जूझ रहा है। कृषि करने के लिए खाद-बीज के साथ-साथ सिंचाई हेतु पानी सबसे बड़ी आवश्यकता है। देश में पर्याप्त संख्या में नदी एवं नहर होने के बावजूद किसानों की फसलें सूख जाती हैं। विदर्भ आदि के किसान सूखे की समस्या से त्रस्त हैं तो बिहार के किसानों की फसलें पानी की अधिकता से खराब हो जाती हैं। सरकार नहर एवं बाँध बनाने के लिए किसानों की जमीन अधिग्रहित करती है, किंतु उनके निर्माण के बाद उन्हें सिंचाई के लिए पानी ही नहीं दिया जाता है। सरकार की तरफ से किसानों की पानी की समस्या को दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं किए जाते हैं- "बांधों और उनसे निकली नहरों के बाद सिंचाई में सबसे अधिक भूजल का उपयोग होता है। वह भी ट्यूबवेल के माध्यम से। जिनके संचालन में बिजली की आवश्यकता होती है। बिजली की उपलब्धता बहुत बड़ी समस्या रही है। सरकारों ने हमेशा उद्योगों को, शहरी उपभोक्ता को प्राथमिकता दी है।.... किसान जिसे खेतों की सिंचाई करनी होती है, उसे हमेशा ही बिजली ऐसे समय दी जाती है जब दूसरे लोग उसका उपयोग कम करते हैं।"[18] कभी-कभी वह पर्याप्त जमीन होते हुए भी हर सीजन का फसल नहीं उगा पाता।

सिंचाई के अभाव में किसानों के खेत एक फसली हो जाते हैं, ऐसी ही समस्या से सूर्यनाथ सिंह का उपन्यास 'चलती चाकी' का मंगतराम श्वेतानंद को अवगत कराता है- "क्या करें महाराज, पानी उसमें आज तक नहीं आया। बरसाती कटाव से उसमें मिट्टी भरती गई। झाड़-झंखाड़ उग आये हैं। कुछ लोगों ने ट्यूबेल लगाये हैं, मगर जमीन में पानी इतना नीचे है कि सारे लोगों की जरूरत पूरी नहीं हो पाती। गेहूं, गन्ना वगैरह के लिए तो पानी चाहिए, इसलिए बहुत कम बो पाते हैं।"[19] इसी प्रकार सिंचाई की समस्या एम.एम. चंद्रा के उपन्यास 'यह गाँव बिकाऊ है' में देखने को मिलती है। जहां के किसानों की जमीन पानी

के अभाव में सूख रही है, और जो पानी नहर से आता भी था वह इतना प्रदूषित हो गया कि इससे गाँव की जमीन बंजर होने के कगार पर पहुंच जाती है। वह गाँव जो कभी कृषि के मामले में उस इलाके का सबसे समृद्ध गाँव था आज वहां के किसान बदहाली का जीवन जीने पर मजबूर हैं- "वह नंगला गाँव, जो कभी आजादी के इतने सालों बाद तक देश के लिए अन्न उगाता था, वह खुद अन्न के लिए मोहताज हो जाएगा, इसके बारे में सोचकर भी रूह कांपने लगी।"[20] सिंचाई की समस्या जयनंदन के उपन्यास 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' में भी देखने को मिलती है। उपन्यास का केंद्र लतीफ़गंज नामक के गाँव के किसान हैं। वहां के किसानों ने अपने खेतों में धान उगाना सिर्फ इसलिए बंद कर दिया क्योंकि उनके खेतों तक नहर का पानी नहीं पंहुच पा रहा है। लतीफगंज गाँव जहाँ धान की पैदावार इतनी अच्छी होती थी कि उस क्षेत्र को 'धान का कटोरा' कहते थे। वहाँ के किसानों की मुख्य फसल और जीविका धान की फसल पर ही निर्भर होती थी। जकीर कहता है- "भैरव, गन्ने की मार हम इसलिए सह गए यार कि हमारी रीढ़ धान के कुछ खेत बचा सकते हैं।"[21]

लतीफ़गंज गाँव में न बिजली आती है और न नहर का पानी। जकीर जैसे मझले किसानों ने किसी तरह से कर्ज लेकर बोरिंग करवाई, किन्तु उससे सिर्फ आसपास के खेतों की ही सिंचाई हो सकती है। दूर के खेत तो अभी भी सूखे ही हैं- "जकीर का चेहरा उतर गया था। पंप की पहुंच वाले खेत में उसने रोपा कर दिया था, लेकिन इतने से साल भर तो क्या तीन महीने भी लगातार चूल्हा नहीं जलने वाला थे, गन्ने के बाद धान पर ही गृहस्थी का सारा दारोमदार टिक गया था। गाँव के सभी लोग हताश-उदास इधर-उधर यों ही डोल रहे थे जबकि इस मौसम में किसी को छींकने-खांसने की फुर्सत नहीं हुआ करती थी।"[22] जकीर मध्यम दर्जे का एक सम्पन्न किसान है, किन्तु पानी की कमी से उसकी खरीफ एवं रबी दोनों ही फसल खराब हो गई। पहले उसके घर की कोठियों में कई मन चावल का भंडार रहता था किन्तु आज उसकी स्थिति यहाँ तक पहुंच गई है कि कर्ज के अलावा उसके पास कुछ भी नहीं बचा। बोरिंग करवाने के लिए उसने जो कर्ज लिया तह वह अब घटने की बजाय बढ़ता ही चला गया।

सुनील चतुर्वेदी के उपन्यास 'कालीचाट' का युनुस तो अपने खेतों में ट्यूबवैल खुदवाने के लिए अपनी दो एकड़ जमीन तक गिरवी रख देता है। वह सोचता है कि यदि खेत में ट्यूबवैल लग जाएगा तो फसल की पैदावार अच्छी होगी। बेटों की शादी हो जाएगी और अपने रेहन पर रखे खेत भी छुड़वा लेगा। किसान के सपने आज तक कभी साकार नहीं हुए हैं जो युनुस का सोचना सही साबित होगा। युनुस ने जो बोरिंग करवाई उसमें से पानी ही नहीं निकला- "सुना है ट्यूबवैल में पानी नहीं निकला," दिनेश ने हिम्मत करके सीधे पूछ लिया- "भईया, मुंह धोने जित्तो पानी भी नी हिटियो। अब कई करां। बीस हजार को जूओ खेलियो थो। हार गया। अब रंज करने से कईं होणो जानो है।"[23] युनुस कर्ज के दलदल में फंसा हुआ है। फिर भी वह सोचता है कि वह और उसका परिवार मिलकर खेत में कुंआ खोदेंगे। किंतु यहाँ भी उसे निराशा ही मिलती है। कुआं खोदते समय निकली कालीचाट को तुड़वाने के लिए उसे पाँच हजार रुपये कर्ज भी लेने पड़ते हैं। इतनी मेहनत के बाद भी न कुएं की कालीचाट टूटती है और न ही पानी निकलता है- "युनुस सूखे कुएं की तली को देखते हुए सोच रहा था। किसान की तो पूरी जिंदगी कालीचाट जैसी है। अंधियारी और कड़क। क्या मालूम यह चाट कब टूटेगी। कब इसके पीछे से भरभरा के पानी का उकाला फूटेगा और किसान की जिंदगी में ठंडे पानी के छींटे आएंगे। कब ....कब .... ।"[24] राजू शर्मा के उपन्यास 'हलफनामे' का स्वामीराम पानी की कमी को दूर करने के लिए एक के बाद एक तीन बोरिंग करवाता है, लेकिन एक भी बोरिंग से पानी नहीं आता है। स्वामीराम पर अथाह कर्ज का बोझ आ जाता है- "स्वामी की बस इतनी इच्छा थी कि अकाल का समाधान हो खेत को, जानवर को आदमी को गुजारे लायक पानी मिले। इसके लिए वह कुछ भी करने को तैयार और तत्पर था। उसका धीरज अब घटता जा रहा रहा था।"[25]

3.2 महिला किसान की उपस्थिति

हमारे समाज में स्त्रियां हमेशा से कृषि कार्य में बढ़-चढ़कर हिस्सा लेती रही हैं, किन्तु उन्हें किसान का दर्जा अभी तक नहीं प्राप्त हुआ है। जबकि खेती के हर छोटे बड़े-काम में महिलाएं पुरुष का हाथ बटाती

हैं। यहाँ तक कि पुरुष की अनुपस्थिति और उसके असमर्थ होने पर उन पर गृहस्थी एवं खेती दोनों का भार आ जाता है। अपनी मेहनत से वह दोनों कार्यों को बखूबी निभाती हैं।

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में महाजन के चंगुल में फंसे किसान साहिबु जिसे समय-समय पर महाजन भीमा बा के यहाँ बेगार करना पड़ता है। भीमा बा के घर पर पानी की बैलगाड़ी ले जाते समय साहिबु का पैर बैलगाड़ी के पहिये के नीचे आ जाता है। उसका पैर तक काटना पड़ता है। इलाज के लिए जो भी पैसे लगते हैं उसके बदले में भीमा बा ने साहिबु की जमीन गिरवी रख ली। अब साहिबु की पत्नी पर सारा कार्यभार आ जाता है- "घर और खेती बाड़ी का पूरा काम रेशमी ने सम्हाल लिया था। वह सुबह से शाम तक घर और खेती के बीच चकरघिन्नी बनी रहती। इन सब कामों के बीच वह साहिबु के हर छोटी-बड़ी जरूरत का ध्यान रखती। वह इस बात की पूरी कोशिश करती कि साहिबु को अपंग होने का अहसास ना हो।"[26] रेशमी साहिबु को यह भी दिलासा देती रहती है कि भीमा बा के पास रेहन की जमीन को भी वह मेहनत करके छुड़ा लेगी। भीमा बा के खेत में रेशमी बेगार करती है कि किसी तरह से भीमा बा के कर्ज का ब्याज चुकता होता रहे। अपने दुःख एवं कर्ज से मुक्ति के लिए अपंग साहिबु घर और बाहर का सब बोझ रेशमी पर डालकर घर छोड़कर चला गया किन्तु रेशमी उसे तो अपनी जिम्मेदारियों को बखूबी निभाना था- "रेशमी का सोचना था कि जमीन पर साहिबु के बाद अब सुरेश का हक है और सुरेश को अपना हक मिलना चाहिए। साहिबु का कर्जा चुकाना उसका फर्ज है और वह मेहनत मजूरी करके पाई-पाई चुका देगी।"[27] रेशमी मजदूरी करके किसी तरह से अपना और अपने बेटे का पेट पालती है। जब रेशमी को यह पता चलता है कि उसकी जमीन पर भीमा बा ने धोखे से कब्ज़ा किया है। वह कलेक्टर के सामने बोलने से बिल्कुल नहीं डरती। जिस भीमा बा के सामने आज तक किसी की बोलने की हिम्मत नहीं पड़ी उन्हीं के सामने रेशमी कहती है- "या तो मैं अब तक इसे चुप थी कि म्हारा माथे थारो करजो है। पर आज सच्चई सामने आ गई है। तू जो असल मरद को मूत हो तो आज का बाद म्हारी जमीन पे पांव धर के बता जे। काट के नीं फेंक दू तो मैं भी एक बाप की औलाद नी।"[28]

सरकार की तरफ से यह नियम बना दिया गया कि पिता की जायजाद में से पुत्री को भी हिस्सा मिलेगा किन्तु अभी भी व्यावहारिक रूप से यह हमारे यहाँ नहीं लागू हुआ है। पुत्र चाहे जमीन पर कृषि न करके उसे बेचकर शहर पलायन कर ले, किन्तु आज भी माता-पिता अपनी जमीन में से पुत्री को हिस्सा नहीं देना चाहते। रुक्मणि जिसके जीने का सहारा उसके पिता के खेत ही हैं। फिर भी उसकी माँ यह नहीं चाहती कि रुक्मणि को वह जमीन दे- "रुक्का के काय को हिस्सो।..... छोरी के कोई जमीन जायजाद में हिस्सो दे है।"[29] भीमा बा के चंगुल से जब से रेशमी के खेत छूटे तब से उसने खेती में ही अपना पूरा मन रमा लिया था। अपनी भूमि के साथ उसकी तमाम तरह की यादें जुड़ी हुई हैं। इसीलिए जब उसके पुत्र सुरेश ने जमीन बेंच दी तो वह पागल हो जाती है।

कृषि में महिलाओं के योगदान का अंदाजा मिथिलेश्वर के तेरा 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास के बलेसर के इस कथन से लगता है- "पत्नी के बिना इस गाँव में अकेले रहते हुए खेती-किसानी करने का उनका मकसद ही समाप्त हो जाएगा। तब इस निष्ठा से वह किसके लिए खेती करेंगे और क्यों खेती करेंगे? घर में पत्नी की उपस्थिति ही उनके लिए खेती-किसानी की प्रेरणा थी। कृषि के उपार्जन पर उनसे कम ख़ुशी उनकी पत्नी को नहीं होती थी। दोनों की समवेत ख़ुशी पर ही कृषि जीवन की उनकी गृहस्थी कायम थी।"[30] घर में पति की अनुपस्थिति में महिलाओं पर घर का सम्पूर्ण दायित्व आ जाता है, महिलाएं अपने दायित्व का निर्वहन भी पूरी निष्ठा के साथ करती है। पुरुष प्रधान समाज में पुरुषों के समकक्ष महिलाओं की भागीदारी को बर्दाश्त नहीं किया जाता है।

'जमीन' उपन्यास में रतनू के जेल जाने के बाद चम्पा स्वयं अपने खेतों में हल चलाती है, स्वयं बीज बोती है। चम्पा का ऐसा करना गाँव के जमींदार ठाकुर चंदन सिंह को अच्छा नहीं लगता। वो कहते हैं- "पंचो आज हमारे गाँव में एक अधर्म का काम हुआ है। रतनू की बहु चम्पा सरेआम हल चलाते देखी गयी है। सारा गाँव इसका गवाह है। हल चलाना धरती माता के पेट को फाड़ना है। पाप है। यह भले आदमियों का नहीं चांडालों का काम है। चम्पा हल चलाकर चाण्डालिनी बन गई है। इसके इस कर्म की

सजा पूरे गाँव को भुगतनी होगी..... ऐसी चाण्डालिनी औरत को सजा जरूर मिलनी चाहिए।"[31] आज भी यदि कोई महिला अपने खेत में स्वयं हल चलाती है या खेती संभालती है तो समाज उसे सम्मान की दृष्टि से भी नहीं देखता है। चन्दन सिंह रतनू को यह सोचकर जेल भिजवाता है कि अब रतनू के न रहने पर उसके खेत खाली रह जायेंगे, उसके बच्चे भूखो भरेंगे। किन्तु चम्पा अपनी मेहनत से उसके मंसूबों पर पानी फेर देती है। वह सुबह खेतों में जाती, अपने खेत की निराई, गुड़ाई करती है। उसके मेहनत से उसके खेत में हर साल की अपेक्षा ज्यादा पैदावार होती है।

राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास की पारबती हमारे समक्ष एक सशक्त महिला किसान के रूप में उभरती है। वह अपने घर से लेकर खेत का संचालन करती है। यहाँ तक कि भूमि अधिग्रहण के विरोध में वह सबका नेतृत्व करती है- "म्हारी जघे-जमीन पर कब्ज़ा हो रया जो न बोलूं। ई न होगा। हम नई मानते ऐसी पंची पंचैत को। न हम मानते कासीनाथ की कारस्तानी को। खुद काहे नईं आता सामने। काहे को प्यादे भेजता हुआ। आके हमसे बात करे। अपने घर के अंदर बना ले जो उसको बनाना हो। हमने ईब इनकार किया उसको तो किया। ईब जो हो सो हो जाए, हम अपनी जमीन न देंगे। म्हारा तो येई फैसला हुआ। गरचे पंचैत कासीनाथ की चेरी बन जाए तो हम दरबदर हो लें। ई न होगा।"[32] स्त्रियाँ आज क्या नहीं कर सकती। खेती से लेकर परिवार, बच्चे, पति, भोजन यहाँ तक की फसल बोने और काटने तक का दायित्व उन पर रहता है। ऐसी ही स्त्री किसान के रूप में संजीव के 'फांस' उपन्यास की आशा हमारे सामने आती है। जिसका पति शराबी है। आशा के ऊपर ही घर की सारी जिम्मेदारियां हैं। वह मेहनत करके खेत भी खरीदती है। आशा के आत्महत्या करने पर उसका पति सुरेश कहता है- "देखो साहब, तुम उसकी मौत को 'पात्र' घोषित करो या 'अपात्र' तुम्हारी मर्जी, मगर तुम्हें कोई हक नहीं कि मेरी बायको को लांछित करो। वो मुझसे ज्यादा पढ़ी-लिखी, सच्ची किसान।"[33]

कृषि के क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता पुरुष के बराबर है किन्तु उनकी मेहनत को पुरुषों की तुलना में कम आँका जाता है। आज कृषि कार्य में पुरुषों के कार्य के लिए कई आधुनिक तकनीकि

विकसित हुई हैं जैसे ट्रैक्टर, सिंचाई के साधन, कीटनाशक छिड़काव किन्तु स्त्रियों के कार्यों को सरल बनाने वाली तकनीकि नहीं के बराबर विकसित हुई हैं। तमाम तरह की समस्याओं एवं जिम्मेदारियों को निभाते हुए भी कृषि कार्य में महिलाएं महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही हैं।

3.3 किसान और सरकारी नीतियां

भारतीय समाज में कृषि एवं किसान की दुर्दशा से कोई भी अनजान नहीं है। आजादी के इतने वर्षों बाद भी किसानों की समस्याएँ यथावत। हमारे समाज की सबसे बड़ी आबादी कृषि पर निर्भर है। इसके बावजूद हमारे यहाँ किसानों की अनदेखी ही होती रही है। इसी कारण से किसानों की स्थिति में सुधार नहीं आया है। किसानों की स्थिति में सुधार लाने के दावे किए जाते हैं, इसके लिए कुछ नीतियां भी लागू की जाती हैं। फिर भी हमारे देश का किसान समस्याओं में ही जी रहा है। सरकार द्वारा किसानों की स्थिति में सुधार लाने के लिए जो नीतियां बनाई जाती हैं, वे किसानों को ध्यान में रखकर नहीं बनाई जाती हैं। अपितु वे पूंजीपतियों को ध्यान में रखकर बनाई जाती हैं। सरकार द्वारा चुनावी रैलियों में किसानों एवं मजदूरों के लिए वादे तो किए जाते हैं। लेकिन वे वादे कभी सच नहीं होते हैं।

किसानों की समस्या को दूर करने के लिए चकबंदी और जमींदारी उन्मूलन जैसे कानून तो लागू किए गए, लेकिन उसका असल फायदा बाहुबली जमींदारों को ही मिला। किसान बेचारे तो अपनी उसी दीन-हीन दशा में जीवन गुजारने पर मजबूर हैं। 'किसानों के साथ बर्बरता के पीछे' लेख में आशुतोष ने कहा है कि- "आजादी की लड़ाई के दौरान भूमि सुधार और जमींदारी उन्मूलन का वादा कर कांग्रेस ने भारत की विराट किसान जनसंख्या का समर्थन हासिल किया था। लेकिन आजादी के बाद भूमि सुधार निहायत अनमने ढंग से लागू किए गए। जानबूझ कर भूस्वामियों के लिए बच निकलने के हजारों कानूनी रास्ते छोड़ दिए गए। जमींदारियों तो खत्म हो गयीं, लेकिन जमींदारों का रुवाब बना रहा।"[34] जो भी नीतियां लागू की जा रही हैं उससे लघु एवं सीमांत किसानों की स्थितियों में दिन-प्रतिदिन गिरावट हो रही है।

आजादी के बाद देश के कुछ राज्यों में चकबंदी व्यवस्था लागू की गई कि किसानों की अलग-अलग जगहों की जमीनों को चक के रूप में एक ही जगह कर दिया जाए। इस व्यवस्था से किसानों की जो स्थिति हुई। राजू शर्मा के 'हलफनामे' उपन्यास के मकई के कथन से देखा जा सकता है- "गाँव में चकबंदी पूरे चार बरष चली थी, मैं दस साल का रहा हूँगा..... चकबंदी क्या थी, दिन दहाड़े की लूट थी.... पूरा गाँव पिस गया, रोज की कलह और झगड़े.... उस पर न्याय की, मुकदमों और सुनवाई का ढकोसला। सरकारी कारिंदे चकों की नीलामी में लगे थे.... धन पूजो, कहीं अफसर, ओहदा पकड़ो और जो चाहो चक अपने नाम करा लो.... नियम की ऐसी तैसी, हर घर में युद्ध, बलवान दिन भर लाठी भांजे। ऐसा थरथर माहौल पूरे चार बरस तक.... ।"[35] सामाजिक विकास के नाम पर हमारे यहाँ किसानों की जमीनों को अधिग्रहित कर लिया जाता है। कभी सड़क, कभी हॉस्पिटल, कभी मॉल बनाने के लिए किसानों को लालच दिया जाता है कि उनको रोजगार मिलेगा। किन्तु एक बार जमीन छिन जाती है तो न उनके पास रोजगार होता है न जमीन। संजीव का 'फांस' उपन्यास इस स्थिति को बेहतर तरीके से अभिव्यक्त करता है- "भविष्य का सुपर मेगासिटी। न्यूयार्क सिटी से बड़ा ! प्रत्येक किसान परिवार को दो-दो नौकरियाँ देने का आश्वासन देकर ले ली जमीन। न नौकरी दी न जमीन, न पैसा। आशा-निराशा के बीच कुत्ता बने दौड़ रहे हैं किसान पीछे-पीछे। क्या पता, दिन बदल ही जाएँ ! ।"[36]

भूमि अधिग्रहण की समस्या को राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास में भी दिखाया गया है। कासीनाथ किसानों की जमीन हड़पने के लिए तरह-तरह के लालच देता है। वह 'उदास गाँव' के किसानों से कहता है कि तुमने अपना पूरा जीवन इसी खेत में मेहनत करके खपा दिया है, किन्तु आज तक तुम्हें क्या मिला है ? वह उस इलाके में सीमेंट की फैक्ट्री लगाना चाहता है। कासीनाथ किसानों से जमीन लेकर वहां पर कॉलेज और मॉल का निर्माण भी करना चाहता है- "गर तुम लोग अपनी जमीन दो तो हो जाएगा वकास और गर ना दो तो समझो इस कीचड़-चभड़ में तुमारी हड्डियां गलती रहेंगी। गरचे नासमझी करनी हुई तो फेर हड्डियां गलाते रहो। फेर कुछ न होने वाला तुम लोगों का। वकास को जमीन दोगे तो ई बूझो

जे चार पैसे तुमारे गल्ले में आयंगे। पीले सरोवर के चार किनारों पर शहर-बाजार बसा दूंगा। सब के सब मालामाल हो जाओगे।"[37] जिस जमीन पर किसान पीढ़ी दर पीढ़ी खेती करते आये हैं। उस पर कासीनाथ कॉलेज खुलवाना चाहता है। जो कासीनाथ पारबती के बेटे को झूठे क़त्ल के केस में फंसा देता है। उससे किसानों की भलाई की उम्मीद कैसे की जा सकती है। जब से हमारा देश स्वतंत्र हुआ है यहाँ की सरकार विकास और देश में औद्योगीकरण को बढ़ावा देने में ही लगी हुई है। देश में तो विकास हो रहा है किंतु किसान पीछे जा रहा है। विकास कार्य के लिए किसानों की जमीनें अधिग्रहित की जाती हैं। विकास कार्य का किसानों पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। उनकी जमीनें अधिग्रहित कर ली जाती हैं। किसान अपनी जमीन के सहारे ही जीवन जीता है। भूमि अधिग्रहण होने के कारण ही किसान धीरे-धीरे भूमिहीन होते जा रहे हैं। रामशरण जोशी ने अपने एक लेख में इस संदर्भ में लिखा है- "खेतिहर संघर्षों को उत्तर औपनिवेशिक भारत के विभाजन दबावों के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जाना चाहिए। क्योंकि स्वतंत्र भारत का अपना विकास एजेंडा है। जब विकास होगा तो विस्थापन भी होगा। विस्थापन होगा तो पलायन होगा। पलायन होगा तो भूमिहीनता बढ़ेगी और सीमांत खेतिहर कालांतर में शहरी सर्वहारा में तब्दील हो जाएगा। असंगठित श्रमिक के रूप में वह दर-दर की ठोकरें खाता फिरेगा।"[38]

कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में केमिकल हब स्थापित करने के लिए किसानों की जमीनें हड़पी जाने लगीं। कंपनी की तरफ से किसानों को आश्वासन दिया जाता है कि आदिग्राम में कारखाना स्थापित होने के पश्चात यहाँ का विकास होगा। आज आप लोग जिस जमीन पर खेती करके अपना पेट भी नहीं भर पाते, वहीं कारखाना निर्माण के पश्चात आपकी नौकरी लग जायेगी। जब नौकरी लगेगी तो आपको हर महीने वेतन मिलेगा और तब आप चैन की जिन्दगी गुजार सकेंगे- "न सूखे बरसात की फिकिर, न फसल को कीड़ा-पाला लगने का डर। मैं कहता हूँ कि एक बार जब कारखाना बैठ जाएगा तो फिर आप देखेंगे कि यह आदिग्राम, अपना पुराना आदिग्राम नहीं रह जाएगा।"[39] ये सब राज्य सरकार के साथ मिलकर कंपनी का किसानों को ठगने का एक तरीका होता है। भोले-भाले किसान किसी तरह

से एक बार इनके जाल में फंस जाए बस। केंद्र सरकार हो या राज्य सरकार जिन राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय कंपनियों को किसानों से भूमि लेकर स्थापित करती है, वही किसानों की समस्याओं को बढ़ाती हैं।

किसी भी भूमि को जब कारखाना खोलने या अन्य किसी उद्देश्य से अधिग्रहित किया जाता है तो वहां के किसानों को जमीनी स्तर पर भी कई तरह की कठिनाइयों से जूझना पड़ता है। आए दिन वहां के धमाकों और शोर-शराबे से किसानों की नींद हराम हो जाती है। जमीन छिन जाने से किसानों की भावना आहत होती है। सारी समस्याओं को भूलकर वह अपनी जमीन दे भी देते हैं, फिर भी उनसे किए गए वादे कभी पूरे नहीं किए जाते हैं। कभी-कभी कंपनी की स्थापना के कुछ दिन बाद ही किसी कारणवश फैक्ट्री बंद हो जाती है तब न तो उनके पास जमीन बचती है न ही नौकरी। पुष्पराज ने 'नंदीग्राम डायरी' में इसे इस प्रकार से उल्लेखित किया है- "सरकार ने किसानों को धोखे में रखकर नौकरी और अमीरी का प्रलोभन देकर 350 एकड़ जमीन सी.पी.टी कंपनी को दिलायी। जमीन से बेदखल हुए 142 कृषक तब कंपनी में कुछ वर्ष ठेका मजदूर भी रखे गए, पर जल्दी ही जेलिंघम प्रोजेक्ट की हवा निकल गयी। जमीन अब तक सी.पी.टी कंपनी के कब्जे में है।"[40] आदिग्राम में जिस भूमि पर कंपनी का निर्माण हुआ था, वह कंपनी थोड़े दिन बाद बंद हो गई। अब किसानों के पास न तो जमीन है न नौकरी।

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव ने हमारे यहाँ के किसानों की दशा को और भी खराब कर दिया है। आज सब कुछ नकदी हो गया है। किसान को हर काम के लिए नकद पैसा देना पड़ता है। बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के दुष्प्रभाव को संजीव ने अपने 'फांस' उपन्यास में इस तरह से अभिव्यक्त किया है- "किसान से साहूकार बनने चले थे न। अन्न नहीं पैसा चाहिए, कच्चा पैसा। थूक लगाकर हरी-हरी नोट गिनोगे। इस पर मोहन दादा ने क्या कहा था, लड़कों को फीस देनी है, क्या दोगी धान, जोआरी या कापूस ? रेल, बस में टिकट मागेंगे, कौन सा अन्न दोगी ? पैसा ! पैसा ! पैसा ! हर जगह पैसा ! तुम चाहो तो भी गुजरे जमाने में नहीं लौट सकतीं, जब सामान से सामान की अदला-बदली हो जाती।"[41]

भारत कई अनाज और फलों की जन्मस्थली रहा है। यहाँ पर सिंधु-घाटी सभ्यता में लगभग पांच हजार साल पहले गेंहू की खोज के साथ-साथ मटर और जौ की खोज भी हुई। खेती करने के अन्य संसाधन एवं सिंचाई आदि की प्रक्रिया का विकास हमारे देश में प्राचीन काल में ही हो गया था। प्राचीनकाल से ही भारत खेती-किसानी में आत्मनिर्भर रहा है। कृषि समाज में 1962 से 2004 तक का समय 'हरित क्रांति' का काल कहा जाता है। इस दौरान देश में अनाज के उत्पादन में भारी मात्रा में वृद्धि दर्ज की गई। किंतु यह वृद्धि दर सिर्फ गेहूं और धान के उत्पादन में हुई। कृषि के अन्य उत्पादन में गिरावट पर हरित क्रांति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बाकी अनाज के उत्पादन में गिरावट आती गई। दलहन आदि की कमी को भारत अन्य देशों से आयात करके पूरी करता है। हरित क्रांति के आगमन ने भारत में कृषि के नए तकनीकि एवं नए बीजों के प्रयोग पर बल दिया। इससे बड़े किसानों को तो फायदा हुआ किंतु छोटे किसान कर्ज में डूबते चले गए। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के आगमन से भारत में रासायनिक खाद एवं संकर बीजों का प्रयोग बढ़ता गया। इन कंपनियों का मुख्य उद्देश्य देश में अपने व्यापार को बढ़ावा देना होता है। इन्हें किसानों के फायदे नुकसान से कोई मतलब नहीं होता है। देवेन्द्र शर्मा के अनुसार- "अमेरिकी कंपनियाँ वालमार्ट और मोसेंटों ने हाल ही में यह कह दिया कि उनकी दिलचस्पी शोध और उस पर आधारित विकास में कतई नहीं है। बल्कि उनकी आँखे भारत में अपने व्यवसाय को बढ़ाने के अवसरों पर लगी हुई है जिनकी वहां अपार संभावना है।"[42]

बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव से किसानों के सामने खाद-बीज की समस्या उत्पन्न हो गई है। पहले ये कंपनियाँ खुद के बीज महंगे दामों में बेचती हैं, यदि किसान किसी तरह से बीज खरीद ले तो उसे इन्हीं कंपनियों द्वारा बनाए गए कीटनाशक भी खरीदने पड़ते है। इन कंपनियों से खरीदे गए बीज को किसान दोबारा अपने खेतों में नहीं बो सकते हैं। उन्हें हर साल नए बीज खरीदना पड़ता है। संजीव ने 'फांस' उपन्यास में इस विषय पर इस प्रकार लिखा है- "पहले साल इसके कुछ फायदे हुए हों तो हुए हों, किसान चौकें, तब जब दूसरी बार ये बीज जमें ही नहीं। उन्हें तो अभ्यास था एक साल के बीज से उत्पन्न

बीज को दोबारा, तिबारा इस्तेमाल करने का ! वह हुआ नहीं। देसी बीज 7 रूपये किलो था, बी.टी. 930 रूपये प्रति किलो। पहले जो-जो वादे किये गए थे। सब खोखले साबित हुए। निराश लुटा हुआ निरुपाय शेतकरी। यहाँ से शुरू होती है किसानों की आत्महत्याएँ।"[43] बहुराष्ट्रीय कंपनियों के गलत प्रचार से किसानों को परेशानी का सामना करना पड़ता है। पहले किसान अपने खेत के बीज को संजोकर रखता था और साल दर साल उन्हीं बीजों से खेत की बुवाई करता था।

महाराष्ट्र में किसान कपास की नई किस्म बी.टी कॉटन उगाने लगे। इस बीज से शुरुआत के कुछ सालों तक तो उन्हें फायदा हुआ। बाद में उसमें रोग लगने शुरू हो गए। इसके लिए उन्हें कीटनाशक का छिड़काव करना पड़ा। कीटनाशक भी ऐसे कि फसल भी खराब हो गई- "बी.टी कॉटन इस आश्वासन के साथ आया था कि प्रथम दो छिड़काव की जरूरत कम होती जायेगी। मगर हुआ उल्टा। इल्लियाँ क्या मरतीं, मीलबाग जैसे कई भुनगे पैदा हो गए। ऐसे जर्म्स इसके पहले यहाँ नहीं थे। अब इन्हें मारने के लिए और ज्यादा तगड़े कीटनाशक की जरूरत आ पड़ी। फल यह हुआ कि फसल बीज, पानी, कीड़े और मित्र सब का नाश।"[44]

पहले किसान देशी बीजों को खेतों में बोते थे। देशी कीटनाशक से मिट्टी की उर्वरा शक्ति भी बनी रहती है और किसानों को कर्ज लेने की जरूरत नहीं पड़ती। देशी कीटनाशक किसान स्वयं बनाते थे। इस कीटनाशक का हमारे पर्यावरण पर भी कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ता है। इससे उत्पन्न अन्न भी मनुष्य के लिए फायदेमंद होते हैं। किन्तु हाइब्रिड बीज और रासायनिक खादों के प्रयोग ने हमारे देश में बीमारी को भी बढ़ावा दिया है। संजीव ने 'फांस' उपन्यास में लिखा है कि- "कीटनाशक या मनुष्यनाशक ? यह सत्र बीज सत्र के साथ टकराता रहा। पंजाब की रिपोर्ट पेश हुई ,फसलों में कीड़े न लगें अतः कीटनाशकों का छिड़काव जरूरी है सबसे पहले प्रचलित केमिकल कीटनाशकों के साथ यह दिक्कत है कि वे मिट्टी, पानी, बीज में मिलकर हमारे संहारक सिद्ध हो रहे हैं। पंजाब और गुजरात के कितने ही किसान कैंसर और दूसरी बीमारियों से ग्रस्त हो चुके हैं।"[45] मोंसेंटो कंपनी के प्रभाव से महाराष्ट्र में जिस बी.टी कॉटन का प्रचार बढ़ा

उसने किसानों की समस्याओं को बढ़ा दिया। महंगे बीज, महंगे खाद से किसान तबाह हो गए। देशी बीज, देशी कपास का मूल्य घट गया, जबकि मोंसेंटो द्वारा महंगे दामों पर बीज बिक रहा था। इस तरह किसानों की लागत बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। प्रो. नवले ने कहा है कि- "इस उपन्यास में मोंसेंटो कंपनी के बी.टी कॉटन के उत्पाद को लेकर गलत प्रचार किया गया है। मोंसेंटो कंपनी ने दावा तो यह किया था कि जेनेटिकली मोडिफाइड अर्थात बी.टी. कॉटन को नहीं खायेंगे, लेकिन ऐसा नहीं हुआ।"[46] बी.टी. कॉटन आने के बाद से पुराने देशी बीज का मिलना ही बंद हो गया। एम.एम.चंद्रा के उपन्यास 'यह गाँव बिकाऊ है' का बल्ली मध्यम दर्जे का किसान है। वह मल्टीनेशनल कंपनी से बढ़िया बीज खरीदकर फसल की बुआई करता है। उसे लगता है कि उसका पुराना कर्ज उतर जाएगा। लेकिन खेत में एक भी कपास नहीं उगता है। महंगे, खाद, बीज, कीटनाशक प्रयोग के बावजूद उसे कोई लाभ नहीं प्राप्त हुआ। इस तरह से बल्ली कर्ज में डूब गया- "बल्ली को नहीं पता था कि बढ़िया बीज के साथ, उसी कंपनी का महंगी कीमत पर खाद और कीटनाशक भी खरीदना पड़ेगा, क्योंकि अन्य खाद और कीटनाशक का कोई प्रभाव आधुनिक खेती पर नहीं पड़ता। बीज, खाद और कीटनाशक एक ही कंपनी से खरीदना बल्ली की जरूरत नहीं, मजबूरी थी।"[47] आत्मनिर्भर किसान अब धीरे-धीरे कंपनियों के ऊपर निर्भर हो रहा है और हमारी सरकार भी इन्हीं को मुनाफा कमवाती है।

आधुनिक बीज और खाद के इस्तेमाल से पहले तो किसानों को मुनाफा होता है, लेकिन बाद में वही उनके कर्ज का कारण बन जाती है। औद्योगीकरण के बढ़ते प्रभाव से हमारा समाज किस तरह से प्रभावित हो रहा है। सुनील चतुर्वेदी के उपन्यास 'कालीचाट' में इसका बहुत ही अच्छा वर्णन किया गया है। जगतिया में कंपनी का ऑफिस बन रहा है। कंपनी ने गाँव-गाँव में जमीन खरीदने के लिए दलाल नियुक्त कर रखे हैं। इन दलालों का एक ही काम है कि किसी तरह से किसानों को लोभ देकर उनकी जमीन हथियाना है।

गाँव के युवा जो अब खेती किसानी से धीरे-धीरे कट रहे हैं, उनको कंपनी की चकाचौंध अच्छी लगती है। कंपनी के दलाल गाँव के युवा को बहलाकर उनसे जमीन लेना चाहते हैं- "अम्बाशंकर अपने दोनों हाथ गरदन के पीछे ले जाता है और कैंची की शक्ल में बंधी हथेलियों पर सिर टिकाते हुए बोलता- "मैंने कंपनी को अपनी दस एकड़ जमीन बेचकर बीस लाख रुपये की एफडी कर दी है। मजे में महीने के महीने दस हजार रुपए ब्याज आता है और कंपनी से पच्चीस-तीस हजार रूपया महीना मिल जाता है"..... तुम भी चाहो तो अपनी जमीन कंपनी को बेच के पैसा बैंक में रख दो और कंपनी में नौकरी कर लो। पाँच एकड़ जमीन का सौदा करवा दिया तो घर बैठे लाख रुपये मिल जायेंगे।"[48] कंपनी की चकाचौंध से गाँव के युवा अपने घर में जमीन बेचने के लिए दबाव बनाने लगे जो परिवार के सदस्यों के बीच मनमुटाव का कारण बन गया। किन्तु इन सबसे कंपनी के कार्य पर कोई असर नहीं पड़ा। गाँव के युवाओं का मन कंपनी में काम करने को बेचैन होने लगा। ऐसे में साहिबु का बेटा अपनी माँ रेशमी से अपनी जमीन बेचने को कहता है और अन्त में सुरेश रेशमी से जमीन बेचवाने में सफल हो जाता है। सारी समस्याओं से गुजरता हुआ यदि कोई अपनी फसल तैयार भी कर ले, तो उसके सामने फसल बेचने की समस्या आती है।

किसानों के सामने कुछ समस्याएं तो उनकी परिस्थितियों के कारण होती हैं। कुछ समस्याएं सरकारों की वजह से हैं। किसान दिन-रात मेहनत करता है। वह अपनी फसल के भरोसे ही भविष्य के सपने संजोता है। दिन-रात मेहनत करके तमाम आपदाओं से जूझते हुए वह फसल तैयार कर लेता है तो उसके सामने फसल बेचने की समस्या उत्पन्न हो जाती है। हमारे देश में जब किसी फसल की पैदावार अधिक हो जाती है तो उसका दाम बहुत ही कम हो जाता है। यह भी कैसी बिडंबना है कि पैदावार अच्छी न होने पर भी किसान की स्थिति खराब होती है और फसल अच्छी होने पर भी किसान समस्याओं में घिरता है। समयांतर में प्रकाशित रवींद्र गोयल के लेख के अनुसार- "खराब फसल में किसानों की हालत पतली ही रहती है। यदि सूखे की वजह से फसल खराब हो गयी तो जो लागत लगी उसके चलते घाटा होना निश्चित है। पर यदि फसल अच्छी भी हुई तो इससे उनको फायदा ही होगा यह निश्चित नहीं है।

पिछले दो सूखों के बाद 16-17 का मानसून ठीक था, और सरकारी उद्बोधन के चलते किसानों ने मोटे अनाज, तिलहन और दलहन की अच्छी फसल पैदा की। लेकिन सरकार ने वादे के अनुसार न तो समर्थन मूल्य ही आकर्षक घोषित किए और न ही फसल को खरीदने की व्यवस्था की। इधर दुनिया के पैमाने पर भी खेती की अच्छी पैदावार के चलते उपज के दाम सस्ते हुए और वैश्वीकरण को प्रतिबद्ध सरकार ने सस्ते आयात पर भी कोई रोक नहीं लगायी। नतीजा कृषि उपज के बाजार भाव बुरी तरह धवस्त हुए।"[49]

जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' उपन्यास में किसानों की मुख्य समस्या फसल बेचने की है। वहां के किसानों के खेत में गन्ने की खूब पैदावार होती थी। गाँव-गाँव में राज्य सरकार की तरफ से सिंचाई के साधन उपलब्ध कराये गए थे। वहां पर सुगर मिल की स्थापना की गई थी। मिल मालिक मिल को ज्यादा दिन चलाने में समर्थ नहीं हुए और मिल पूर्ण रूप से बंद हो गई। अब गाँव के किसानों ने गन्ना उगाना बंद कर दिया है- "नगद आमदनी कराने वाली इस फसल के अस्तित्व का लोप होने लगा तो स्फूर्ति और जोश में रहने वाले जकीर मियां का चेहरा निस्तेज हो गया। पहली बार महसूस हुआ कि आप अपनी मर्जी से अपनी मन-पसंद फसल भी उगा नहीं सकते। शफीक मियां तो जैसे एकदम बौरा ही गए। अब उनके पास आमदनी का कोई जरिया नहीं बचा।"[50] इसी तरह से जकीर अपना कर्ज चुकाने के लिए प्याज की खेती करता है। उसके खेतों में प्याज की पैदावार खूब हुई। दुर्भाग्यवश उस मौसम में प्याज की पैदावार सब जगह पर्याप्त मात्रा में हुई। प्याज का भाव एकदम से गिर गया। जकीर ने कुछ दिन तक अपने घर के एक कमरे में पूरे प्याज को फैला दिया, फिर उसमें से खराब हुए प्याज को फेंक देता है। इसी तरह से आधे से ज्यादा प्याज तो सड़ गई। किन्तु बाजार भाव में कोई इजाफा नहीं हुआ- "कोई आढ़तियां प्याज को पूछ नहीं रहा था। जरूरतमंद बनकर जो बेच रहे थे उन्हें गरजू समझकर माटी का मोल दिया जा रहा था। यह एक अजीब विडम्बना है कि जब चीजें किसानों के हाथ में होती हैं तो उसका दाम नगण्य होता है और जब हाथ से निकल जाती है तो दाम आसमान छूने लगता है।"[51]

संजीव के 'फांस' उपन्यास की आशा जिस पर कर्ज का बोझ बढ़ता ही जा रहा है। कभी पानी की अधिकता से फसल खराब हो जाती है तो कभी पानी की कमी से खेत सूख जाते हैं। कर्ज का बोझ दो लाख तक पहुंच गया। इस साल भी डेढ़ क्विंटल कपास और आधा क्विंटल सोयाबीन की उपज हुई है। आशा अपने पति को सोयाबीन और कपास बेचने के लिए मंडी भेजती है। सोयाबीन का मूल्य सरकार ने घोषित नहीं किया हैं। किसान दो-तीन दिन से मंडी में बैठे हैं, किन्तु कब तक बैठे रहें ? ऐसी स्थिति में बाजार के बनिए को किसान अपनी फसल बेंचने पर मजबूर हो जाते हैं। सुरेश एक हफ्ते से मंडी में कपास बेचने के लिए बैठा रहा | भयंकर ठंड के मौसम में वह मंडी में बैठा है। वह वहां बैठे किसानों से कहता है "मैं तो यार घर से ओढ़ने के लिए भी नहीं लाया कुछ। रात कुकड़ाता रहा ठंड से। बारह के बाद ठंड सही नहीं जाती। धोती खोलकर ओढ़ी मगर कहाँ.... ऐसा ही रहा तो मैं तो बनियों को बेचकर चला जाऊंगा। जब देश का हर फैसला देसी-विदेसी बनियों को ही करना है तो सरकार क्यों हमें चूतिया बना रही है।"[52]

बेचारे किसान गर्मी-ठंडी सहकर मंडियों में इंतज़ार कर रहे हैं कुछ किसान अपनी फसल बनियों को बेचकर वापस जाने को मजबूर हो जाते हैं, तो कुछ मंडी भाव में बेचने के लिए बैठे रहते हैं कुछ ऐसे भी होते हैं जो अपनी फसल वापस लेकर चले जाते हैं। आशा का पति सुरेश अपनी फसल को सस्ते मूल्य पर नहीं बेचता बल्कि उसे लेकर वापस चला आता है। रात में हुई बारिश में कपास के साथ आशा के सपने भी बह जाते हैं- "अरे बाप ! पानी बरसने लगा। एक साथ इतने जोर से मुलगियों को नहीं जगाया। खुद ही उठा-उठाकर रखने लगी अंदर। न सामान बचा पायी, न खुद को। फिसलकर गिर पड़ी। चुब्ब-चुब्ब पानी पीता रहा कापूस। चुब्ब-चुब्ब पानी में डूबता रहा मन। अवसाद और हताशा की एक फीकी-फीकी सी तासीर गाढ़ी होती गई..... अधपेट या भूखी रहकर खून पसीने से एक इंच कर जोड़े खेत ! सोचा था, भगवान एक बार भी सुन लेगा तो ठीक-ठाक घरों में पार-घाट लग जायेंगी मुलगियाँ। लेकिन यह शेती मेरे जी का जंजाल हो गई और यह जिन्दगी भी।"[53]

प्रधानमंत्री योजना के तहत किसानों को एक जर्सी गाय देने का नियम आया। किसी भी किसान ने आज तक इस तरह की गाय नहीं देखी थी। शुरूआत में किसानों को यह जानकारी दी गयी कि बीस हजार की गाय किसानों को सिर्फ पाँच हजार रुपये में मिलेगी। किसानों ने किसी तरह से पाँच हजार रूपये का इंतजाम करके गाय खरीद ली। जर्सी गाय को किस तरह से पाला जाता है यह तक किसानों को नहीं पता था। और गाय का दूध पतला होने के कारण वह कहीं बिक नहीं सका। सरकार की तरफ से न तो किसी डेयरी का इंतजाम किया गया और न कोई दूध विक्रेता उस दूध को खरीदता है- "दूध लेकर तुकाराम कहाँ-कहाँ नहीं भटका ! रेट काफी कम। लेकिन दूध का कोई खरीदकर नहीं। या शायद ये नए दुग्ध विक्रेता थे। जिन्हें बाजार के तौर-तरीके नहीं मालूम। कमोबेश यही हाल बाकी मनमोहनी गायों का था।.... गाय न हुई, जी का जंजाल हो गयी। इतने दूध का क्या करें ? कोई लेता-वेता तो है नहीं खपाये कहाँ। फिर खिलाये कैसे, पैसा तो निकलता नहीं।"[54]

दूध की बिक्री न होने से किसानों के समक्ष गाय के चारे का बंदोबस्त करने की कठिनाई होने लगी। जिस गाय से किसान अपनी आमदनी बढ़ाना चाहते थे। आज वही उनकी समस्याओं का कारण बन गयी। जिस सूखी धरती से किसान अपने लिए अन्न नहीं उपजा पा रहा है, वहां से वह गाय के चारे का इंतजाम कैसे कर पाएगा। किसानों की सारी योजनाएं धरी की धरी रह गयी। 'फांस' उपन्यास में संजीव ने किसान योजनाओं के दुष्प्रभाव के बारे में इस प्रकार बताया है- "योजनाकारों ने सोचा था कि दूध का धंधा रोज पैसा लाएगा। सैद्धांतिकी के इस पक्ष पर उन्होंने कभी गौर ही नहीं किया कि विदर्भ की सूखी धरती पर मवेशियों को खिलायेंगे क्या और दूध बेचेंगे कहाँ।"[55] सरकार की तरफ से चलायी गयी इस योजना से किसानों की गरीबी दूर होने के बजाय और बढ़ गई। निर्धन किसानों की गाय सेठों ने खरीद ली क्योंकि किसान गाय पालने में असमर्थ थे। इस प्रकार इस योजना का लाभ भी धनवान लोगों को ही मिला।

सरकार द्वारा किसानों के लिए चलाई गई योजनाएं सिर्फ प्रचार-प्रसार में ही दिखाई देती हैं। व्यावहारिक रूप से उन योजनाओं का लाभ गरीबों को मिलता ही नहीं। विकास की आंधी में जिस तरह

से शहरों का विकास होता जा रहा है, वहीं दूसरी ओर गाँव के लोग अभी भी गरीबी में ही जीवनयापन कर रहे हैं। सरकार द्वारा प्रदान की गई योजनाओं तक पहुंचने में ही किसान की उर्जा नष्ट हो जाती है, उसका लाभ उठाना तो दूर की बात है। मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में सरकारी योजनाओं के बारे में इस प्रकार बताया गया है- "यदुनाथ भाई, यह तो हम सभी देख रहे हैं कि हम किसानों के लिए पैक्स से लेकर विभिन्न क्रय केंद्र तथा खाद-बीज और डीजल के लिए अनुदान के साथ कृषि विभाग के माध्यम से कृषि संयंत्रों एवं अन्य लाभों के लिए हमें नाकों चने चबाने पड़ते हैं। सरकारी अनुदान तक पहुँचते-पहुँचते हमें पता चलता है कि सरकार द्वारा मिलने वाली सब्सिडी दौड़धूप करने और नजराना दिए जाने में ही समाप्त हो गई।"[56] सरकार ने फसल बेचने के लिए मंडी की सुविधा तो किसानों को उपलब्ध करा दी। लेकिन किसान को मंडी तक अनाज लेकर जाने में ही अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। किसी तरह से वहां तक पहुंच गए तो मंडी में अनाज की गुणवत्ता देखी जाती है। जरा-सा सीलन भरा अनाज हो या धूल मिट्टी से युक्त हो ऐसे अनाज की बिक्री मंडी में नहीं हो सकती। इससे किसान को अपना अनाज आढ़तियों के पास बेचना पड़ता है। एम.एम.चंद्रा के उपन्यास 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में फसल बेचने की समस्या को इन शब्दों में व्यक्त किया गया है- "सरकार द्वारा घोषित मूल्य के बाद भी नंगला गाँव के किसान निजी आढ़तियों को अपनी फसल बेचने को मजबूर हो गए। क्योंकि सरकारी मंडी में कभी फसल के रंग, साइज और कभी अगैती-पिछैती का बहाना लेकर नंगला गाँव के किसानों की फसल नहीं बिक सकी और इस वजह से उनकी कमर टूट गयी।"[57]

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास का यूनुस तो सरकारी नीतियों के चलते ही एक दिन मृत्यु को प्राप्त कर लेता है। वह जितना अपने कर्ज को चुकाने के लिए खेती के नए-नए तरीके एवं व्यवसाय अपनाता है। वैसे-वैसे उस पर कर्ज का बोझ बढ़ता चला जाता है। उसने सरकार की नई योजना के तहत मुर्गी पालन करना प्रारंभ किया। मुर्गी पालन विभाग के कर्मचारी युनुस के यहां पहले मुर्गी का चारा न पहुंचाकर मुर्गियों को छोड़ जाते हैं। युनुस के परिवार को मुर्गी पालन की कोई जानकारी नहीं थी, उसने तो

अपना कर्ज चुकाने की लालच में पत्नी के झुमके बेचकर पाँच सौ रूपये में मुर्गी खरीदी। यूनुस के पास न उनको खिलाने के लिए चारा है न रखने का स्थान। उसने उन्हें लकड़ी के पिंजरे में रख दिया और रात भर में सारे चूजे मर गए- "यूनुस सुनाने लगता, "भैया, मैंने पेलां कदी मुर्गी पाली नी थी। म्हारे ज्ञान भी नी थो के उनका बच्चा कैसे रखना है, उनके कई खिलानो है ? अफसर होर ने भी वा बात म्हारे नी बतई और आधी रात के चूजा दरवज्जे छोड़ के चलिया गया।"[58]

इसी तरह से युनुस ने किसी तरह उधार लेकर पंद्रह हजार में विदेशी गाय खरीदी। उसने जिस सपने को साकार करने के लिए गाय खरीदी थी वह गाय के बछड़े के जन्म के साथ ही चकनाचूर हो गए। उसे पशुपालन विभाग के कर्मचारियों ने बताया कि इसके बछड़े खेती के काम के लायक नहीं होते। अब युनुस के सामने दूध बेचने की समस्या आ गई। किंतु जर्सी गाय के दूध के खरीददार ही नहीं मिले। इससे भी बड़ी समस्या कि उस गाय को वह रखे कहाँ क्योंकि ये गर्मी भी सहन नहीं कर सकती और एक दिन जब गाय के मुंह से झाग आने लगा तो वह घबराकर डॉक्टर को ले आया। डॉक्टर ने उसे सुझाव दिया कि- "ये विदेशी गाय है मालवा-निमाड़ की गर्मी सहन नहीं कर सकती। इसके लिए कूलर लगाओ युनुस मियां, नहीं मर जाएगी।"[59] कर्ज से दबे युनुस के लिए कूलर का इंतजाम करना बहुत ही कठिन कार्य था। इसलिए उसने गाय को बेच देना ही मुनासिब समझा किंतु बहुत हाथ पैर जोड़ने के बाद पशु-पालन विभाग वाले गाय को चार हजार में खरीदने को राजी हुए। पंद्रह हजार की गाय का चार हजार में सौदा कर युनुस घर लौट आया। यह है हमारे सरकार की नीति जो किसानों की समस्याओं को हल करने की बजाय बढ़ा देती है। युनुस गरीबी से बाहर निकलने की जितनी भी कोशिश करता उतना ही गरीब बनता जा रहा है। वह जिस नई कृषि नीति का अनुसरण करता वह उसके लिए घाटे का सौदा ही साबित होता।

टी.वी. चैनलों पर किसानों के लिए अनेक विज्ञापन दिखाए जाते हैं। उन्हीं में से एक विज्ञापन सफेद मुसली की खेती का भी था। विज्ञापन में तो हर नीति के फायदे ही बताए जाते हैं, किंतु वे किसानों के लिए घाटे की नीति बन जाती है। दीना नायक सफेद मुसली की खेती करता है किंतु उसे कोई फायदा

नहीं हुआ। उसके सामने वही मंडी की समस्या आ गई, क्योंकि मंडी में मुसली को बेचा ही नहीं जा सकता- "दीना ने ढेर की तरफ इशारा करते हुए कहा," या है सफेद मुसली की खेती। अरे मैं इन साहब लोग का केहना मैं आके पछता रयो हूँ। सब केहता था के दो हजार रुपए किलो से कम नी बिकेगी। व्यापारी तुम्हारे घर के चक्कर लगाएंगे। कोई नी आयो मम्मा। दो हजार तो छोड़ो दो सौ रूपए किलो में भी कोई खरीदने के तैयार नी है।"[60]

इसी तरह से किसानों के लिए सरकार ने लोन की व्यवस्था तो कर रखी है, किंतु किसानों को बैंक से लोन लेने में इतनी समस्याओं का सामना करना पड़ता है कि वे मजबूर होकर बाहर से ही कर्ज लेना ज्यादा ठीक समझते है। लोन की व्यवस्था के बारे में संजीव ने 'फांस' उपन्यास में कहा है- "हाँ, कहा था मगर उनको..... जिनकी फसल नष्ट हुई है। सरपंच ग्रामसेवक वगैरह से सर्टिफिकेट और खसरा खतौनी तथा दूसरे कागजात लेकर जो उस दिन नहीं आये थे। इसलिए जो लेकर आये हैं, वो उधर जाकर खड़े हो जाएँ। जो नहीं ले आये, घर चले जाएँ।"[61] सरकार द्वारा चलाई गई योजनाओं का पर्याप्त लाभ किसानों को न मिलने का सबसे बड़ा कारण है कि उन्हें उन योजनाओं की पर्याप्त जानकारी देने के लिए सरकार की तरफ से प्रचार-प्रसार की व्यवस्था नहीं की जाती है।

3.4 सरकारी तंत्र और किसान

हमारे समाज में किसानों की स्थिति में गिरावट का बड़ा कारण हमारा सरकारी तंत्र है। हमारे देश में लगभग 85% किसान लघु एवं सीमांत किसान की श्रेणी में आते हैं। इनके पास पहले से ही जमीन कम होती है। जिसके कारण इन्हें अपना जीवन-यापन करने के लिए बहुत सी कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। इनके पास खेती करने के लिए पर्याप्त साधन भी नहीं होते हैं। हर काम के लिए इन्हें दूसरों के पास जाना पड़ता है। पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' उपन्यास का रामप्रसाद एक छोटा किसान है। जिसे विरासत में अपने पिता से बैंक का कर्ज और सोसायटी का सूदखोर का कर्ज मिला है। छोटे किसान के सामने जैसे

ही कोई बड़ा खर्च आता है, वह कर्ज के बोझ से दबना शुरू हो जाता है। इसी क्रम में वह यहां तक आ पहुँचता है कि उसे अपनी जमीन बेचनी पड़ती है।

पहले तो वह कर्ज यह सोचकर लेता है कि फसल होने पर चुका देगा, किंतु फसल आने पर या तो उसके सामने कोई और खर्च आ जाता है, या प्राकृतिक आपदा से उसकी फसल नष्ट हो जाती है- "भविष्य में फसल से चुका देने की उम्मीद पर कर्ज ले लिया जाता। बाद में पता चलता कि फसल आने से पहले ही कोई और दूसरा बड़ा खर्च सामने आ गया और कर्ज के स्थान पर पूंजी प्रवाह उस ओर करना पड़ा। कर्ज तो कर्ज था, कब तक देखता, अंततः वह जमीनों को हड़प कर अपना पेट भर लेता।"[62] रामप्रसाद को बिजली का बिल अदा करना है। बिजली बिल वाले ने चेतावनी दी थी कि अगर बिल जमा नहीं किया तो बिजली बिल भरने के लिए एक भी पैसा नहीं था। जब किसान के पास कोई चारा नहीं बचता तो उसकी पत्नी के जेवर काम आते हैं। कमला के पास उसके ससुर की दी हुई एक मात्र जेवर तोड़ी बची हुई है। कमला जानती है कि बिल चुकाने के लिए रामप्रसाद के पास पैसे नहीं है। वह यह भी जानती है कि रामप्रसाद तोड़ी बेचने के लिए भी तैयार नहीं होगा।

वह रामप्रसाद को समझाने की कोशिश करती हुई कहती है कि अभी तोड़ी बेचकर बिल चुका लो फसल आने पर मेरे लिए नई तोड़ी ला देना। किसान की हर उम्मीद उसकी फसल पर ही टिकी होती है। लेकिन एक बार किसान के घर से जेवर सुनार के पास चला जाए तो वह दोबारा वापस नहीं आता है- "एक बारी सुनार के पास चीज गई, तो लौटी आज तक ? फसल पे उठा लेंगा, फसल पे उठा लेंगा, के-के सारी रकम-पात रखा गई और डूब गई। आज तक एक कील भी वापस नी आई। आखिरी तोड़ी बची है अब।"[63] किसान के जीवन में कभी भी समस्याओं का अंत नहीं होता है। एक समस्या जाती है तो दूसरी उत्पन्न हो जाती है।

हमारे देश में किसानों की फसल बेचने के लिए मंडी की व्यवस्था की गई है, किंतु वहां भी दलालों की लूट मची रहती है। किसी तरह से किसान मंडी तक पहुंचता है तो वहां पर भी उसे मजबूर होकर ही

अपना अनाज बेचना पड़ता है- "मंडी में उपज को बेचना भी बड़ी समस्या है। नीलामी की प्रक्रिया से बिक्री होती है।..... व्यापारियों की आपस में सांठ-गांठ रहती है कि किस ट्राली या बैलगाड़ी को कितने में खुटाना है, कितने से ऊपर नहीं जाना है नीलामी में। बहाने हजारों है कम भाव के, दागी हो गया है दाना, धब्बा साफ़ दिख रहा है,..... असल में माल की कीमत अगर सोलह सौ है, तो चौदह सौ बताए जाएँगे। किसान बेंचना चाहे तो ठीक, नहीं तो निकल भाई अपने रास्ते।"[64]

किसान सुबह होने से पहले अंधेरे में ही अपनी उपज लेकर घर से निकल पड़ते हैं। उसे पता है कि कम दाम ही सही, लेकिन यदि वह अनाज लेकर वापस जाएगा और दोबारा उसे बेचने के लिए लेकर आएगा तो उसे फिर से ट्रैक्टर का किराया देना पड़ेगा। और न बेचे तो सबसे बड़ी समस्या है वह घर जाकर कर्जदारों को क्या देगा इसलिए न चाहते हुए भी वह अपनी फसल को औने पौने दाम में बेंचने को मजबूर हैं। किसान के पास फसल संग्रह करने की कोई व्यवस्था न होने के कारण किसान और भी मजबूर हो जाते हैं और वे सस्ते मूल्य पर ही अपनी फसल बेच देते हैं। राम किशोर मेहता ने 'भारत में किसानों की दुर्दशा' पुस्तक में लिखा है- "पूंजीवाद पर आधारित बाजार व्यवस्था, किसानों के खिलाफ और बाजार के पक्ष में षड़यंत्र रचती सरकारें, किसानों की सबसे बड़ी दुश्मन हैं। यह एक विडंबना है कि जब किसान की फसलें अच्छी होती हैं तब किसान को आत्महत्याएं करनी पड़ती हैं। क्योंकि बाजार मांग और पूर्ति के तथाकथित सिद्धांत पर काम करता है। किसान के पास कभी इतना पैसा नहीं होता कि वह अपने उत्पादन का संग्रह कर सके और उस समय बेचे जब बाजार में उसकी उपलब्धता कम हो। देश की फसलें अधिकतर एक ही समय पर पक कर आती हैं तब बाजार उस माल से भरे होते हैं और किसान की फसल औने पौने भाव बिकती हैं।"[65]

किसान तो हर समय समस्याओं से ही जूझता रहता है। उनके सामने सबसे बड़ी समस्या सरकारी योजनाओं से जूझने की है। सरकार नीतियाँ बनाती हैं। किसान उसे अपनाना चाहता है किंतु उसे निराशा ही हाथ लगती है। सरकार ने किसानों को कृषि करने के लिए कर्ज देने की व्यवस्था बना रखी है। इसमें 'किसान

क्रेडिट कार्ड' एक महत्वपूर्ण योजना है। सरकार ने बैंकों एवं अन्य सरकारी संस्थाओं से भी किसानों को खेती करने के लिए ऋण देने की व्यवस्था बना रखी है। लेकिन हमारे देश में ऋण लेने के लिए भी ऐसी शर्तें बना दी जाती हैं जो किसानों को इस हालत में पहुंचा देती है कि उसे कर्ज लेकर खेती करने की जरूरत पड़ती है। दूसरी बात उसे बैंक से समय पर कर्ज भी नहीं मिल पाता है और उन्हें बाहर महाजन और साहूकार से कर्ज लेना पड़ता है। जो उन पर कर्ज वसूली के लिए तरह-तरह के अत्याचार करते हैं। अर्जुन प्रसाद सिंह ने इस संदर्भ में कहा है- "किसानों का अच्छा खासा हिस्सा ऐसा है जिनको बैंकों और सहकारी संस्थानों से कर्ज नहीं दिया जाता है। उन्हें अपनी खेती की बढ़ी हुई लागत को जुटाने के लिए साहूकारों और कमीशन एजेंटों से काफी ऊंची दरों (40 से 120 फीसद सालाना) पर कर्ज लेना पड़ता है। समय पर मूल और सूद नहीं चुकाने पर ये साहूकार और कमीशन एजेंट किसानों पर तरह-तरह के जुल्म ढाते हैं और उनके खेतों और अन्य संपत्तियों पर कब्ज़ा कर लेते हैं।"[66]

सरकार द्वारा किसानों को खेती करने के लिए 'किसान क्रेडिट कार्ड' योजना चलाई गई। इसके तहत किसानों को साल भर में दो बार ऋण दिया जाता है। रामप्रसाद तो आज तक महाजनों से ही कर्ज लेता आया है। फिर भी बैंक से उसके नाम नोटिस आया है कि उसने 'किसान क्रेडिट कार्ड योजना' के तहत जो ऋण लिया है उसे अदा कर दे नहीं तो उसकी जमीन कुर्की कर दी जाएगी। रामप्रसाद आवाक रह गया कि उसने कर्ज लिया कब। वह अपने जमीन के कागजात लेकर तहसील जाता है, उसे वहां कोई नहीं मिलता है। बैंक में पहुँच कर पता चलता है कि उसी के नाम पर किसी ने कर्ज लिया है, किंतु चुकाना तो रामप्रसाद को ही पड़ेगा। किसान क्रेडिट कार्ड योजना की सच्चाई को पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में इस प्रकार व्यक्त किया है- "किसान क्रेडिट कार्ड सबसे आसान तरीका है बैंक से महीने के लिए नामिनल ब्याज पर पैसा लेने का। बिचौलिए और हमारे ही बैंक के लोग मिलकर सारा खेल करते हैं। छ: महीने बाद पूरा पैसा जमा कर देते हैं और फिर उसी खाते में एक बार फिर से लोन ले लेते हैं। पैसा

जमा हो जाता है, तो किसी को कोई परेशानी नहीं होती। किसान तक को पता नहीं चलता कि उसके नाम से कोई किसान क्रेडिट कार्ड बना है।"[67]

दलाल का सीधा संपर्क बैंक मैनेजर से होता है। वे फर्जी किसानों को और फर्जी कागज़ ले आते थे। बैंक के मैनेजर से मिलकर योजना के तहत् मिलने वाली राशि को लेकर बाज़ार में ब्याज पर चलाते हैं। इस बार ब्याज के पैसे डूब गए। बैंक उन किसानों के नाम नोटिस जारी कर देता है जिसके नाम पर पैसे निकाले गए। सरकारी तंत्र के भ्रष्टाचार का खामियाजा रामप्रसाद जैसे किसानों को भुगतना पड़ता है। किस तरह से किसान सरकारी तंत्र के जाल में फंसकर अपना जीवन गवां देता है। रमेश उपाध्याय ने 'किसान आत्महत्याओं पर दो उपन्यास' में लिखा है- "किसान जीवन का चित्रण करते समय पंकज सुबीर की भाषा करुणामयी हो जाती है और सहानुभूति उत्पन्न करती है, जबकि सरकारी तंत्र का वर्णन करते समय व्यंग्यमयी होकर व्यवस्था के प्रति नफरत और बगावत की भावना जगाती है।"[68]

किसान किस तरह से सरकारी योजनाओं में फंसते जा रहे हैं, इसका पता हमें सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में युनुस की हालत देखकर पता चलता है। युनुस दिन-रात अपने परिवार के साथ मिलकर खेत में कुंआ खोदता है। एक दिन उसे पता चलता है कि पंचायत से 'कूप निर्माण योजना' के तहत उसके नाम एक लाख का लोन है। जिस कुंए के नाम का उसके नाम पर लोन है असल में वह कुंआ नहीं एक गहरा शहरा गड्ढा है। जो उसने और उसके परिवार ने मिलकर खोदा है। वह सरपंच के पास शिकायत लेकर जाता है। सरपंच की बातों से युनुस हक्का बक्का रह गया। किस तरह से कलेक्टर से लेकर मंत्री तक सिर्फ किसानों को लूटने में ही लगे हैं- "हाँ, मैंने तमारा सबका अंगूठा लगा के पैसा हेडिया। तमारे जहाँ जानो है जाओ। कलेक्टर पास जाओ, मुखमंतरी पास जाओ और हो सके तो प्रधानमंत्री पास भी चलिया जाओ। पर एक बात सुन लो। मैं एकलो पैसा थोड़ी खाऊँ हूँ। बैंक से लगाके तो जनपद का बाबू, इंजीनियर, सीओ, कलेक्टर सबके पैसा दूँ हूँ। कौन से शिकायत करोगा। पैसा कौन नी खाय।"[69]

सरकार ने फसल नष्ट होने पर किसानों के लिए फसल बीमा योजना की नीति लागू की है। इस योजना के अंतर्गत आंधी, तूफ़ान, बाढ़ या ओले से फसल के नष्ट होने पर उनको राहत राशि दिए जाने का प्रावधान है।'फसल बीमा योजना' का नाम बदलकर प्रधानमंत्री मोदी ने 'प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना' कर दिया है। इस योजना के अंतर्गत कुछ ही फसलों को शामिल किया गया जिनके नष्ट होने पर किसानों को राहत राशि प्रदान की जाएगी। कुछ कर्जदार किसानों के न चाहते हुए भी उनके खाते से बीमा की किश्त कटती रही किंतु फसल के नष्ट होने पर उन्हें कोई मुवावजा नहीं दिया गया। अमरपाल ने 'किसान' पत्रिका के अपने लेख में लिखा है कि- "सरकार ने इस योजना के तहत किसानों की इजाजत के बिना ही हर उस किसान की फसल का बीमा कर दिया जिसने बैंकों से कर्ज लिया है।..... भले ही फसल बीमे के दायरे में आती हो या नहीं।.... बिना इजाजत बीमा करने के बावजूद फसल के पूरी तरह बर्बाद होने पर और समय रहते बीमा का दावा करने पर भी फसल बीमा का पैसा किसानों को नहीं मिल रहा है। बीमे के पैसे लेने के लिए किसानों को दर-दर की ठोकरें खानी पड़ रही हैं।"[70] किसानों को इस नीति का लाभ नहीं मिल पाता। किसान यदि फसल बीमा करवाना भी चाहते हैं तो उन्हें ऑफिस से ऑफिस चक्कर लगाना पड़ता है और उनके पास जो रकम रहती है, वह सब ऑफिस में बैठे पदाधिकारियों को देने में ही समाप्त हो जाती है। इसलिए चाहकर भी किसान इन योजनाओं का लाभ नहीं प्राप्त कर पाता है। मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में- "बलेसर फिछले दो-तीन बर्षों से फसल बीमा की चर्चा सुनते आ रहे थे। लेकिन उस योजना से अपने गाँव के किसी किसान को उन्होंने लाभान्वित होते नहीं पाया था। उनके गाँव के कपिलदेव और शिवधन ने सरकारी कर्मचारियों के कहने पर फसल बीमा करवायी थी। बीमा की किश्तें भी उन्होंने जमा की थीं। लेकिन बाढ़ से फसलों की बर्बादी पर बीमा राशि पाने के लिए जब उन्होंने प्रयास किया तो इस ऑफिस से उस ऑफिस तक दौड़ने और बाबुओं को नजराना देने में ही रकम समाप्त हो गयी।"[71]

राजू शर्मा के उपन्यास 'हलफनामे' का मकईराम तो पिता के आत्महत्या करने के पश्चात सिर्फ हलफनामे ही दर्ज करता रहा। उसके लाख कोशिशों के बावजूद उसे मुवावजा मिलने का कोई आसार नहीं नजर आ रहा है- "अब इन्हें दसवां और ग्यारहवां हलफनामा चाहिए ..... एक, दो, तीन.... आठ, नौ से इनका पेट नहीं भरा, इन्हें और खुराक चाहिए, राक्षस की तरह रोज एक आदमी का मांस.... इतनी शपथ और सत्यनिष्ठा, इतना सर्वोत्तम ज्ञान ये एक के बाद एक डकार जाते हैं, इनकी भूख नहीं मिटती, इन्हें अपच नहीं होता, न पाप लगता है। शपथ की आड़ में इन्हें धन चाहिए.... हलफनामे के लिफाफे में इनका पैगाम होता है.. दक्षिणा दो, नहीं तो गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी।"[72] मकई के शब्दों से साफ़ झलकता है कि वह कितना बेबस है।

हमारे देश के किसानों की यही वास्तविक स्थिति है। कोई भी मंत्री कोई भी नेता जब चुनाव आता है तो किसानों के लिए अच्छे-अच्छे वादे करता है। चुनाव बीतने के पश्चात उन्हें किसानों का ख्याल नहीं आता है। मकई दफ्तर के चक्कर काटता रहा किंतु उसे मुआवजा मिलने की कोई उम्मीद नहीं नजर आई, किंतु चुनाव आते है मंत्री ने उसे रैली में ससम्मान बुलाकर मुवावजे का चेक सौंप दिया। जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' उपन्यास में सल्तनत और भैरव मिलकर गाँव में जागरूकता अभियान चला रहे हैं। किंतु वहां के मंत्री टेकमल को अपने वोट की चिंता है। इस कारण वो सल्तनत पर हमले भी करवाता है। जब उसे लगता है कि उसके प्रयास असफल हो रहे हैं तो वह उनकी पूरी फसल नष्ट करवा देता है।

शिवमूर्ति के 'आखिरी छलांग' उपन्यास का पहलवान जिसके सामने बेटी की शादी की समस्या खड़ी है। वह सोचते हैं कि आज जिस परिवार में बाहर की आमदनी नहीं है उसका गुजारा होना मुश्किल है। खेती-किसानी से परिवार का खर्च चलना मुश्किल है। ऐसे में बेटी की पढ़ाई, बेटी की शादी के लिए वे पैसे कहाँ से लायें। खेती में खर्च हर साल बढ़ता ही जा रहा है, किंतु आमदनी उतनी ही है। ऊपर से बेची गई फसल के पैसे भी समय से नहीं मिलते। किसान क्या करे- "सोचा था इस साल वरुणा सरसों

बोयेंगे। कहते हैं बड़ी अच्छी पैदावार होती है, लेकिन मौके से हाथ में पैसा न आ पाने के चलते नहीं बो सके। आलू का बीज खरीदने के लिए पैसा जुटाना पहाड़ हो गया। दस रुपये किलो का बीज खरीद कर बोये हैं। डर है कि तैयार होने तक आलू का रेट गिर कर दो रुपये किलो से भी नीचे न चला जाए। आसाढ़ बीतते-बीतते जैसे ही किसान के घर से निकल कर बाजार में पहुंची फिर दस रुपये किलो बिकने लगती है। सारे हालात तो मर जाने के है। जिन्दा कैसे रहा जाए।"[73]

एस.आर. हरनोट के 'हिडिम्ब' उपन्यास में आज के समाज में किसानों पर राजनेताओं के बढ़ते हुए अत्याचार को दिखाया गया है। मंत्री को शावणू की जमीन पसंद आ जाती है। वह चाहता है कि किसी तरह से शावणू का बुलावा आ जाता है। मंत्री शावणू को जमीन की कीमत बताने के लिए कहता है। एक किसान के लिए उसकी भूमि ही उसकी जीविका का साधन है तो भला वह उसे कैसे बेच सकता है। वह मंत्री से कहता है- "माई बाप ! यह जमीन तो मेरे पुरुखों की है। आज हमारी दोख-सांझ है। रोजी-रोटी है सरकार। मेरी माँ है। मैं अपनी माए को कैसे बेच सकता हूँ। मेरे को नी बेचणी है।"[74] शावणू के जमीन देने से मना करने पर मंत्री का शावणू पर अत्याचार शुरू हो जाता है। उसके परिवार के सामने ही वह उसके अनाज को रौंद डालता है। अभी तक जो शावणू सामान्य रूप से जीवनयापन कर रहा था, उसका जीना मंत्री ने दुश्वार कर दिया। उसे एक ही चिंता खाए जा रही थी कि अब वह किस तरह से गुजर-बसर करेगा। खेती के अलावा उसके पास जीविका का कोई साधन नहीं था। उसके बेटे से स्कूल के शिक्षक जबरदस्ती भांग तुड़वाने का काम करते थे। मंत्री की लाख कोशिशों के बावजूद जब शावणू अपनी जमीन देने को राजी नहीं होता है तो मंत्री ने उसके पुत्र की हत्या करवा दी। कुछ समय बाद उसकी पत्नी की भी मृत्यु हो जाती है। मंत्री के अत्याचार से एक ऐसा समय आया जब शावणू का पूरा परिवार ही समाप्त हो गया। जिस जमीन को बचाने के लिए शावणू संघर्ष करता रहा। उसी जमीन को भोगने के लिए उसके परिवार में कोई नहीं बचा। अंत में शावणू अपनी जमीन को अस्पताल बनाने के लिए दान कर देता है।

3.5 प्राकृतिक आपदा और किसान

किसानों के सामने प्राकृतिक आपदा एक ऐसी समस्या है, जिससे किसान कभी बच नहीं पाता। बेमौसम बरसात और ओलावृष्टि से किसान संकट में आ जाता है। उसे कभी तो कभी बाढ़, कभी आंधी आदि समस्याओं से गुजरना पड़ता है। कभी फसल की बुआई के समय उसके सामने पानी की समस्या आती है तो कभी फसल पकने पर अत्यधिक बारिश से उसकी फसलें खराब हो जाती हैं। प्राकृतिक आपदा ऐसी समस्या है जिससे किसान क्या समाज का कोई भी वर्ग नहीं बच सकता है। अर्जुन प्रसाद सिंह ने 'कृषि संकट बनाम किसान मुक्ति' लेख में लिखा है- "भारतीय खेती आज भी काफी हद तक मानसून पर निर्भर है (2016-17 के आंकड़े के अनुसार 55 फीसद) और हर साल बाढ़, सूखे और कीड़ाखोरी जैसी प्राकृतिक विपदाओं से भारी पैमाने पर किसानों की फसलों और अन्य संपत्तियों का नुकसान होता है।"[75]

शिवमूर्ति के 'आखिरी छलांग' उपन्यास में किसानों के सामने सूखे की स्थिति उत्पन्न हो गई है। धान पकने पर है और फसल को पानी की आवश्यकता है। बारिश का कहीं कोई आसार नहीं नजर आ रहा है। किसानों की फसल सूख रही है- "लगता था, इस साल कहीं धान रहने की जगह नहीं बचेगी, लेकिन उत्तरा नक्षत्र ने ऐसा धोखा दे दिया। झकझोर पुरखा बहने लगी। नीले आसमान में सफेद बगुलों की तरह बादलों के टुकड़े दिखते और गायब हो जाते। भीषण सूखे के सारे लक्षण प्रकट हो गए। राजधानी तक हल्ला मच गया। एक चौथाई फसल सूख गयी तो करीब दस दिन बाद नहर में पानी आया।"[76]

भीमसेन त्यागी के 'जमीन' उपन्यास में रतनू और चम्पा के लाख कोशिशों के बावजूद उनके दुखों का अंत ही नहीं होता। फसल को पानी की सख्त जरूरत है किंतु बारिश का कहीं नामोनिशान तक नहीं है। चम्पा के खेतों में धान और मक्के की फसल पानी के अभाव में सूख रहे हैं। चम्पा भगवान को कोसती है कि उसके तीन खेतों में से किसी में भी पानी नहीं लगता। बारिश के पानी से ही खेती की जा सकती है

किंतु वर्षा की कोई उम्मीद नहीं नजर आ रही है। पानी की कमी से किसानों के खेत इस कदर सूख जाते हैं कि उन्हें अगले फसल की बुवाई के आसार भी नहीं नजर आ रहे हैं।

किसान किसी तरह से खुद का पेट भर भी लें तो वह पशुओं को क्या खिलाएंगे। चम्पा को अपनी फसल से बहुत उम्मीद थी। उसने सोचा था- "फसल लग गयी तो मक्का, उड़द और धान से घर भर जाएगा। उससे घर का खर्च चला लेंगे और बणिये का ब्याज-बट्टा भी चला जाएगा। लेकिन सूखे ने प्राण सोख लिए ! खेतों में इतना भी पैदा नहीं हुआ कि महीने भर घर में बैठकर खा सकें ! क्या करें, कुदरत की मार।"[77] फसल चौपट होने से रतनू के घर की स्थिति और भी खराब हो गयी। वे पैसे-पैसे को मोहताज होने लगे।

राजू शर्मा के 'हलफनामे' उपन्यास में तो सूखे की समस्या ने किसानों को इस तरह से तोड़ दिया है कि वहां के किसान आत्महत्या करने लगे। गाँव को सरकार ने डार्क एरिया घोषित कर दिया। किसान पानी की कमी को दूर करने के लिए बोरिंग तो करवाते हैं किंतु पानी नहीं आता। किसान कर्ज में डूबने लगे-"जमीन के नीचे पानी का स्तर लगातार गिरता जा रहा था। लाला की अगुवाई में ताबड़तोड़ बोरिंग डाले गए। एक-चौथाई में पानी मिला, उसे भी खींचने में जबरदस्त मशीन चलानी पड़ती थी। बाकी में कतरा नहीं था पानी का।"[78]

राकेश कुमार के 'कंदील' उपन्यास का रणसिंह अपने खेतों में मक्के की बुवाई कर रहा है। उसकी बस एक ही इच्छा है कि किसी तरह से बारिश हो जाए और वह धान की रोपाई कर दे। इन्तजार करने के बाद बारिश होती है। बारिश भी इस तरह कि इलाके के सब किसान तबाह हो गए। उनके खेतों की मिट्टी तक पानी में बह गई। बारिश बंद होने पर वे पुनः अपने खेतों में धान की रोपाई करने लगे। बारिश एक बार बंद हुई तो पुनः किसानों के खेत सूखने लगे-"उस प्रलय के बाद अगले इन छः महीनों में धरती पर ऐसा सूखा पड़ा कि धान की आने वाले फसल की पूरी आस ही ख़त्म हो गई। उनके मुहों को चिढ़ाने के लिए खेतों में चौड़ी दरारें बन आईं।"[79] पहले बाढ़ और फिर बाद में सूखा चारों तरफ अन्न का अकाल

पड़ गया। लोग भूख से बेहाल हैं, और कर्ज में डूब गए। बैंक वाले किसानों के घर-घर जाकर नोटिस दे रहे हैं।

जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँव वालों' उपन्यास में जकीर कर्ज लेकर खेत में बोरिंग करवाता है। गन्ने और धान की फसल तबाह होने के बाद वह वह गेहूं की खेती खूब मन लगाकर करता है। उसे पूरी उम्मीद थी कि गन्ने और धान की कसर गेहूं से पूरी हो जायेगी। गेहूं कटकर खलिहान में रखे जा रहे थे। फाल्गुन के महीने में इतनी जोरदार तरह से बारिश हुई कि गेहूं की चौथाई फसल में अंकुर निकल गए। यह प्रकृति की मार ही है जो किसान की थाली में परोसा हुआ अन्न छीन लेती है- "ये आंधी तूफ़ान और बारिश कहां से और क्यों आते हैं ?..... और इन्हें आना ही है तो जब इनकी जरूरत होती है तो क्यों नहीं आते।"[80]

संजीव के 'फांस' उपन्यास में कपास की फसल तैयार होने के समय ऐसी बारिश होती है कि किसानों की फसल नष्ट हो गई। किसी तरह से फिर से ब्याज पर और बैंक से लोन लेकर किसानों ने खेतों की बुवाई की। पुनः बारिश होने से किसानों की दूसरी बार की मेहनत भी खराब हो गई। अब तीसरी बार उन्हें पुनःबीज बोने का इंतजाम करना पड़ा। बीज बोते समय छोटी बीजों को धमका रही है- "दो-दो बार धोखा हो चुका है। इस बार बहना नहीं, बिलाना नहीं, सड़ना नहीं, सुखना नहीं, दगा मत देना। बरोबर जम सिल। समझाता ? बहोत मारूंगी, हाँ ! ।"[81]

हमारे देश का किसान तो प्रकृति पर ही निर्भर है। कभी बाढ़, कभी सूखा, कभी ओला तो कभी फसल कटने पर बारिश से फसलों का नुकसान, किसान हमेशा किसी न किसी समस्या में घिरा रहता है। मानो समस्याएं ही किसान की नियति है। अपने सामने अपनी फसलों को नष्ट होता देख किसान की मनःस्थिति कैसे हो जाती है, इसका अंदाजा सूर्यनाथ सिंह के 'चलती चाक' उपन्यास में मंगतराम के इस कथन से लगाया जा सकता है- "आप लोग तो अन्तर्जामी पुरुष हैं महाराज, ज्यादा अच्छी तरह जानते होंगे। हम क्या कहें, लेकिन सालभर मेहनत करके, खाद-पानी दे के, सांड भंईसा-लिलगाय, चिड़िया-

चुडुंग से बचा के फसल तैयार करते हैं, काटने की बारी आती है तो इस तरह उसको चौपट होते नहीं देखा जाता। देव की मरजी मान के करेजा पर पत्थर रख लेते हैं। मंगतराम का गला भर आया था।"[82] वैश्वीकरण की आंधी में जिस तरह शहरों की तरफ लोगों का झुकाव अधिक बढ़ रहा है। गाँव उसी रफ्तार से और भी पीछे जा रहे हैं। गाँव में बसे दीन-हीन किसान और भी समस्याओं में घिरते जा रहे हैं। खेती-किसानी से जुड़े लोग के पास पर्याप्त सुविधाएं न होने से वे बेबसी और जहालत का जीवन जी रहे हैं। भारत में कृषि से जुड़े किसानों में लघु एवं सीमांत किसान संख्या में सबसे अधिक हैं। ये लोग खेती के लिए पूरी तरह प्रकृति पर निर्भर होते हैं। मानसून ने साथ दिया तो ठीक-ठाक पैदावार हो जाती है। नहीं तो सब कुछ बर्बाद। इसलिए इन पर कर्ज का बोझ बढ़ता जा रहा है। 'बदहाल किसान और लोकतंत्र की नींद' लेख में विजय गुप्त ने लिखा है- "प्राकृतिक कोप तो किसानों को मारते ही हैं, रही-सही कसर ये कसाई महाजन पूरी कर देते हैं। धनी-मानी और तकनीकी सुविधाओं से लैस बड़े किसानों को छोड़ दें तो बाकी किसान पूर्ण रूप से मानसून पर निर्भर होते हैं। पानी बरसा तो ठीक नहीं तो सत्यानाश। बिजली, पानी, कीटनाशक, बीज, खाद की कोई समुचित सुविधा गांवों में उपलब्ध नहीं है।"[83] पंकज सुबीर ने 'अकाल में उत्सव' उपन्यास में प्राकृतिक आपदा के कारण ही रामप्रसाद आत्महत्या कर लेता है। रामप्रसाद एक छोटा किसान है, जो पहले ही कर्ज में डूबा है। बैंक की धोखाधड़ी से उसे बैंक के फर्जी लोन के केस में भी फंसा दिया जाता है। गेहूं की फसल पक रही है किंतु मौसम के मिजाज को देखकर रामप्रसाद और कमला अंदर ही अंदर भयभीत है। जैसे-जैसे बादल कड़क रहे है, बिजली चमक रही है वैसे-वैसे कमला मन ही मन भगवान से प्रार्थना कर रही है। किंतु उनकी कोई सुनने वाला नहीं है। उस रात जोर की बारिश हुई, आंधी आई और ओलों से पूरी धरती सफेद हो गई। बारिश और ओलों से किसान की फसलें खराब हो गई।

रामप्रसाद उल्लास में था कि गेहूं की फसल कटने के बाद जो आमदनी होगी वह कर्ज चुका देगा, किंतु उसकी फसल के तीनों बड़े दुश्मन अपने विकराल रूप में सूखा पानी के खेतों में तांडव कर रहे हैं। "ओलों की मार खाकर वह बालियाँ टूट-टूटकर जमीन पर गिर रही है, जो कुछ घंटों पहले तक अपने गर्भ

में कुछ होने का अहसास लिए, हवाओं के स्पर्श पर झूल रही थीं, झूम रही थीं। ओले गेहूं के पौधे पर जहां जाकर टकराते है, वहीं से उसे तोड़ कर गिरा देते हैं। जो पौधे हवा के कारण जमीन पर पहले ही गिर चुके थे, अब ओलों में दबकर उनकी कब्र बन रही है। जिंदा कब्र। या शायद यह सफेद है, जो पूरे खेत पर बिछा दिया गया है। कफ़न फसल का और कब्र किसान की।"[84]

बारिश से किसानों की फसल नष्ट हो गई। गाँव के सारे किसान कलेक्ट्रेट ऑफिस में एकत्रित हो जाते हैं। किंतु कलेक्ट्रेट को किसानों से क्या लेना-देना। किसान अपनी फसल नष्ट होने का शोक मना रहे हैं, दूसरी तरफ जिले में उत्सव का आयोजन चल रहा है। किसानों को कलेक्ट्रेट ऑफिस से हटाने के लिए उनको आश्वासन दिया गया कि उनको मुआवजा मिलेगा, किंतु उनके कहने का कोई मतलब नहीं है। जिस फसल को किसानों से अपने खून पसीने से सींचा था। उसी गेहूं की बालियों को लेकर वे अपनी बेबसी प्रकट करने आये थे। हमें सरकारी तंत्र की क्रूरता स्पष्ट रूप से तो तब देखने को मिलती है जब किसानों की उसी नष्ट फसल को मंच पर सजाने के लिए दे दिया जाता है। रामप्रसाद जिसने बैंक से कोई लोन नहीं लिया था, उसे धोखे से बैंक के लोन में फंसा दिया जाता है। प्राकृतिक आपदा के तहत मिलने वाली राशि में सब किसानों के नाम तो दर्ज किये गए, किंतु रामप्रसाद का नहीं। जब उसके पास कोई रास्ता नहीं बचता है तो वह आत्महत्या कर लेता है, किंतु उसकी आत्महत्या का ज़िम्मेदार भी उसकी मानसिक स्थिति का खराब होना बताया जाता है। आज बदलते परिवेश एवं मौसम की मार से किसानों की छमताएं दिन-प्रतिदिन घट रही है। अधिकांश युवा रोजगार की तलाश में शहर की तरफ पलायन कर रहे हैं, क्योंकि उन्हें खेती करना लाभ का सौदा नहीं लगता है। किसी भी देश और समाज की ऊर्जा उसके युवाओं में समाहित होती है। जिस समाज में युवाओं की शक्ति का बेहतर इस्तेमाल होता है, वह उन्नति करता है। हमारे देश की कृषि के पिछड़ेपन का एक बड़ा कारण यहाँ के युवाओं का कृषि से मोहभंग है।

आज की नई पीढ़ी ने अपने आपको कृषि कार्य से अलग कर लिया है। आज की नई पीढ़ी की कुछ आकांक्षाएं होती हैं, कुछ उम्मीदें होती हैं। वे अच्छा जीवन जीना चाहते हैं, उन्हें लगता है कि उनकी

उम्मीदें कृषि से नहीं पूरी हो सकतीं इसलिए वे कृषि से पलायन कर रहे हैं। मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं'उपन्यास का बलेसर बत्तीस बीघे का काश्तकार है, किंतु उसके तीनों बेटे कृषि कार्य में रूचि नहीं लेते है। उनको बलेसर का भी कृषि से जुड़े रहना नहीं पसंद है। वे बलेसर को समझाते हैं- "अब खेती से जुड़े रहना किसी भी दृष्टि से फायदेमंद नहीं। कृषि कार्य तो अब घाटे और कष्ट का सबब बन गया है। जैसा कि माँ बताती हैं और होश संभालने के बाद मैं स्वयं देखते आ रहा हूँ, इस खेती से उबरने की अपेक्षा हम अधिक परेशान ही होते हैं। खा-पीकर बच्चों को पढ़ाने-लिखाने भर कुछ बचा लेने में ही हमारा सारा उपार्जन सिमट जाता है।"[85] कुलराखन अपने पिता को समझा रहा है कि पिता जी कृषि कार्य में बढ़ती समस्याओं के कारण लोग अपनी जमीन जायजाद को बेचकर शहरों की तरफ पलायन कर रहे हैं। क्योंकि किसी भी बड़े खर्च को वहन करने की शक्ति किसान में नहीं होती है। वे बलेसर से कहते हैं आपको भी तो सुरभि दीदी की शादी करने के लिए अपना खेत रेहन पर रखना पड़ा था। इतने साल बीत गए लेकिन आज तक हम अपने रेहन पर रखे खेत को नहीं छुड़ा पाए।

आज हमारे देश की सरकार भी कृषि कार्य को सरल बनाने के कोई ठोस कदम नहीं उठा रही है। उनके विकास के एजेंडे में कृषि कार्य अंतिम पायदान पर होता है। हमारे यहां कृषि कार्य में कठिनाइयां घटने के बजाय दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं। हमें अपने खेत बेचकर शहर में अपना निवास स्थान बना लेना चाहिए। 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में किसानों की खेती से पलायन के बारे में इस प्रकार वर्णन किया गया है- "अब खेती-किसानी से बढ़कर परेशानी का कार्य कुछ और नहीं रह गया है। खेती की बदहाली से निरंतर किसान आत्महत्याएँ करते जा रहे हैं। इस कार्य से वे त्रस्त और दुखी हैं। इसलिए अपनी खेती का कोई इंतजाम कर या उसे किसी ठिकाने लगा आप लोग अपने माँ बाप को यहाँ शहर ले आइये.....। गिरती उम्र में कृषि के लिए उनका गाँव पर रहना एकदम उचित नहीं।"[86] वे चाहते हैं कि किसी भी चाहते हैं कि किसी भी तरह से बलेसर उनकी बात समझ जाएं, और खेत बेचकर शहर की तरफ पलायन कर लें।

3.6 हिंदी उपन्यास और किसान आंदोलन

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में हमें किसान जीवन की अनेक समस्याएं देखने को मिलती हैं। आज किसान अनेक समस्याओं से घिरे होने के बावजूद अपने हक की लड़ाई स्वयं लड़ रहा है। अब वह दीन-हीन बने रखने में विश्वास नहीं रखता अपितु हर अन्याय के खिलाफ आवाज उठाता है। शिवमूर्ति के 'आखिरी छलांग' उपन्यास में तो गाँव वाले अपनी फसल को सूखे से बचाने के लिए नहर की पटरी तक काट देते हैं, किंतु उस समय गाँव वालों पर सामूहिक मुकदमा चला दिया जाता है। गाँव वाले भी इस अन्याय के खिलाफ धरना प्रदर्शन की योजना बना लेते हैं- "तय हुआ की इस ज्यादती के खिलाफ धरना प्रदर्शन करके ज्ञापन दिया गया। मांग की जाय कि जल्दी से जल्दी नहर में मौजूद सिल्ट और सफाई मरम्मत कराये फर्जी भुगतान लेने और फर्जी मुकदमा दर्ज कराने का आरोप सिद्ध हो सके। वरना फिर बीस-बाईस साल तक पूरे गाँव को बिना कुसूर फर्जी मुकदमा झेलना पड़ेगा।"[87] किसान अपनी समस्याओं से लड़ने के लिए विचार विमर्श भी करते हैं।

मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में किसान एक जगह एकत्रित होकर खाद और पानी की समस्या से निबटने के लिए योजना बना रहे हैं। बलहारी गाँव में पानी की समस्या के कारण किसानों की फ़सलें सूख रही है। दूसरी तरफ बाजार में यूरिया बेचने वाले भी किसानों के साथ छल कर रहे हैं। किसानों के लिए सरकार ने जो मूल्य तय कर रखे हैं, दुकान वाले उस मूल्य पर उन्हें नहीं देते। वे आपस में ही दूसरे दुकानों को वही यूरिया अधिक रेट पर देकर मुनाफा कमाते हैं। किसानों को यह कह देते हैं कि यूरिया खत्म हो गई हैं। किंतु किसान उनकी यह चालाकी समझते हैं। इसलिए वे इसके खिलाफ आन्दोलन की योजना बनाते हैं- "हमारे चुपचाप बैठे रहने से कुछ होने वाला नहीं। पिछले वर्ष हमारे आन्दोलन पर ही नहर का रुका हुआ पानी आया था और सरकारी रेट पर बीज वितरण की धांधली भी रुकी थी। हमें यूरिया वितरण की सरकारी दुकानों पर चलकर ताला जड़ देना है। जब निर्धारित रेट पर वह हमें मिलना ही नहीं तब उन वितरण केन्द्रों को क्यों खुले रहना। इसके बाद हमें ब्लाक ऑफिस का भी घेराव करना

है। जैसा कि हम सभी जानते हैं, हम किसानों के लिए सरकारी राहत की जो भी योजनाएं बनती हैं, उसका क्रियान्वयन ब्लाक से ही होता है, इसलिए निर्धारित दर पर यूरिया का वितरण न होने का भागीदारी ब्लाक ऑफिस ही है।"[88]

इसी तरह से गाँव के किसानों तो उनके फसल का मूल्य समय पर नहीं मिल पाता है। जिसके कारण उन्हें बीज एवं खाद खरीदने में बहुत कठिनाई का सामना करना पड़ता है। सरकार के नए नियम के तहत सरकारी रेट पर किसानों के धान खरीदने के लिए क्रय केंद्र बनाए गए हैं। इन क्रय केन्द्रों की स्थापना इस उद्देश्य से की गई थी कि किसानों की फसल का उन्हें उचित मूल्य प्राप्त हो सके, किंतु इन क्रय केन्द्रों का लाभ बिचौलिए एवं आढ़तिये ही प्राप्त करते हैं। क्रय केन्द्रों पर किसानों को तमाम तरह की समस्याएं झेलनी पड़ती हैं। उनकी फसलों में कई तरह की कमी बताकर वे उसे खरीदने से इन्कार कर देते हैं। तमाम तरह की समस्याओं को झेलने के पश्चात यदि वे अपने अनाज को किसी तरह से बेच पाते हैं, तो समय पर उन्हें उनका भुगतान नहीं प्राप्त हो पाता। सब किसान मिलकर अपने फसल की बकाया राशि को प्राप्त करने के लिए प्रदर्शन करने की योजना बनाते हैं। उनके गाँव की गन्ने की फसल का भुगतान अभी तक उन्हें नहीं प्राप्त हुआ है। गन्ने की मिल के बंद हो जाने से उनकी समस्या और बढ़ गई है। इसलिए गाँव के किसान गन्ने की बकाया राशि को पाने का भी प्रयास करते हैं। जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गांववालो' उपन्यास में ज़कीर के लाख प्रयत्न करने के बावजूद उसकी फसल से उसे मुनाफा नहीं प्राप्त हुआ। उस पर कर्ज का बोझ निरंतर बढ़ता जा रहा था। कभी मिल के बंद होने से गन्ने की फसल की बुआई बंद करनी पड़ती है, तो कभी फसल संरक्षण की व्यवस्था न होने से उसकी फसल सड़ जाती है, कभी प्राकृतिक आपदा के कारण उसकी फसल बर्बाद हो जाती है। अंत में वह कर्ज के बोझ से इतना दब जाता है कि आत्महत्या कर लेता है। भैरव और सल्तनत गाँव के किसानों से एवं किसान सभा से विचार विमर्श करके किसानों के हक के लिए आमरण अनशन पर बैठते हैं- "नहर का मुख्यालय, जहाँ उसका संचालन कार्यालय और मुख्य संयंत्र अवस्थित था, पर एक छोटा शामियाना लगाया गया और उसमें नहर के

जीर्णोद्वार से संबंधित मांगो के अनेक पोस्टर और बैनर टांके गए। नीचे एक दरी बिछाई गई जिस पर बैठकर सल्तनत ने आमरण अनशन शुरु कर दिया।"[89] सल्तनत किसानों के हक के लिए अनशन पर तो बैठ जाती है, किन्तु तत्कालीन सरकार के ऊपर कोई फर्क नहीं पड़ता है। उनके लिए तो वह एक साधारण सी लड़की है जिसके मरने से उन पर कोई फर्क नहीं पड़ने वाला है। हमारी सरकार की किसानों के प्रति जो उपेक्षापूर्ण रवैया है, उसी से किसानों की स्थिति दिन-प्रतिदिन और बिगड़ती जा रही है। वह अपने सामने कोई विकल्प न पाकर आत्महत्या करने को मजबूर हो जाता है।

एम.एम.चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में किसानों के सामने पानी की समस्या, फसल का मूल्य समय पर न मिलना, सरकारी नीतियों का कारगर न हो पाना आदि के कारण किसान त्रस्त हैं। अघोघ और उसके दोस्त मिलकर किसान सभा का गठन करते हैं। जिसमें वे किसानों की समस्याओं पर बातचीत करते हैं एवं उनका हल ढूँढने का भी प्रयास करते हैं- "हमारे गाँव के बारे में किसानों के बारे में, जब कोई नेता नहीं सोच रहा है, तब हम जैसे किसानों के बच्चों को ही आगे आना होगा। यह खेती किसानी का संकट हमारा है, इसलिए इसके समाधान के लिए भी हमें ही लड़ना पड़ेगा।"[90] उपन्यास में सविता के माध्यम से महिलाओं की आन्दोलन में भागीदारी को भी दर्शाया गया है। यदि महिलायें कृषि कार्य में हाथ बंटाती हैं तो आन्दोलन का भी हिस्सा बन सकती हैं- "किसान परिवार का छोटे से छोटा बच्चा भी खेती किसानी के काम में हाथ बंटाता है। यदि महिलायें खेती किसानी कर सकती हैं तो वे किसान आन्दोलन का भी हिस्सा बन सकती हैं। यदि आप लोग चाहें तो हम महिलायें भी आप लोगों के साथ कंधे से कंधा मिलाकर लड़ें।"[91]

गाँव के किसान आन्दोलन में एक बार अपनी किडनी बेचने तथा दूसरी बार अपने गाँव तक को दांव पर लगा देते हैं। किंतु प्रशासन की तरफ से उन्हें कोई आश्वासन नहीं मिला न ही उनकी कोई सहायता की गयी। कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में किसानों की ज़मीन पर कंपनी लगाने के लिए उनकी ज़मीन पर कब्ज़ा किया जा रहा है। उपन्यास में सिर्फ आदिग्राम के ही नहीं, अपितु राजस्थान

और गुड़गाँव के भूमि अधिग्रहण के विरोध में किसानों के आन्दोलन को भी दिखाया गया है। किसान एक तरफ अपनी ज़मीन को बचाने के लिए आन्दोलन करते हैं तो दूसरी तरफ अकाल के समय कर न चुकाने के लिए वे आन्दोलन करते हैं- "ज़मीन उसी की जो उस पर खेती करे। किसानों के नारे बुलंद होने लगे, "जान देंगे, धान नहीं देंगे। महेन्द्र और संघमित्रा के आह्वान पर हर घर से एक भाई, एक रूपया, एक लाठी की मांग हुई और देखते देखते किसानों की एक बड़ी फौज बन गयी। आदमी और अनाज के बीच का युगों पुराना सम्बन्ध मात्र रह गया, बीच की तमाम बाधाओं, ज़मीदार, पुलिस, दरोगा ,पटवारी, साहूकार, महाजन को एक धक्का और दो फसल तैयार होने पर दल के दल लोग एकजुट होकर खेतों में उतरे । लाल झंडा गाड़कर धान की कटाई हुई.....। ज़मीदारों को किसानों के खलिहान से अनाज निकलवाने के लिए बंदूकधारी पुलिस का सहारा लेना पड़ा।"[92]

किसान अपने कंधे पर हल रखे अपने बैलों को साथ लेकर आन्दोलन में हिस्सा ले रहे हैं। किसानों की समस्याओं के अत्तिरिक्त इक्कीसवीं सदी में कुछ ऐसे उपन्यासों की रचना भी हुई, जिनमें किसानों को जागरूक करने का प्रयास किया गया। सूर्यनाथ सिंह के 'चलती चाकी' उपन्यास में श्वेतानंद गाँव के किसानों को कृषि करने के तरीकों के बारे में बताते हैं। वे किसानों को सिंचाई करने के तौर-तरीकों के बारे में बताते हैं। आज किसानों के सामने सिंचाई की समस्या इसलिये उत्पन्न हो रही है, क्योंकि हमारे पारंपरिक स्रोत जैसे कुएं, तालाब आदि सूख गए हैं तथा उनको पाट दिया गया है। वे गाँव के बालकों और किसानों को एकत्रित कर तालाबों की फिर से खुदाई करवाते हैं। उनको बूँद सिंचाई के माध्यम से सिंचाई करने के प्रेरित करते हैं, ताकि पानी की बचत की जा सके। किस मिट्टी के लिए कौन सी फसल उपयोगी सिद्ध होगी इसके बारे में भी किसानों को बताते हैं।

इसी तरह से जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' उपन्यास में भैरव और सल्तनत गाँव के युवा जो पढ़े लिखे होने के बावजूद बेरोजगार हैं। उनके लिए खेती को ही एक रोज़गार की तरह बनाने की तरकीब खोज रहे हैं। वे गाँव की बंजर जमीन को समतल बनाकर उसमें से झाड़ काटों को साफकर उसे

कृषि योग्य बनाते हैं। जिससे यह बेरोजगार युवाओं के लिए आमदनी का एक जरिया बन सके- "सदस्यों की संख्या 45 है और जमीन का कुल रकबा तकरीबन डेढ़ सौ बीघा होगा.... मतलब एक आदमी पर लगभग चार बीघा की मेहनत। ज्यादा नहीं है.... शहर में अगर इतने ही क्षेत्रफल में कोई कारखाना खुल जाता है तो उससे हजारों आदमी की आजीविका चलने लगती। यहाँ भी हम इसे कारखाना की तरह ही चलाएंगे और साबित करेंगे कि कृषि को भी उद्योग की तरह लाभप्रद और कारगर बनाया जा सकता है।"[93] वे गाँव के युवाओं को एकत्रित कर सामूहिक रूप से खेती करवाते हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान जीवन की अनेक समस्याएं देखने को मिलती हैं। जिनमें से एक तो सरकार की कृषि नीतियां हैं, जिनसे कृषि समाज लाभान्वित होने की बजाय संघर्ष कर रहा है। आज भी किसान सिंचाई के लिए प्रकृति पर ही निर्भर हैं, सरकार की तरफ से अनेक फसलों को पानी उपलब्ध कराने का कोई ठोस कदम नहीं उठाया जा रहा है। खाद, बीज, पानी उनकी समस्याओं के केंद्र बिंदु हैं। मंडी एवं बैंक में बिचौलिये की वजह से उन्हें समस्याएं झेलनी पड़ती हैं। इन सब समस्याओं के बीच किसान संघर्ष कर रहा है।

संदर्भ

1. मजुमदार, रमेशचन्द्र एवं अन्य; भारत का बृहत् इतिहास प्राचीन भारत; S.G. Wasani for Macmillan India Limited and Printed by V.N. Rao at Macmillan India Press, Madras 600041; संस्करण : 1994; पृ. 28
2. सरकार, सुमित; आधुनिक भारत(अनु.) सुशीला डोभाल; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2018; पृ. 82
3. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2011; पृ. 64
4. वही, पृ. 65
5. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास 1850 -1947; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2015; पृ. 46
6. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2011; पृ. 64
7. पुष्पराज, नंदीग्राम डायरी; पेंगुइन रैंडम हॉउस इंडिया प्रा. लि. सातवीं मंजिल, इनफिनिटी टावर सी, डी एल एफ साइबर सिटी, गुड़गाँव- 122002, हरियाणा, भारत; संस्करण : 2009; पृ.-9
8. त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 160
9. वही, पृ. 5
10. वही, पृ. 53
11. वही, पृ. 57
12. वही, पृ. 58
13. वही, पृ. 152
14. मेहता, रामकिशोर; भारत में किसान की दुर्दशा; उद्भावना एच-55, सेक्टर-23 राजनगर, गाजियाबाद; संस्करण : 2018; पृ. 22
15. वही, पृ. 185
16. प्रकाश, अरुण; उपन्यास के रंग; अंतिका प्रकाशन, सी-561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद-201005(उ.प्र.); संस्करण : 2013; पृ. 144
17. त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 192
18. मेहता, रामकिशोर; भारत में किसान की दुर्दशा; उद्भावना एच-55, सेक्टर-23 राजनगर, गाजियाबाद; संस्करण : 2018; पृ. 61
19. सिंह, सूर्यनाथ; चलती चाकी; सामयिक प्रकाशन 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2020; पृ. 47
20. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. x-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज -2 नई दिल्ली 110020; संस्करण : 2019; पृ. 134

21. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालो; वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 42
22. वही, पृ. 56
23. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 30
24. वही, पृ. 57
25. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 128
26. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 10
27. वही, पृ. 65
28. वही, पृ. 70
29. वही, पृ. 84
30. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 150
31. त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 297
32. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ. 267, सेक्टर- 16 पंचकूला-134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 220
33. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 147
34. कुमार, आशुतोष; किसानों के साथ बर्बरता के पीछे; रविवार (सं.) राजकिशोर; कॉरपोरेट हाउस, बी –ब्लॉक, दितीय मंजिल, 169, आरएनटी मार्ग, इंदौर- 452001; जून, 2017; पृ. 8
35. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली -110002; संस्करण : 2007; पृ. 45
36. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 45
37. राकेश, राजकुमार; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ. 267, सेक्टर- 16, पंचकूला-134113(हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 180
38. जोशी, रामशरण; किसान समाज और दूसरे संघर्षशीलजन; हंस (राजेंद्र यादव); अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/3, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 103
39. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003; संस्करण : 2011; पृ. 111
40. पुष्पराज, नंदीग्राम डायरी; पेंगुइन रैंडम हॉउस इंडिया प्रा. लि., सातवीं मंजिल, इनफिनिटी टावर सी, डी. एल. एफ. साइबर सिटी, गुड़गाँव- 122002, हरियाणा, भारत; संस्करण : 2009; पृ. 7
41. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 41
42. शर्मा, देविंदर; अब खेतों में किसान नहीं दिखेंगे; हंस (राजेंद्र यादव); अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 194

43. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 201
44. वही, पृ. 201
45. वही, पृ. 201
46. (सं.) प्रो; संजय नवले; किसान-आत्महत्या; यथार्थ और विकल्प; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2018; पृ. 158
47. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि., x-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज- 2 नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 48
48. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी- 561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 117
49. गोयल, रवीन्द्र; लंपट विकास के दौर में खेती; समयांतर (सं.) पंकज विष्ट; 79-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली; जुलाई, 2017; पृ. 14
50. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालो; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 19
51. वही, पृ. 63
52. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 141
53. वही, पृ. 144
54. वही, पृ. 68
55. वही, पृ. 69
56. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद- 211001; संस्करण : 2018; पृ. 58
57. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि., x -30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 46
58. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 121
59. वही, पृ. 124
60. वही, पृ. 127
61. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 97
62. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन, पी.सी.लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001 (म.प्र.); संस्करण : 2017; पृ. 8
63. वही, पृ. 22
64. वही, पृ. 92
65. मेहता, रामकिशोर; भारत में किसान की दुर्दशा; उद्भावना एच-55, सेक्टर-23 राजनगर, गाजियाबाद; संस्करण : 2018; पृ. 32
66. सिंह, अर्जुन प्रसाद; कृषि संकट बनाम किसान मुक्ति; फिलहाल (सं.) प्रीति सिन्हा; फिलहाल ट्रष्ट स्वास्तिक प्रेस, काजीपुर, पटना, नेहरु नंदा भवन, दरोगा राय पाठ, पटना 800001; जनवरी-फ़रवरी, 2018; पृ. 16
67. वही, पृ. 139

68. उपाध्याय, रमेश; किसान आत्महत्याओं पर दो उपन्यास; कथन (सं.) संज्ञा उपाध्याय; 107 साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली- 110063; जनवरी-मार्च, 2019; पृ. 153
69. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-561 यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-2 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 125
70. अमरपाल, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना किसके हित में ? किसानों के या निजी बीमा कंपनियों के ?; किसान (सं.); ग्राम-मांगरौली, पोस्ट-बेगमाबाद गढ़ी, वाया दोघट, जिला-बागपत, पिन-250622; अक्टूबर, 2019; पृ. 9
71. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 85
72. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली -110002; संस्करण : 2007; पृ. 45
73. शिवमूर्ति; आखिरी छलांग; नॉटनल प्रकाशन, 16/1454, इंद्रा नगर, लखनऊ(उ.प्र.) 226016; संस्करण : 2014; पृ. 8
74. हरनोट, एस.आर; हिडिम्ब; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134113 (हरियाणा); संस्करण : 2011; पृ. 22
75. सिंह, अर्जुन प्रसाद; कृषि संकट बनाम किसान मुक्ति; फिलहाल (सं.) प्रीति सिन्हा; फिलहाल ट्रष्ट स्वास्तिक प्रेस, काजीपुर, पटना, नेहरु नंदा भवन, दरोगा राय पाठ, पटना-800001; जनवरी-फ़रवरी, 2018; पृ. 16
76. शिवमूर्ति; आखिरी छलांग; नॉटनल प्रकाशन, 16/1454, इंद्रा नगर, लखनऊ (उ.प्र.) 226016; संस्करण : 2014; पृ. 3
77. त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 73
78. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 130
79. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 169
80. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालों; वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 47
81. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 99
82. सिंह, सूर्यनाथ; चलती चाकी; सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2020; पृ. 38
83. गुप्त, विजय; बदहाल किसान और लोकतंत्र की नींद; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16; रोहिणी, दिल्ली- 110089; अगस्त, 2017; पृ. 7
84. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी.सी.लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर- 466001 (म.प्र.); संस्करण : 2017; पृ. 183
85. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 26
86. वही, पृ. 141

87. शिवमूर्ति; आखिरी छलांग; नॉटनल प्रकाशन, 16/1454, इंद्रा नगर, लखनऊ (उ.प्र.) 226016; संस्करण : 2014; पृ. 4
88. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 68
89. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालो; वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 68
90. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स प्रा. लि., x-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 87
91. वही, पृ. 154
92. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड. नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2011; पृ. 98
93. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालो; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 97

चतुर्थ अध्याय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में
खेतिहर मजदूरों का संघर्ष और चुनौतियाँ

भारतीय समाज में किसान और खेतिहर मजदूर समाज का एक ऐसा वर्ग है जो सदियों से शोषण का शिकार होता रहा है। इसमें भी खेतिहर मजदूर दोहरे शोषण का शिकार है। एक तो उसे किसान के शोषण का शिकार होना पड़ता है, दूसरा समाज के शोषण का भी शिकार होना पड़ता है। खेतिहर मजदूरों में सदियों से शोषित, उत्पीड़ित, दलित एवं आर्थिक रूप से कमज़ोर वर्ग के लोग आते हैं, जो अपनी जीविका दूसरों की भूमि पर काम करके चलाते हैं।

एक खेतिहर मजदूर अपने बचपन से लेकर मृत्युपर्यंत मेहनत-मजदूरी ही करता है, किन्तु उसकी आर्थिक आवश्यकताएं जीवनभर पूरी नहीं हो पाती हैं। खेतिहर मजदूर का बेटा अपने खेलने और पढ़ने की उम्र से ही दूसरों के खेत में या घर पर बेगार करता है। जो परिवार जी-तोड़ मेहनत-मजदूरी करने के बाद भी अपनी आवश्यकताएं न पूरी कर पाता हो, वह अपने बच्चों को शिक्षा कहाँ से उपलब्ध करा पाएगा। शायद खेत मजदूरों का विकास इसलिए भी नहीं हो पाता है क्योंकि उनका शैक्षिक स्तर बहुत ही निम्न है। इस संबंध में जी.एस. भल्ला ने लिखा है- "खेतिहर मजदूरों की शैक्षणिक योग्यता और दक्षता का स्तर भी बहुत नीचे है, यह उनकी गतिशीलता में एक बाधक है।"[1] निम्न वर्ग की विभिन्न जातियां जो निर्धन एवं भूमिहीन हैं उनकी गणना खेतिहर मजदूरों में की जाती है।

मजदूर वर्ग ऐसा वर्ग है जो वर्णव्यवस्था कायम होने से आज तक मुसीबतों का ही सामना करता आ रहा है। आज भी इनके साथ उच्च वर्ग के लोगों द्वारा जैसे कि भूस्वामी एवं पूँजीपतियों द्वारा अभद्र व्यवहार ही किया जाता है। किसान जो स्वयं जमींदार के शोषण का शिकार है वह अपने से निचले तबके

के लोग यानी कि खेतिहर मजदूर का शोषण करता है। दरअसल समाज में शोषण की परंपरा श्रंखलाबद्ध रूप से दृष्टिगोचर होती है। जमींदार किसानों का शोषण करते हैं तो यही नीति किसान खेतिहर मजदूरों के साथ अपनाते हैं और खेतिहर मजदूर अपने से नीचे के लोग यानी कि धोबी, हज्जाम आदि का शोषण करते हैं। किसान एवं खेतिहर मजदूर विवशतावश शोषण करते हैं, किंतु जमींदार किसानों एवं खेतिहर मजदूरों को अपने फायदे के लिए प्रताड़ित करते हैं- "किसान की कमाई का न सिर्फ मुनाफा ही जमींदार ले लेता है, बल्कि उसकी मजदूरी का भी एक भाग लेता है, जिससे उसे विवश होकर महाजनों और बैंकों से ऋण लेने में अत्यधिक सूद देना पड़ता है और इस प्रकार उसकी खेती घाटे में चलती है। जमींदार के शोषण ने पहले तो उसकी मजदूरी तक छीन कर उसे जीविका और पूंजी से हीन बना दिया। फलतः खेती जारी रखने और खाने के लिए जुल्मी सूद पर उसे ऋण लेना पड़ा और दोनों के चुकाने में उसे खेती में घाटा लगा और वह दिवालिया हो गया। यही क्रम बराबर जारी है। ऐसी हालत में बेबसी के चलते असंगठित रूप से हलवाहे आदि का शोषण करता है।"[2] आज के मशीनी युग ने मजदूरों की समस्याओं को और भी बढ़ाने का काम किया है। आज उनके सामने गाँव में मजदूरी का संकट उत्पन्न हो गया है। उन्हें काम की तलाश में शहर की ओर पलायन करना पड़ता है। भूस्वामी जो स्वयं अपनी भूमि पर खेती नहीं करते हैं। वे मजदूर लगाकर या मशीन के प्रयोग से खेती करवाते हैं। इस कारण से खेतिहर-मजदूरों के समक्ष मजदूरी का संकट उत्पन्न हो गया है। सुखविंदर के अनुसार- "जब कोई भूस्वामी किसी नयी मशीन या सुधरे हुए औजार का इस्तेमाल शुरू कराता है, तो वह किसान (जो उसके लिए काम करता था) के औजार को हटाकर अपने औजार लगाता है। नतीजतन, वह लेबर सर्विस से पूंजीवादी खेती की व्यवस्था के मातहत आ जाता है। कृषि मशीनों के फैलाव का मतलब होता है पूंजीवाद द्वारा लेबर सर्विस का खात्मा। कृषि में मशीनरी का सुव्यवस्थित इस्तेमाल पितृसत्तात्मक 'मध्यम' किसान को उतनी ही कठोरता से ढकेलकर बाहर करता है जितनी कठोरता से वाष्पचालित करघा दस्तकार बुनकर को बाहर करता है।"[3] इन कारणों के परिणामस्वरुप दिन-प्रतिदिन मजदूरों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है, किन्तु मजदूरों की पारिश्रमिक

आय में उनके गुजारे लायक भी वृद्धि नहीं की जाती है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में खेतिहर मजदूरों की इन्हीं समस्याओं को हम देखते हैं :

4.1 शोषण के विविध रूप

हमारे समाज में खेतिहर मजदूर को अनेक तरह से शोषित करने की प्रथा रही है। देश में जमींदारी उन्मूलन के बाद से जमींदारी प्रथा का तो खात्मा हो गया, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से वह आज भी समाज में व्याप्त है। अब देश में जमींदारों की जगह बड़े किसान आ गए हैं, जिनका उद्देश्य खेती से सिर्फ अपना मुनाफा कमाना होता है। वे अपने इसी मुनाफे के लिए खेतिहर मजदूरों को अपने शोषण का शिकार बनाते हैं। वे न तो उन्हें उचित मजदूरी देते हैं न उनके साथ मानवीय व्यवहार ही करते हैं। बेगार कराना तो वे अपना जन्मजात अधिकार समझते हैं। रामविलास शर्मा के अनुसार- "जमींदारी प्रथा ख़त्म हुई। लेकिन ख़त्म होने से जो नई तस्वीर सामने आई, उसमें पुराना जमींदार नया धनी किसान बन गया। जमीन उसने अपने पास रखी या अपने भाई-भतीजों में बाँट दी। पहले वहां वह मुख्यतः अपनी और गाँव की जरूरतों के लिए खेती करता था, अब वह बिकाऊ माल पैदा करने के लिए खेती करने लगा। गाँव में पुराना जमींदार पूंजीवादी किसान बनने लगा। बना तो वह पूंजीवादी किसान, लेकिन खेत-मजदूरों को पूंजीवादी ढंग से निश्चित पगार न देना चाहता था। यह मुख्य कारण है कि उत्तर भारत के अनेक केंद्रों में और आंध्र के अनेक केंद्रों में हरिजनों पर विशेष अत्याचार की कहानियां अखबारों में छपा करती हैं।"[4] अंग्रेजों के आगमन से पूर्व खेतिहर मजदूरों का जीवन बहुत कष्टदायक नहीं होता था। अंग्रेजी शासन में ईस्ट इंडिया कंपनी की स्थापना के बाद से ही मजदूरों की स्थिति खराब होती गई। मालगुजारी वसूल करने के लिए अंग्रेजों ने जो जमींदारी प्रथा कायम की उसने खेतिहर मजदूरों के शोषण को आधार दिया। जमींदार खेतिहर मजदूरों से खेतों में काम करवाने के साथ-साथ घर पर भी बेगार करवाते थे। जमींदारी व्यवस्था ने कृषि मजदूरों को बंधुआ मजदूर बनने पर विवश कर दिया। जमींदार मजदूरों का शारीरिक, आर्थिक एवं मानसिक रूप से शोषण करते थे।

भीमसेन त्यागी का भीमसेन त्यागी का 'जमीन' उपन्यास स्वतंत्रता से पूर्व किसानों एवं खेतिहर मजदूरों की स्थिति को आधार बनाकर लिखा गया है। जमींदारों द्वारा मजदूरों का शोषण इस उपन्यास की मूल समस्या है। महकू ठाकुर चन्दन सिंह के खेतों में काम करता है। महकू के दादा ने कभी ठाकुर चन्दन सिंह के दादा से दो बिस्सी का कर्ज लिया था और उसमें ब्याज जुड़ते-जुड़ते इतना बढ़ गया है कि महकू क्या उसकी आने वाली कई पीढ़ियाँ भी ठाकुर का कर्ज नहीं चुका सकतीं हैं। ठाकुर हर दशहरे पर उससे अंगूठा लगवाता है महकू को इन सबके बारे में कुछ नहीं पता। वह बस इतना जानता है कि उसके दादा ने चन्दन सिंह के दादा से दो बिस्सी का कर्ज लिया था- "कुल जमा बीस तक गिनती जानता है महकू। लम्बा-चौड़ा हिसाब उसकी समझ में नहीं आता। समझने से फायदा भी क्या ! और खून सूखेगा। सूद दर सूद लगते-लगते कर्ज पहाड़ बन चुका है। महकू को मालूम है कि अपनी खाल बेचकर भी वह ठाकुर का कर्ज नहीं चुका सकता। तो फिर इसके अलावा क्या चारा है कि वह और उसका कुनबा ठाकुर की बेगार करता रहे।"[5] महकू की पीढियां चन्दन सिंह के घर बेगार करती आ रही हैं, किंतु उसे महकू पर जरा भी तरस नहीं आता है।

बेगारी की प्रथा का जन्म वहां से होता है, जहाँ से जमींदारी प्रथा की शुरूआत होती है। खेतिहर मजदूर की जीविका का आधार उसका श्रम ही होता है किंतु उससे उसके परिवार का गुजारा नहीं हो पाता है। अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही वह महाजन या जमींदार से कर्ज लेता है। चूंकि मजदूरों के पास कोई संपत्ति भी नहीं होती है कि वह उसे गिरवी रख सके, इसलिए कर्ज न चुका पाने की स्थिति में वह स्वयं को जमींदार के पास बंधक रख देता है। सब्यसाची भट्टाचार्य के अनुसार- "ऋण देने वाला इन मजदूरों के समूचे श्रम का मालिक था। खाना-कपड़ा के अलावा आमतौर पर उन्हें कोई वेतन नहीं दिया जाता था। पास में पैसे न होने से इन मजदूरों के लिए कर्ज चुकाना प्रायः असंभव था। कानूनी तौर पर गलत होते हुए भी प्रथा के रूप में यह दासता वंशक्रम से चलती रहती थी। एक बंधुआ मजदूर का उत्तराधिकारी खुद को बंधुआ बना लेता था। ऋणदाता प्रायः मालिक की तरह इन बंधुआ मजदूरों को

दूसरे मालिक को सौंप सकता था।"[6] महकू ठाकुर चंदन सिंह का बंधुआ ही है जिसे ठाकुर के इशारों पर ही चलना पड़ता है। कभी-कभी तो महकू के घर में अन्न का एक दाना भी नहीं रहता है। बच्चों को भूखे पेट सुलाने की नौबत आ जाती है। महकू जब तक चार-बार चन्दन सिंह के सामने जाकर गिड़गिड़ा न ले तब तक ठाकुर उसे अन्न का एक दाना भी नहीं देता है- "महकू जानता है-ठाकुर चन्दन को ! चार चक्कर कटवाये बिना सेर भर दाने भी नहीं दे सकता ! इसीलिए घर में चार दिन का अनाज रह जाता है, तभी महकू माँगना शुरू कर देता है। अपनी बात को सच्ची साबित करने के लिए कभी भगवान की तो कभी धरती माता की कसम खाता है। इसके बावजूद ठाकुर एक-एक दिन टरकाता रहता है। और कभी न कभी चूल्हा ठंडा ही रह जाता है।"[7] महकू दिन-रात चन्दन सिंह के खेत में परिश्रम करता है, किन्तु उसे भरपेट भोजन भी नहीं नसीब होता है।

जमींदार मजदूरों पर अपना मालिकाना हक समझते हैं। ठाकुर चन्दन सिंह के परदादा ने महकू के पुरखों को गणेशपुर गाँव में बसाया था। तभी से गाँव की एक निम्न जाति का यह कुनबा चन्दन सिंह का बंधुआ बन गया है। वह जब चाहे तब उनको अपने खेतों में और घर पर बेगार करने के लिए बुला सकते हैं। इसके बदले ठाकुर कभी-कभी उनको मजदूरी भी दे देता है लेकिन यह उसकी इच्छा पर निर्भर है- "मर्द-औरतें, सब ठाकुर चन्दन सिंह के खेतों में काम करते हैं। मजदूरी दो सेर मोटा अनाज, जिस दिन दिहाड़ी लग जाए ! औरतों की मजदूरी आधी। लेकिन यह मजदूरी का अनाज भी ठाकुर की मर्जी पर है। कब दे, कब न दे ! किसी ढंग से दो जून रोटी मिल जाती है। मेहरबानी है ठाकुर की ! दिन फूट रहे हैं। वरना माजरे में किसे नहीं जानता महकू ! लोगों के पेट के जाले भी नहीं टूटते! ।"[8] जमींदार ठाकुर चन्दन सिंह के घर चार नौकर और बेगार के मजदूर हैं। जिनमें महकू के सामने कैसी भी परिस्थिति हो उसे चन्दन सिंह के यहाँ काम करना ही पड़ता है।

जमींदार खेतिहर मजदूर या अपने बंधुआ मजदूरों के साथ बहुत ही अमानवीय व्यवहार करते हैं। ये नाममात्र की मजदूरी पर उनसे काम करवाते हैं। ज्यादातर कामों के लिए ये मजदूरों को कोई मजदूरी

नहीं देते हैं। इन मजदूरों के घर की स्त्रियाँ, उनके पुत्र और पुत्रियाँ तक जमींदारों के घर बेगार करने पर मजबूर किए जाते हैं। जमींदारों के घर पर चरवाही, सब्जी उगाना, पशुपालन, पानी भरना आदि कार्य तो मजदूरों से बेगार के तौर पर कराये जाते हैं। इन कार्यों के लिए उन्हें कोई पारिश्रमिक नहीं मिलता है। खेतिहर मजदूर जमींदार द्वारा दी गई कुछ बीघे भूमि और उनके द्वारा दी गई मजदूरी पर आश्रित होते हैं। मजदूर के खुद के खेत परती रह जाएं किंतु उन्हें पहले जमींदारों के खेतों को जुताई-बुआई करनी पड़ती है। स्वामी सहजानंद सरस्वती के अनुसार- "जमींदारों की ओर से हर अमले को एक दो, चार बीघे खेत मिलते हैं जिन्हें जोत-बो कर वह अपनी गुजर करता है, कारण वेतन तो कुछ होता नहीं। अब गांवों में जाकर कोई पूछे और पता लगावे कि अमलों के कितने बैल और हल खेतों की खेती के लिए हैं तो एक का भी पता न मिलेगा। फिर भी उनके खेत सबसे पहले जोते बोए जाते हैं, चाहे बेचारे किसान के खेत यों ही पड़े रह जाए। खेतों के लिए बीज वगैरह भी भरसक किसानों से ही लिए जाते हैं और हरवाहे का काम तो वे लोग बिना मजूरी के करते ही हैं। मजूरी मांगने की हिम्मत करना तो अपने को मिटाने का सामान मुहैया करना है।"[9] चन्दन सिंह मजदूरों के साथ जानवरों जैसा सुलूक करता है। महकू दिन भर चन्दन सिंह के खेत में काम करता रहता है, शाम तक वह थककर चूर हो जाता, फिर भी उसे ठाकुर के घर के कामों से फुरसत नहीं मिलती है। घर पहुंचकर वह बुखार से तपने लगता है। बीमारी के कारण वह ठाकुर के यहाँ काम करने नहीं जा पाता है। ठाकुर अपने नौकरों से महकू के लिए बुलावा भेजता है। महकू की हालत देखकर उसे जरा भी दया नहीं आती है। उसे महकू के जीने-मरने से कोई मतलब नहीं उसे तो सिर्फ काम चाहिए।

यह सच है कि जमींदार के लिए खेतिहर मजदूर एक गुलाम ही होता है जिसे वह जब चाहे तब किसी भी तरह से इस्तेमाल कर सकता है। जिस तरह से चंदन सिंह महकू का इस्तेमाल करता है। वह महकू को कुट्टी काटने के लिए कहता है। बेबस महकू चुपचाप बैठकर कुट्टी काटने लगता है- "महकू को तेज बुखार है। आँखे कड़ुवा रही हैं। गनूदगी का झोंका आता है तो उसका हाथ बहक जाता है। वह फ़ौरन संभलता है और फिर मुस्तैदी से कुट्टी काटने लगता है। इस बार ऐसा झोंका आया, जो महकू की चेतना

को ले गया। मूठ पर पकड़ ढ़ीली पड़ गयी। उसने गंडासा ऊपर उठाया धड़ाम से नेह पर दे मारा। गंडासा जहाँ गिरा, वहां बाजरे की मूठ नहीं, महकू का बायाँ हाथ था। एक ही झटके में महकू की चारो उँगलियाँ चिटक कर दूर जा गिरी और छिपकली की कटी पूँछ की तरह तड़पने लगीं। हाथ से एक साथ खून के चार फव्वारे फूट निकले।"[10] चन्दन सिंह को महकू की उँगलियाँ कटने का कोई गम नहीं, क्योंकि उसके लिए महकू महज एक मशीन है जो उसके घर काम करता है। अब उसने महकू को इस हालत में भी नहीं छोड़ा कि वह मजदूरी करके अपने परिवार का पेट पाल सके। जमींदार को अपने भोग-विलास के आगे मजदूरों का कोई दुःख और उनकी कोई बेबशी नहीं नजर आती है। मिशेल बो ने भी इस बारे स्पष्ट लिखा है- "मजदूर कानूनी रूप में और वास्तव में संपत्तिधारी वर्ग का गुलाम है। ऐसा मान्य गुलाम कि किसी सामान की तरह उसे बेचा जाता है, किसी माल की तरह उसका मूल्य चढ़ता और उतरता है।"[11] जमींदार खेतिहर मजदूरों पर कोई भी अत्याचार करें, किंतु मजदूर बेचारे उन्हें चुपचाप सहने को मजबूर होते हैं। वे जमींदारों को उनके अत्याचार के खिलाफ चाहकर भी कुछ नहीं बोल सकते हैं क्योंकि उन्हीं के रहमोकरम पर खेतिहर मजदूर अपना जीवनयापन करता है। यही कारण है कि महकू देर-सवेर जब भी ठाकुर के यहाँ से बुलावा आता है, उनके दरवाजे पर हाजिर हो जाता है क्योंकि ठाकुर के यहाँ काम करने से उसके परिवार को दो जून की रोटी किसी तरह से नसीब हो जाती है। ठाकुर से दुश्मनी मोल लेने का मतलब है अपनी जमीन से भी बेदख़ल होना। महकू तो किसी तरह से अपने दुःख को चुपचाप सह भी लेता है किंतु उसकी पत्नी अनारो महकू की अंगुलियाँ कटने पर ठाकुर को कोसते हुए कहती है- "तेरा नास हो, चन्दन ! गरीब माणस किसी तरह मिहनत-मजूरी करके पेट पाल रहा था। जालम ! तेरे से यो बी नी देख्या गया। अपाहज बनाकर रख दिया।"[12]

भारतीय समाज पितृसत्तात्मक समाज है। यहां पर महिलाओं को कृषि क्षेत्र से जुड़े कई कार्य करने की आजादी नहीं है। इनमें से एक हल चलाना भी है, जो सिर्फ पुरुषों का काम माना जाता रहा है। किंतु आज समाज में महिलाएं खेती-किसानी के हर काम में अपनी भूमिका निभा रही हैं। पति की गैरमौजूदगी

में वे ही घर-परिवार और खेती से जुड़े सभी कार्यों को करती हैं। मैत्रेयी कृष्णराज के अनुसार- "कई महिलाओं ने खेत जोतने के लिए पुरुष श्रमिक नहीं मिलने के कारण, अपनी जमीनों को परती छोड़ दिया। कुछ मामलों में हमने देखा कि महिलाओं ने खुद ही जुताई का काम भी शुरू कर दिया है, जबकि खेत जोतना पुरुषों का काम माना जाता है और महिलाओं के लिए वर्जित है। बदलती परिस्थितियों में महिलाओं के इस पारंपरिक नियम के उल्लंघन को भी स्वीकृति मिल गई है।"[13]

यदि मजदूर जमींदार के खिलाफ जाते हैं जमींदार उन्हें किसी न किसी झूठे इल्जाम में फंसा देते हैं क्योंकि उनके पास पैसा और रुतबा होता है। यही हाल चंदन सिंह चम्पा के पति रतनू के साथ भी करते हैं। वे रतनू को झूठे चोरी के इल्जाम में फंसाकर जेल भेजवा देते हैं। उन्हें पता है कि रतनू के जेल जाने के बाद उसके पास जो थोड़ी बहुत जमीन है वह भी परती रह जाएगी। समाज में महिलाओं को खेती से जुड़े सभी कार्य करने की आजादी नहीं है। चम्पा को अपने खेतों की चिंता है कि वह खेती कैसे कर पाएगी क्योंकि समाज में महिलाओं का खेत में हल चलाना वर्जित है। रतनू और महकू में अच्छी दोस्ती है फिर भी महकू रतनू की पत्नी की मदद करने में डर रहा है क्योंकि वह भी चन्दन सिंह का बंधुआ है। वह चम्पा से कहता है- "लंगड़े चन्दन को पता चलेगा कि मैं तेरा खेत बो रहा हूँ तो वह मुझे खींच कर रख देगा। मुझे अपना तो कितई डर नहीं। आज भी उसका बंधुआ हूँ, कल भी रहूँगा। लेकिन डर यह है कि खेत बिन बोये रह गए तो गजब हो जाएगा !।"[14] जमींदार अपने बंधुआ मजदूरों की पत्नी को भी अपनी जायदाद समझते हैं। महकू तो उसका बंधुआ होने के साथ-साथ कर्जदार भी है। महकू की शादी के बाद गाँव की प्रथानुसार महकू की पत्नी अनारो को ठाकुर चन्दन सिंह का चरण छूने जाना है। अनारो को चरण छूने की प्रथा के पीछे का कारण नहीं पता है और जब उसे इसका कारण पता चलता है तो वह सीधे ही इस प्रथा को निभाने से इनकार कर देती है। वह महकू को उसके साथ हुए वाकये के बारे में बताती है। तब महकू उसे चरण छूने की प्रथा के बारे में बताता है- "किसी रैयत की शादी होती है तो वह अपनी जोरू को लेकर

मालिक के पैर छुवाने ले जाता है। वे दोनों एक रात मालिक के यहाँ रहते हैं बहू की वह पहली रात मालिक की होती है।"[15]

खेतिहर मजदूर की जमींदारों के सामने कोई मर्जी नहीं चलती है। महकू अच्छी तरह जानता है कि अनारो लाख विरोध कर ले, किंतु उसे ठाकुर की सेवा में जाना ही जाना पड़ेगा। वह अपनी तरफ से अनारो को समझाने की कोशिश भी करता है किंतु अनारो को तो चन्दन सिंह से नफरत है। वह महकू की बात सुनकर तिलमिला उठी- "इन जमींदारों ने जैसे जमीन आपस में बाँट रखी है, वैसे ही रैयत रियाया भी। ये रैयत की जोरू को अपनी जियाजाद सिमझै ! तूने पहले क्यूँ नहीं बताया था। बता देता तो मैं कभी वहां न जाती।"[16] महकू अच्छी तरह समझता है कि अनारो की जिद उन पर भारी पड़ने वाली है। वह अनारो को समझाता है कि वह चन्दन सिंह के घर चली जाए नहीं तो चन्दन सिंह उसे जबरन उठवा कर ले जाएगा। अंत में वही होता है जिसका महकू को डर था- "सूरज डूबते ही माजरे के ऊपर सांवले अँधेरे का चंदोवा तन गया। चूल्हों से उठता धुवाँ नीम की चोटी चढ़ गया। अनारो अपने चूल्हे में झीना लगा रही थी कि चार कडंगे जवान घर में घुसे और उन्होंने अनारो को दबोच लिया। एक ने उसका मुंह बंद कर दिया और बाकी उसे उठाकर तेजी से घर के बाहर हो गए... ।"[17] अनारो के लाख विरोध करने के बाद भी वही हुआ जो चन्दन सिंह चाहता था। महकू तो बेबस है वह चाहकर भी कुछ नहीं कर सकता है। एक बार अनारो चन्दन सिंह के घर गई तो यह एक सिलसिला बन गया। चन्दन सिंह जब भी चाहता अनारो को बुलावा भेज देता था और अनारो को उसके घर जाना पड़ता था।

भूमि व्यवस्था में गैर-मजरूआ ऐसी भूमि को कहा जाता है जिसका उपयोग सामुदायिक कार्यों के लिए किया जाता था। जैसे पशु चराना, चारे का प्रबंध, मरे हुए को दफनाने हेतु, एवं बाजार लगाना आदि कार्यों के लिए। किंतु जमींदारों ने अपने ताकत के बलबूते इस भूमि पर अपना अधिकार जमा लिया। सरकारी दस्तावेजों या रिकार्डों में इसी सार्वजनिक भूमि को गैर-मजरूआ कहा जाता है। इसी भूमि को जमींदार गाँव के गरीब मजदूरों को देते थे और बदले में उनसे बेगार करवाते थे। 'पीपुल्स यूनियन फॉर

डेमोक्रेटिक राइट्स' की रिपोर्ट में इस प्रथा के बारे में उल्लेख इस प्रकार मिलता है- "जमींदार अपनी ताकत के बल पर इस गैर-मजरूआ भूमि पर अधिकार करते चले गए। भूमि-रिकार्डों में ऐसी जमीन को गैर-मजरूआ 'ख़ास' कहा जाने लगा। जो भूमि अभी भी सांझी बनी रही, उसे गैर मजरूआ 'आम' का नाम दिया गया। समय बीतने के साथ, जमींदारों ने इस गैर-मजरूआ ख़ास भूमि के टुकड़ों को लगान पर देना भी प्रारंभ कर दिया जिससे ऐसी ज़मीन पर उनका अधिकार और भी दृढ़ होता चला गया बेशक कानूनी रूप से इस भूमि के निपटारे का अधिकार केवल सरकार के पास था। किंतु जमींदारी-प्रथा के अस्तित्व में रहने तक गैर-मजरूआ ख़ास भूमि पर जमींदारों के इस अधिकार को नहीं ललकारा गया।"[18]

कर्मेंदु शिशिर का 'बहुत लंबी राह' उपन्यास इसी प्रकार के एक गैर-मजरूआ भूमिहीन खेतिहर मजदूर की दशा और उसकी समस्या को बयाँ करता है। महादेव महतो का घर चमरटोली में है। महतो सुमेरन मिसिर का बंधुआ है उन्हीं के अनुसार उसे रहना पड़ता है। सुमेरन मिसिर ने उसे अपनी परती जमीन पर बसा दिया। महतो उसी जमीन को पाने की लालच में मिसिर के घर काम करता रहता है और मिसिर जब चाहते तब उसको घर पर काम कराने के लिए बुला लेते। महतो उसी जमीन के लिए मिसिर की कई बार मिन्नतें कर चुका है। किन्तु उन्होंने आज तक दो धुर जमीन भी नहीं दिया- "सितुहा-भर का कलेजा लिए हैं और ऊपर से बड़कवा बन रहे हैं। किसी गतर लाज हया नहीं। आखिर वह उनका खानदानी आदमी ठहरा। उसने बचपन से ही, दो पुहुत की सेवा करते जिनगी गुजार दी। जब बड़का मालिक जवान थे-महतो उनके घर पहली बार चरवाही पर आया था। तब से आज तक पता नहीं कितने साल गुजर गए ? कभी दो बात बोल भी देते तो वह चुपचाप सह लेता ! आज तक आधी जुबान नहीं खोली। जूना-कुजूना जब भी काम करना पड़ता तो आधी रात को भी हाजिर हो जाता।"[19] महतो जिस जमीन के लिए दिन-रात मिसिर की मिन्नतें करता है, असल में तो वह मिसिर की है ही नहीं, वह तो सरकारी भूमि है। लेकिन महतो को इन सबके बारे में कुछ भी नहीं पता है वह तो इसी बात के अहसान से दबा हुआ है कि मिसिर ने उसे अपनी जमीन पर बसाया है। महतो की पूरी जिंदगी मिसिर के घर की सेवा में ही गुजर रही

है। वह जानता है कि चुपचाप रहकर काम करने में ही भलाई है। ऐसे में खाने को अन्न तो मिल रहा है लेकिन मालिक से झूठ बोलने और दुश्मनी लेने का परिणाम क्या है यह भी उसे भलीभांति पता है।

महतो के साथ-साथ उसकी पत्नी और बेटी मिसिर के घर के कामों में हाथ बंटाती हैं जिसके लिए उन्हें कुछ भी मेहनताना नहीं मिलता है। महतो मिसिर के अत्याचारों को चुपचाप सहता है। उसे पता है घर की जमीन से लेकर उसके पशु तक मिसिर के हैं, इसलिए वह उनसे दुश्मनी मोल लेना ठीक नहीं है। जमींदार खेतिहर मजदूर की इसी विवशता का फायदा उठाते हैं, क्योंकि खेतिहर मजदूर भूस्वामी की दया पर ही अपना जीवनयापन करने पर मजबूर होते हैं। वे जमींदारों के बंधुआ होते हैं इसलिए जमींदार उन्हें अन्य मजदूरों की तुलना में कम मजदूरी देते हैं। सामान्यतः खेतिहर मजदूर अपनी समस्या को दूर करने के लिए या अपना पेट भरने के लिए जमींदारों से कर्ज लेते हैं। कर्ज को चुकाने के लिए ही उन्हें अपने आप को जमींदारों के यहाँ बंधक रखना पड़ता है। प्रधान हरिशंकर प्रसाद के अनुसार- "गरीब किसान जिन लोगों से नियमित रूप से कर्ज लेते हैं या जिनकी जमीन बटाई पर या रहने के लिए लेते हैं उनकी जमीन पर काम करने से मिलने वाली मजदूरी अन्य लोगों के खेतों पर उसी तरह का काम करने पर मिलने वाली मजदूरी से हमेशा कम होती है।"[20]

महतो के पास ऐसा कोई रास्ता नहीं है जिस पर चलकर वह मिसिर के अत्याचार से छुटकारा पा सके। महतो का पूरा परिवार खासकर उसकी पत्नी और उसका बेटा मिसिर के अत्याचार सहने को तैयार नहीं है। लेकिन महतो की विवशता ही उसे चुप रहने पर मजबूर करती है। वह जानता है कि यदि मिसिर ने उसे बेघर कर दिया तो वह और उसका परिवार कहाँ जाएंगे। खेतिहर मजदूर सामान्यतः जमींदार द्वारा दी गई भूमि पर रहते हैं और उन्हीं के द्वारा दिए गए खेत एवं मजदूरी पर जीवनयापन करते हैं। वे चाहकर भी जमींदार से अपना पीछा नहीं छुड़ा पाते, क्योंकि देर-सवेर उनको उन्हीं की मदद लेनी पड़ती है। इसलिए चुपचाप उनके अत्याचार सहने के अतिरिक्त उनके पास और कोई रास्ता नहीं होता है। रोडनी हिल्टन के अनुसार- "विनियम अर्थव्यवस्था के हाशिये पर भूस्वामियों और खेतिहर मजदूरों की सापेक्षिक स्थित

काफी भिन्न थी। मजदूर भाग नहीं सकता था, क्योंकि उसके पास भागने की कोई जगह नहीं थी। सही व्यावहारिक दृष्टियों से वह ऐसे स्वामी की दया पर आश्रित था। जिसने शहरी जीवन की निकटता का कोई सांस्कृतिक दबाव कभी महसूस ही नहीं किया हो।"[21]

महतो अपने बेटे विभूति को समझाता है कि वह कोई ऐसा काम न करे जिससे उसे मालिक के कोप का भाजन होना पड़े। गाँव की सारी सरकारी भूमि, बाग-बगीचे और पोखरों पर जमींदार का कब्ज़ा रहता है। वे समाज की निम्न जातियों को उसका उपयोग नहीं करने देते हैं। यही हाल मिसिर का है वे गाँव के पोखर पर अपना कब्ज़ा जमाये हुए हैं। कोई व्यक्ति यदि उसमें से मछली इत्यादि ले आये तो उसे उसकी बहुत कड़ी सजा भुगतनी पड़ती है। महतो अपनी पत्नी को ऐसे ही एक वाकये के बारे में बताता है जब एक व्यक्ति ने मिसिर के खलिहान से अनाज का एक बोझा चोरी कर लिया था। उसके दुष्परिणाम को वह अपनी पत्नी को सुनाते हुए कहता है- "गाँव का चमार होकर सुमेरन मिसिर का बोझा उठा लिया-अब बचा ही क्या ? बहुत बोले, बहुत पीटे। जब अधमरा हो गया तो उसे चमरटोल के लोग टांगकर ले गए। बोझा पकड़ में आ गया था। फिर भी बिचारे की साल-भर की मनी-मजूरी रोक ली। ऊपर से केस में फंसाकर जेहल भिजवाने की धमकी भी दी।"[22] उसके लाख समझाने के बावजूद विभूति तालाब से मछली चुराकर लाता है। महतो विभूति द्वारा लाई गई मछली को हाथ भी नहीं लगाता है। उसे पता है कि मालिक के गाँव लौटने पर उसकी क्या हालत होने वाली है। मालिक के गाँव लौटने पर उसके परिवार की क्या हालत होती है इन पंक्तियों से पता चलता है- "घर के अंदर-बाहर बिना कुछ खाए, बिना कुछ पिये, महतो का परिवार पड़ा हुआ था। किसी को भी नींद नहीं आ रही थी। सभी जगे हुए, कल आने वाली बिपत की ही सोच रहे थे। अभी तक आसमान साफ़ नहीं हुआ था। बाहर-भीतर किसी को नींद नहीं आ रही थी। आज पता नहीं कितनी पहर की अन्हरिया थी ! ।"[23]

महतो रात-भर जिस बिपत्ति के बारे में सोचकर जग रहा था। सुबह होते ही वह उसके दरवाजे पर आ धमकी। मिसिर के भेजे हुए आदमी लाठी लिए सुबह-सुबह उसके घर पहुंच आए। उन्होंने महतो को

फरमान सुना दिया कि जल्द से जल्द अपने बेटे विभूति को लेकर मालिक के घर पहुंच जाए। इसी विपत्ति के डर से महतो ने दो दिन से अन्न का एक दाना भी नहीं ग्रहण किया था। उसे लग रहा है कि उसके दरवाजे पर साक्षात यमदूत आ गए हैं जो उसे और विभूति को ले जाने आये हैं। मिसिर के भेजे हुए आदमी के साथ महतो चला जाता है। तालाब से मछली पकड़ने की कीमत उसे पता थी वह जानता था कि आगे क्या होने वाला है। मिसिर महतो से विभूति के उन साथियों का नाम भी पूछते हैं जिसके साथ मिलकर विभूति ने इस काम को अंजाम दिया था। महतो के कुछ न बताने पर मिसिर ने सीधे अपना फरमान सुना दिया- "अच्छा महतो, हम तुमको कल तक मौका देते हैं। अच्छी तरह सोच लो। अगर नहीं बताए, तो भैंस को मेरे दरवाजे पर पहुंचा देना। फिर हम बाद में तुम्हारे घर-जमीन के बारे में सोचेंगे। एक बात याद रखना-यह पोखर का मामला है। इसे किसी कीमत पर छोड़ूंगा नहीं।"[24] महकू को यह उम्मीद नहीं थी कि मिसिर उससे इस तरह की बात करेंगे।

वह मिसिर के पिता के जमाने से मिसिर के यहाँ पर चरवाही कर रहा है। उस पर भी वह उसके बाप की उम्र का है। हमारे समाज में जमींदारी प्रथा किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के लिए एक अभिशाप की तरह थी। मजदूर के घर के लोग पुश्त-दर-पुश्त जमींदार के यहाँ काम करते थे। एक ने कर्ज लिया तो उसकी कई पीढ़ियाँ उसे चुकाने में चली जाती थी, फिर भी कर्ज खत्म होने का नाम नहीं लेता था। और उनकी कई पीढ़ियाँ जमींदारों की गुलामी करने पर मजबूर रहती थीं। रामशरण शर्मा के अनुसार- "स्वतंत्र किसानों की संख्या घटती जा रही थी और जमींदारियों की संख्या बढ़ती जा रही थी। जमींदार एक ही परिवार में पुश्त-दर-पुश्त रहने लगे और इसमें काम करने वाले गुलाम भी पुश्त-दर-पुश्त उसके साथ रहने लगे।"[25] गाँव वालों के सामने महतो की इतनी बेईज्जती हुई कि उसका सिर शर्म से झुक गया। जिस भैंस को महतो इतने दिनों से पाल-पोस रहा था वह मिसिर के आदेश से वापस ले ली गई। ऊपर से घर-और जमीन से बेदखल होने का एक और डर महतो को सता रहा है। बेबश महतो सोच रहा है- "मालिक ने यह अच्छा नहीं किया है। महतो उस दिन की बात याद करता तो उसकी छाती में बड़ी जोर की हुक उठती।

बताओ भला ! मछली मारने के सुबहा पर भैंस खोलवा कर मंगवा दिया ? जीवन भर का किया धरा, पलक झकपते धो-पोंछकर बराबर कर दिए।"[26]

महतो के जीवनभर की मेहनत के बदले मिसिर ने पूरे गाँव के सामने उसकी बेइज्जती की। महतो गुमसुम सा रहने लगा। वह गाँव के किसी भी आदमी से बात करने में कतराता रहता। अभी तालाब से मछली पकड़ने की बात चल ही रही थी कि उजागिर के साथ मिलकर विभूति ने मिसिर के घर से भैंस चोरी कर ली। सबका शक महतो पर ही गया। मिसिर ने महतो और विभूति के नाम पुलिस में रिपोर्ट भी दाखिल करा दिया। एक बार फिर पूरे गाँव के सामने महतो की पूछताछ शुरू हो गयी- "अरे साला, तेरा बेटा नकसलाइट है, इसीलिए तेरी मेहर का माथा इतना चढ़ा हुआ है।' उसने चनवा की माई को भद्दी सी गाली दी और सटाक-सटाक-दो बेंत जड़ दिए। महतो को लगा-अभी धरती फट जाती, तो वह उसमें समा जाता।.....बोल साला ! किसकी जमीन में रहता है ? तू मालिकाना हक बनाएगा ? दाखिल खारिज कराएगा ?.....साले, एक महीने के भीतर जमीन छोड़ दे, नहीं तो मारते-मारते धोती खराब कर दूंगा। साले, तू रहिला के उस डकैतवा के बल पर भौंक रहा है ?।"[27]

आज पूरे गाँव के सामने महतो को पुलिस की मार सहनी पड़ी। वह तो हमेशा से विभूति को समझाता रहा कि वह मालिक से बैर न ले। महतो को पता है कि वह मजदूर है उसका अपना कुछ नहीं है जो कुछ भी है सब मालिक का ही है कभी भी घर और जमीन से बेदखल कर देंगे तो वह कहाँ जाएगा। विभूति उसकी कहाँ सुनने वाला है। सारी विपत्ति तालाब की मछली पकड़ने से ही आई है। महतो को पुलिस की मार पड़ी, उसकी बेटी चनवा को घर से दूर भेजना पड़ा और विभूति की तो जिंदगी ही बदल गई वह गाँव छोड़कर नक्सल दल में शामिल हो गया।

इन सबके बावजूद उन पर अत्याचार यहीं नहीं समाप्त होता है। महतो के खिलाफ तरह-तरह की साजिशें मिसिर रच रहे हैं लेकिन गरीब महतो इन सब बातों से अनजान है। एक दिन रात को जब विभूति सबसे छुपकर अपने घर आता है, तो मिसिर ने पहले से ही उसके घर पर पुलिस तैनात कर रखी थी।

विभूति भी पकड़ लिया गया- "इतनी बात तो साफ़ है कि विभूतिया को अपने ही घर में घेर, पुलिस पकड़कर ले गई। पीछे से मुसुक बांधकर कमर में रस्सा लगा, राता-राती ही लेकर चली गई। तब जाकर लोगों को मुखिया की चाल समझ में आई है। उनकी दरोगा से कब कानों-कान बात हुई-इसकी भनक रजेसर लाल को भी नहीं थी।"[28] तालाब से मछली पकड़ने की बहुत बड़ी सजा महतो को मिलती है। उनका घर-जमीन, बेटा-बेटी सब उससे दूर हो जाते हैं।

खेतिहर मजदूर सिर्फ किसानों के खेत में काम करता है। उसका काम सिर्फ मेहनत करना ही है। फसल कितनी भी अच्छी हो जाए इससे उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होता है। उसे अपने परिवार का पेट भरने को अन्न मिल जाए उसके लिए इतना ही बहुत है। 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास का अघोघ खेत में काम करते हुए किसान से पूछता है- "चचा, इस बार फसल बहुत अच्छी दिख रही है। बहुत मेहनत कर रहे हैं आप।"

"हाँ बेटा ! मेहनत तो कर रहे हैं। लेकिन फसल के अच्छे होने से हमारी जिन्दगी में कोई बदलाव नहीं आने वाला।"

क्यों चचा ?

यह फसल हमारा घर नहीं, बल्कि जिसका खेत है, उसका घर भरेगी। हमारा तो बस पेट भर जाये, इतना भी कम नहीं।"[29] किसान तो सिर्फ जमीन का मालिक होता है। देखा जाए तो फसल का असल हकदार तो खेतिहर को होना चाहिए, लेकिन ऐसा होता नहीं है। खेतिहर मजदूर के भाग्य में तो शोषित होना ही है। सूर्यनाथ सिंह के 'चलती चाकी' उपन्यास में भी निशांत खेत में काम करते मजदूर से पूछते हैं- "कितनी कमाई हो जाती है खेती से, अंदाजन ?"

"हामरा तो मजूर। खेत आछे ना। जोतदार मालिक का आछे। हामरा मजूर। काम करता, मजूरी से पेट भरता।"

निशांत फिर बोलते हैं "कितनी मजदूरी मिल जाती है दिन भर की ? दिहाड़ी पर करते हैं या महीने की तनख्वाह पर ?"

हामरा तो रोज काम करता। साल का मजूरी मिलता। चौदह मन अनाज।

बच्चों का पालन-पोषण कैसे होता है ?

ऊ भी काम करता। मालिक के घर में चरवाही हाय। गाय-गोरु को खिलाता-पिलाता, मालिक की सेवा करता हाय।"[30] किसान के खेत में काम करने की मजदूरी सिर्फ खेतिहर मजदूर को मिलती है, लेकिन काम उसका पूरा परिवार करता है। कभी किसान के खेत में काम करता है तो कभी उसके घर पर बेगारी करता है। खेती से उसका केवल पेट का संबंध है, जमीन से नहीं।

4.2 खेतिहर मजदूर जीवन : बेरोजगारी और पलायन

पूंजीवाद की नई नीतियां आने के कारण ग्रामीण क्षेत्र से खेतिहर मजदूरों का तेजी से पलायन हो रहा है। काम की तलाश में मजदूर शहर में भटकने को मजबूर हैं। शहरों में बढ़ती भीड़ को देखकर लगता है कि देश बहुत उन्नति कर रहा है, जबकि हकीकत कुछ और ही है। मजदूर काम की तलाश में शहर तो जाते हैं लेकिन उन्हें निराशा ही हाथ लगती है। खेतिहर मजदूर को वर्षभर काम नहीं मिल पाता, यही उनकी समस्या की मूल जड़ है। महाश्वेता देवी के अनुसार- "खेतिहर मजदूर का काम मौसमी होता है। अधिकांश स्थानों में खेत बोने और काटने का काम वर्ष में एक बार होता था। मजदूरों के पास कर्ज लेने के अलावा और कोई चारा नहीं था। लाखों लोग केवल कर्ज के बल पर अपनी गाड़ी चलाते थे। कर्ज के साथ-साथ उनकी जिन्दगी में अपमान ने भी प्रवेश किया।"[31]

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास का हेमराज शहर में काम करने जाता है। जब वह शहर से लौटकर आता है तो लोगों को लगता है कि शहर में वह बहुत अच्छी जिन्दगी व्यतीत कर रहा है। हेमराज को पता है कि वह वहां कैसा जीवन व्यतीत कर रहा है। जब नारायण उससे उसकी पत्नी और

बच्चों को भी शहर ले जाने को कहता है तब वह नारायण को शहर की सच्चाई बताता है- "साथ ले जाऊं तो रखूँगा कहाँ ? पतरे की एक छोटी सी खोली है। उसमें हम तीन लोग रहते हैं। खोली भी शहर में नहीं बाहर गंदे नाले के किनारे बनी है।.....बरसात में नाले का पानी खोली में घुस जाता है। गर्मी में तो हाल और भी बुरा है। खोली में जाओ तो बफाओ। बाहर जाओ तो बास के मारे जान निकल जाए। और मच्छर.....मच्छर इत्ते की सवेरे तक पूरा शरीर सुजा दे। ऐसी खोली का किराया हजार रूपये है। सवेरे जल्दी उठकर दस किलोमीटर साइकिल से फेकटरी जाता हूँ। महीने भर गधा हम्माली के बाद चार हजार मिलते हैं। किसी दिन काम पर नहीं जा पाओ तो उस दिन के पैसे कट जाते हैं। शहर में दिहाड़ी मजूर की कोई गत नहीं है दादा। अब यदि सबको ले जाऊं तो रहने के लिए हजार रूपए महीने की तो खोली ही लेनी पड़ेगी। फिर बचे तीन हजार में रोटी पानी, कपड़े लत्ते, दवा दारु। नहीं पूरा पड़ सकता दादा।"[32] हेमराज की बात सुनकर नारायण शहर की सच्चाई को समझ पाता है।

गाँव से मजदूर शहर जाते तो हैं, लेकिन उन्हें वहां पर भी सुकून का काम नहीं मिलता। उन्हें शहर में कितनी भी कठिनाइयों का सामना क्यों न करना पड़े, लेकिन वे गाँव वापस नहीं आना चाहते हैं क्योंकि शहर में उन्हें रोज काम तो मिल जाता है। शहर में मजदूरी करके वे अपना और अपने परिवार का पेट तो पाल सकते हैं। गाँव में तो रोज काम ही नहीं मिलता। सामान्यतः मजदूर गाँव से पलायन मजदूरी करने के लिए करता है। किंतु वह जब अपना गाँव छोड़ता है तो उसे अपनी पीढ़ियों की परंपरा और स्वयं अपनी भावनावों की बलि भी देनी पड़ती है।

शहर में वह मनुष्य न रहकर एक मशीन की भांति हो जाता है। जिसका कोई वजूद ही नहीं होता है। शिवाजी राय के अनुसार- "देश और समाज के निर्माण में सर्वाधिक योगदान करने वाले पलायित मजदूर मेट्रो शहरों में गंदे नालों के किनारे छोटी-छोटी झुग्गियों में बड़ी संख्या में रहते हैं जहाँ सांस लेना मुश्किल होता है। वहां स्वच्छ वातावरण के अभाव में टीबी और कैंसर जैसी गंभीर बीमारियों का शिकार होते हैं। मेट्रो महानगरों में गगनचुंबी टावरों और बंगलों का अंबार लगा हुआ है। लाखों की संख्या में

मकान खाली है। बड़ी सड़क के किनारे फुटपाथ पर सोने के लिए लोगों को जगह कब्ज़ा करना पड़ता है।"[33]

हेमराज के मुंह से शहर के जीवन की सारी सच्चाई सुनने के बाद भी नारायण गाँव छोड़कर शहर जाना चाहता है। उसे पता है कि शहर में कितनी भी कठिनाइयों का सामना क्यों न करना पड़े वहां काम तो मिलेगा किंतु गाँव में तो बेरोजगार ही रहना पड़ेगा। उसकी पत्नी कमला मन से तो नहीं चाहती कि नारायण शहर मजदूरी करने जाए, लेकिन परिस्थिति के आगे वह भी हार गई है- "देहरी में खड़ी कमला चुपचाप नारायण को सामान समेटते देख रही थी। उसका मन हो रहा था वह नारायण से कहे मत जाओ। यहीं गाँव में ही मेहनत मजूरी कर के जिंदगी काट लेंगे। किसी तरह भी दो रोटी का जुगाड़ तो जम ही जाएगा, लेकिन वह भी बदलते समय को देख रही थी। वह समझ रही थी कि अब सब कुछ आसान नहीं रह गया है। पेट भरना है तो गाँव छोड़ना ही पड़ेगा।"[34]

गाँव से जो खेतिहर मजदूर शहर जाते हैं उनमें से अधिकांश अकुशल एवं अस्थाई मजदूर होते हैं। ये उद्योग जगत के लिए बहुत फायदेमंद होते हैं। इनसे कम वेतन में अधिक काम लिया जाता है। शहर की कंपनियां और बंगले की चमक सिर्फ देखने में ही अच्छी होती हैं। मजदूर उन्हें सिर्फ़ देख ही सकता है असल में उसका क्या सुख है ये उसे नहीं पता। वे सिर्फ पूंजीपतियों के लिए अपना श्रम खपा सकते हैं। शिवाजी राय के अनुसार- "देश में विकास का जो ढांचा दिखाई दे रहा है उसके लिए श्रम के लिहाज से खून पसीना बहाने में सबसे ज्यादा योगदान इन पलायित मजदूरों का है जो देश बनाने का जज्बा लेकर मेट्रो शहरों के गली कूचों में भटकते हुए आपको मिल जाएंगे। चाहे बात अवस्थापना विकास की हो, रेलवे दूरसंचार की हो या आयात निर्यात आत्मनिर्भरता की।"[35] सच तो यह है कि खेतिहर मजदूर गाँव में काम न मिलने पर शहर जाते हैं किंतु वहां भी उनकी जिंदगी नरक के समान ही होती है।

हेमराज गाँव के युवाओं के सामने शहर के उस पक्ष को ही रखता है जो लुभावना होता है। जब नारायण भी उसके साथ शहर जाने की बात करता है तब वह अपने वास्तविक जीवन के बारे में बताता है।

हेमराज नारायण से कहता है- "मैं लड़कों से झूठ नहीं कह रहा था दादा। शहर की वो भी सच्चाई है पर वो हमारे लिए नहीं है। हमारा काम तो बस इतना है कि मेहनत मजूरी करके पैसे वालों के लिए स्वर्ग तैयार करना। हम उस स्वर्ग में घुस नहीं सकते। वो लोग हमें एक मिनिट बर्दाश्त नहीं कर सकते। काम होते ही हड़का कर भगा देते हैं। जैसे हम मनख नहीं कुत्ता-बिल्ली हों। हमारी किस्मत तो बस इतनी है कि अपनी मेहनत से पैसे वालों के लिए स्वर्ग तैयार करना और खुद उनके बनाए नर्क में सड़ना।"[36] खेत-मजदूर जब अपना घर गांव छोड़कर शहर की तरफ पलायन करता है, तो उसके दिमाग में शहर के प्रति तमाम अच्छाइयां रहती हैं। किंतु जब वह शहर का जीवन जीने लगता है, तब जाकर वहां की सच्चाइयों से रूबरू होता है।

शहर में मजदूर का जीवन बहुत ही पीड़ादायक होता है। वह एक तरह से शहर के नारकीय जीवन को जीता है। जहां की मलिन बस्तियों में एक ही साथ कई मजदूर रहते हैं। वहां वे अनेक बीमारियों का शिकार होते हैं। पैसे के अभाव में न तो उन्हें अच्छा भोजन मिल पाता है, न ही उनका स्वास्थ्य अच्छा रह जाता है। मजदूरों को शहर में कम मजदूरी में अधिक काम करना पड़ता है। वेतन युक्त काम के साथ-साथ उनसे बेगार भी करवायी जाती है। काम से निकाले जाने के डर से मजदूर बेगार करने को मजबूर होते हैं। उनसे क्षमता से अधिक काम लिया जाता है। क्षमता से अधिक काम का बोझ करने में जब वे असमर्थ हो जाते हैं, तो मजबूरन वे नशीली दवाओं का सेवन करने लगते हैं। जिससे उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है। समय से पहले ही बुढ़ापा और कैंसर जैसी भयावह बीमारी का शिकार होने लगते हैं। धीरेन्द्र झा के अनुसार- "पलायन की पीड़ा इतनी भयावह है कि जवान होने से पहले नाबालिग बच्चे कमाने के लिए बाहर जाने को मजबूर हो रहे हैं। मजदूरों की बस्तियों में बूढ़ों, महिलाओं व बच्चों के सिवा किसी के पदचिह्न नहीं मिलते। इसने कई तरह के पारिवारिक सांस्कृतिक विखंडन के बीज बोए हैं। स्वास्थ्य सेवाओं की खस्ता हालत और तेजी से होते निजीकरण ने इनकी जीवन-स्थिति को और नारकीय बना दिया है। गाँव से बाहर जाकर मजदूर पैसे तो जरूर लाते हैं, इसके साथ कई बीमारियों का भी आयात बड़े पैमाने पर

कर रहे हैं। इन इलाकों में एड्स जैसी बीमारी का बढ़ता प्रकोप विस्फोटक रूप ग्रहण कर रहा है और नशा सेवन की प्रवृत्ति में बेतहाशा वृद्धि हो रही है। कालाजार, मलेरिया, डेंगू, मस्तिष्क ज्वर जैसी बीमारियों के बढ़ते प्रकोप से बचाने के लिए इन मजदूर बस्तियों-मजदूर परिवारों के लिए स्वास्थ्य सुविधाएँ नदारद हैं।"[37]

नारायण काम की तलाश में शहर तो गया लेकिन बहुत तलाशने के बाद उसे चौकीदार का काम मिला था। वह भी तीन हजार रुपये की पगार पर। वह रात-भर चौकीदार का काम करता और दिन में उसे बेगार करनी पड़ती। दिन में उसे गोदाम में आने-जाने वाली गाड़ियों के लिए गेट खोलना और दवाइयों के भारी-भारी बक्से उतरवाने का काम करना पड़ता जिसकी उसे कोई पगार नहीं मिलती है। इतना सब करने के बाद भी वह छुट्टी मांगे तो सक्सेना छुट्टी भी नहीं देते उल्टा फटकार लगा देते हैं- "तुम लोगों की यही प्रोब्लम है, नौकरी मिलते ही गाँव जाने के लिए छुट्टी चाहिए। छुट्टी नहीं मिलेगी। जाना है तो हमेशा के लिए जाओ।"[38]

नारायण शहर जाता है मजदूरी करने के लिए लेकिन मेहनत करने के साथ-साथ उसे और भी लत लग जाती है। काम के अत्यधिक बोझ के कारण उसे नशे की आदत लग जाती है। शहर में उसे रात में चौकीदार का काम करना पड़ता है। नींद से बचने के लिए वह बीड़ी पीना शुरू कर देता है। दिन में बेगार करना पड़ता है। रात-भर जगने से दिन में वह काम करने लायक नहीं रह जाता है। एक बार दिन में गोदाम में गाड़ी आई उसे सामान उतरवाने के लिए कहा जाता है। लेकिन वह इतना थक चुका था कि उसकी हिम्मत नहीं हो पाती कि वह जाए और सामान उतरवाये।

एक मजदूर का जीवन कैसा होता है यह नारायण ही जानता है। 'नांतेस' के एक चिकित्सक ने 1825 में मजदूर के जीवन का यर्थाथ इन पंक्तियों में व्यक्त किया है- "उसके लिए जीने का मतलब है नहीं मरना। रोटी का टुकड़ा और शराब की बोतल से ज्यादा वह कुछ नहीं मांगता, किसी चीज की उम्मीद नहीं करता। रोटी उसके और उसके परिवार के पोषण के लिए शराब, क्षण भर के लिए उसकी पीड़ा से राहत

के लिए जरूरी समझी जाती है।.....चौदह घंटों तक पसीना बहाने के बाद वह घर लौटकर कपड़े नहीं बदलता क्योंकि उसके पास बदलने के लिए कपड़े नहीं होते हैं।"[39] रातभर जगने और उचित भोजन और निवास के अभाव में मजदूर इस लायक नहीं रह जाते कि वे बेगार भी कर सके। लेकिन काम छूटने के डर से वे किसी भी तरह काम करने पर मजबूर होते हैं। यही हालत नारायण की भी है वह किसी तरह से सामान उतरवाकर खोली में पंहुचता है। उसकी हालत देखकर जलाराम ने उसे एक गोली खाने को दी। गोली खाते ही नारायण के शरीर की सारी थकान दूर हो गई। नारायण अब रोज उस गोली का सेवन करने लगा। उसे यह नहीं पता है कि यह किस चीज की दवा है। जलाराम ने उसे डिब्बी देते हुए सिर्फ इतना कहा था कि- "रख ले.....हम गरीबों के दुःख-दर्द की रामबाण है यह काली गोली। रोज सुबह एक गटक लो और दिन भर तन तनाट काम करो।"[40] जब दवा खत्म हो जाती है तो वह एक दवा की दुकान पर जाता है, जहाँ पर उसे पता चलता है कि यह दवा नहीं अफीम है। तब जलाराम उसे समझाते हुए कहता है- "दवाई की दुकान वाले अफीम नहीं रखते नारायण भाई। मैं अपने लिए लेने जाऊंगा तो तुम्हारे लिए भी ला दूंगा।"[41]

हेमराज के साथ नारायण काम ढूढ़ने शहर जाता है। हेमराज और नारायण को देखकर गाँव के दूसरे लोग भी शहर जाना चाहते हैं, क्योंकि उन्हें शहर की सच्चाई के बारे में कुछ नहीं पता है। नारायण और हेमराज गाँव से किसी भी मजदूर को शहर नहीं ले जाना चाहते हैं। युनुस चाहता है कि वह अपने बड़े बेटे को शहर भेज दे ताकि वह वहां जाकर कुछ काम कर सके जिससे उसकी मदद हो सके। नारायण युनुस को समझाते हुए कहता है- "युनुस भाई, शहर में छोरा हम्माली करते-करते जवान होने से पहले ही बूढ़ा हो जाएगा।"[42] गाँव से कोई भी खेतिहर मजदूर अपनी खुशी से शहर नहीं जाना चाहता है लेकिन जब गाँव में गुजारा नहीं हो पाता है तब वह शहर जाता है। रणजीत दासगुप्त के शब्दों में- "ग्रामीण अर्थव्यवस्था में पर्याप्त रोजगार पाने में असमर्थ तबाह हो चुके दस्तकार (हस्तशिल्पी), मजदूर जिन्हें

पर्याप्त रोजगार नहीं उपलब्ध है .....खेतिहर अर्थव्यवस्था में हो रहे परिवर्तनों से अस्त-व्यस्त हो चुके खेतिहर और अकुशल व्यक्ति जूट मीलों में कार्यरत कामगारों का बहुमत थे।"[43]

सूर्यनाथ सिंह के 'चलती चाकी' उपन्यास के निशांत खेत में काम कर रहे मजदूर से पूछते हैं- "आप जैसे कितने लोग इस तरह गुजर-बसर करते हैं ?" काफी हाय। मालिक तो कम आछे। मजूर काफी आछे। बहोत लोग बाहर देस गया।"[44] हमारे देश में दिन-प्रतिदिन मजदूरों की संख्या बढ़ती ही जा रही है, लेकिन उनके पास काम नहीं है। मजदूरी की तलाश में उन्हें दर-ब-दर भटकना पड़ता है। गाँव में भी उन्हें प्रतिदिन काम नहीं मिलता और शहर जाने पर उन्हें कई तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, फिर भी उन्हें अपना पेट भरने के लिए शहर का रास्ता ही देखना पड़ता है।

राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास का सीताराम शहर जाकर फैक्ट्री में काम करता है। एक दिन डूमणू को कहीं से पता चलता है कि सरकार ने प्लास्टिक के थैलों पर रोक लगा दी है। डूमणू जिस कारखाने में काम करता था वह प्लास्टिक की फैक्ट्री अब बंद हो जाएगी। डूमणू चिंता व्यक्त करते हुए कहता है कि फैक्ट्री बंद हो गई तो हमारी नौकरी भी चली जायेगी। सीताराम तो मन ही मन खुश होता है क्योंकि उसके लिए यहाँ का जीवन बड़ा ही कष्टप्रद है। लेकिन डूमणू चिंतित होकर सीताराम से कहता है- "भंगड़ा, तू बातें करता हिया सौदाईयों वाली। संतू गलत तो न बोल रया है, जे गरचे फैक्ट्री बंद हो गई तो लगी लगाई कार छूटेगी कि नईं। चार पैसे आने की आमदनी बंद होगी कि नईं। जरा बोल तो। बड्डा आया तू बात-बात में मान धरम का लोटा चकवाने को त्यार बैठा हिया। भाऊआ, जे ईक बार को लगी लगाई कार छूटी, तो उसके बाद दूसरा काम इतना आसानी से मिलने वाला हुआ भला ! इधर एक फैक्ट्री से छूटे मजदूरों को दूसरी वाले नईं रखते। गाँव जाकर स्वाह काम न मिलेगा।"[45] डूमणू सोचता है कि यदि फैक्ट्री बंद हो गई तो उसकी आमदनी भी बंद हो जाएगी फिर वह अपना और अपने परिवार का पेट कैसे पालेगा। गाँव में तो कोई काम मिलने से रहा। वह सोचता है कि सरकार को क्या जरूरत है। फैक्ट्री बंद

करने की, हमसे हमारा काम छीनने की। जब सरकार हमें काम दे नहीं सकती तो उसे हमसे काम छीनने का भी कोई हक़ नहीं है।

एम.एम.चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास का फतह जो काम की तलाश में शहर जाता है और वहीं का होकर रह जाता है। समय का फेर 23 साल बाद वह फैक्ट्री भी बंद हो गई जिसमें फतह काम करता था। जिस तरह वह मजबूर होकर काम करने के लिए शहर जाता है उसी तरह मजबूरी में उसे शहर छोड़कर गाँव आना पड़ता है। वह अब गाँव में ही मजदूरी का काम ढूढने की कोशिश करता है।

वह कहता है कि बल्ली भाई मैं शहर जाने से पहले भी मजदूर था अब भी मजदूर ही हूँ। बल्ली उसकी बातों का उत्तर देते हुए कहता है- "हाँ, फतह ! तू ठीक कह रहा है। वो ज़माना ही दूसरा था, जब तुम इस गाँव से बाहर कमाने गए थे। उस समय नेहरु मॉडल की आंधी थी। तुम्हारे जैसे न जाने कितने लोगों का गाँव छुड़वा दिया। वरना तुम 23 साल मजदूरी न कर पाते।"[46] फतह मजबूरी में शहर से वापस गाँव तो आ जाता है लेकिन उसके पास करने को कोई काम नहीं रहता है। वह और उसकी पत्नी इसी चिंता में लगे हैं कि किस तरह से जीवनयापन होगा। फतह गाँव में कुछ दिन ही रहने के लिए आया है। जिस मिल में वह काम करता था उसमें उसके पैसे बचे हुए हैं, वह सोचता है कि मिल से पैसे मिलते ही वह शहर वापस चला जाएगा। जब तक फतह गाँव में है तब तक वह और उसकी पत्नी किसी के घर जाकर मजदूरी करने की सोचते हैं। किसी तरह से फतह को बल्ली के घर काम करने को मिल जाता है। फतह अपनी पत्नी से कहता- "सुनो ! तुम्हें बल्ली के घर जाने की जरूरत नहीं पड़ेगी, मुझे बल्ली के यहाँ काम मिल गया है। बल्ली ने कहा है, शहर से वापस आकर बटाई पर एक भैंस दे दूंगा। तुम उसके पीछे लगी रहना, खूब टहल। बाकी ये मुसीबत के दिन ज्यादा नहीं है। जल्द ही मिल से पैसा मिल जाएगा और हम परिवार सहित शहर में चले जायेंगे।"[47] खेतिहर मजदूर के जीवन में हमेशा समस्याएं रहती हैं अपनी इन्हीं समस्याओं से निजात पाने के लिए ही वह कभी गाँव से शहर से पलायन करता है तो कभी शहर से

थक-हारकर या मजबूरी में अपने गाँव वापस आता है। लेकिन उसकी समस्याएं वैसी ही बनी रहती हैं। उन्हीं समस्याओं के साथ उसे जीना पड़ता है।

खेती में कम मुनाफे एवं शहरों की तरफ बढ़ते पलायन के कारण ही खेती-किसानी का काम दिन-प्रतिदिन कठिन होता जा रहा है। स्थिति यह उत्पन्न हो रही है कि किसानों को खेतों में काम करने के लिए मजदूर मिलना मुश्किल हो रहा है। यदि हम ग्रामीण क्षेत्र के मजदूरों की बात करें तो उनको आज भी खेत में काम करने के लिए 60 से 70 रुपए प्रतिदिन की मजदूरी दी जाती है। आज के इस महंगाई के दौर में 60 से 70 रूपए में पूरे परिवार का जीवनयापन करना बहुत ही मुश्किल काम है। ऐसे में उनके लिए शहर जाकर प्रतिदिन काम करना ज्यादा सुविधाजनक होता है। धीरेन्द्र झा के अनुसार- "विश्व व्यापार नियंत्रित भारतीय कृषि नीति ने जिस संकट को पैदा किया है, उसकी सबसे ज्यादा मार गाँव के खेत मजदूरों पर पड़ रही है। कृषि क्षेत्र में रोजगार के अवसरों में बेतहाशा कमी आई है। रोजगार के लिए मजदूरों का पलायन बड़े पैमाने पर हो रहा है। विकसित कृषि इलाकों तथा गैर कृषि क्षेत्रों में अमानवीय जीवन में उन्हें रोजगार तो मिल जा रहा है, लेकिन मजदूरी के दर में गिरावट आ रही है।"[48]

मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास का कुलराखन अपने पिता बलेसर को कृषि कार्य में आने वाली कठिनाइयों के बारे में बताता है- "पिता जी कृषि-कार्य के लिए अब पहले जैसे मजदूर नहीं मिलते। खेती की अपेक्षा अन्य कार्यों में वे चले जाते हैं। अब खेती की सीमित आय से उनकी पोसाई (गुजर-बसर) सम्भव नहीं।"[49] दिन-प्रतिदिन गाँव में खेत मजदूरों की संख्या निरंतर घटती जा रही है। एक ऐसा भी समय था जब खेती के काम के लिए आसानी से मजदूर मिल जाते थे।

खेतिहर मजदूर के पास या तो जमीन होती ही नहीं है या होती है तो बहुत कम। मजदूर गाँव में ही अपने परिवार के साथ सब्जी का व्यवसाय, पशुपालन आदि करके अपना जीवनयापन कर लेते थे, किंतु अब परिस्थितियां बदल गई हैं। गाँव में खेतिहर मजदूर के पास पर्याप्त काम नहीं है जिसके कारण उन्हें शहर की ओर पलायन करना पड़ता है। इस सब की वजह से खेतिहर मजदूर सरकार द्वारा मजदूरों के लिए

चलाई गई 'मनरेगा' में कृषि-कार्य से ज्यादा रुचि लेते हैं क्योंकि उसमें 100 दिन काम मिलने की गारंटी तो रहती है। खेतिहर-मजदूरों के पलायन के कारण कृषि-संकट उत्पन्न हो रहा है क्योंकि बिना खेतिहर-मजदूर के सहयोग के किसानों के लिए खेती करना कठिन काम है।

मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास का मनराखन बलेसर को समझाते हुए कहता है- "गाँवों के खेत-मजदूर जिस तेजी से शहर की ओर भाग रहे हैं कि खेती में सहयोग के लिए वे रहेंगे ही नहीं.....। हमारे मित्र बताते हैं कि कई गाँवों में मजदूरों के अभाव में अनेक किसानों के खेत परती रह रहे हैं।"[50] खेतिहर मजदूरों के पलायन का मुख्य कारण गाँव में काम का अभाव होना मुख्य है। खेती का काम मौसम के अनुसार होता है। इसलिए मजदूरों को काम तभी मिल पाता है जब खेत में काम हो। ज्यादातर मजदूरों को साल में चार महीने से ज्यादा खेती में काम नहीं मिल पाता है।

मजदूरों को काम देने के उद्देश्य से सरकार द्वारा 'मनरेगा'योजना चलाई गई किन्तु उसमें भी किसी गाँव में मजदूरों को 100 दिन का काम नहीं दिया जाता है। काम तो किसी तरह से मिल भी जाए, किन्तु उन्हें मजदूरी मिलने में दो महीने से अधिक का समय लग जाता है। जाहिर सी बात है कि जिस परिवार का गुजारा प्रतिदिन की मजदूरी से होता हो उसे समय पर मजदूरी न मिले तो उसकी जीविका कैसे चलेगी। इसी कारण से खेतिहर मजदूरों की स्थिति अत्यन्त दयनीय बनी हुई है।

इक्कीसवीं सदी में महिलाएं अपने परिवार के भरण-पोषण करने में अपनी महत्ती भूमिका निभाती हैं। गाँव में काम के अभाव में उन्हें मजबूरीवश शहर की पलायन करना पड़ता है। शहरों में महिलाओं का हर तरह से शोषण होता है। शहर की कंपनियों और ईट-भट्ठों आदि में कार्यरत कामगर महिलाओं का जीवन बहुत ही दर्द भरा होता है। आये दिन इनके साथ मिल मालिकों एवं ईट-भट्टों आदि पर कार्यरत अधिकारियों द्वारा महिलाओं के शारीरिक शोषण किए जाने की घटनाएं सामने आती हैं। किंतु पेट पालने के लिए ये अपना घर-बार छोड़कर शहर में यातनाएं सहने के लिए मजबूर हैं। हमारे देश में सरकारी कागजों में महिलाओं को तमाम तरह के अधिकार देने की बातें कही गई हैं, किंतु ऐसा कोई क़ानून अभी तक नहीं

लागू हुआ है जो लैंगिक असमानता को मिटा पाया हो। महिलाएं शारीरिक या मानसिक रूप से कितना भी परिश्रम कर लें किंतु उन्हें पुरुषों के बराबर पारिश्रमिक नहीं मिलता है- "जो संगठन या व्यक्ति इसी व्यवस्था के भीतर नारी-मुक्ति का स्वप्न देखते हैं वो पूंजीवाद के उन कारकों को नहीं देख पाते जो लैंगिक असमानता और स्त्रियों की गुलामी को बल देते हैं। वे कभी भी मजबूर महिलाओं के साथ कार्यस्थलों पर हुए यौन-उत्पीड़न पर आवाज नहीं उठाते। महिला मजदूरों को पुरुषों के बराबर काम करने पर भी पुरुषों से कम मजदूरी मिलती है और उसे सबसे निचली कोटि की उजरती गुलाम के रूप में खटाया जाता है।"[51] खेतिहर मजदूर की महिलाएं पुरुषों के काम में बराबर हाथ बंटाती हैं किन्तु इसके बदले न तो उन्हें पुरुषों के बराबर मजदूरी मिलती है न ही सम्मान। गाँव में प्रतिदिन महिलाओं को भी काम नहीं मिल पाता इससे उन्हें परेशानियों का सामना करना पड़ता है। इसलिए मजबूरन उन्हें शहर का रास्ता देखना पड़ता है। शहर में भी उनका जीवन कम दुखदायी नहीं होता है लेकिन उनकी मजबूरी के सामने उन्हें अपना दुःख नहीं दिखाई देता है। जिन समस्याओं से बचने के लिए मजदूर गाँव से शहर जाता है वही समस्याएं उन्हें शहर में भी मिलती हैं किन्तु उनका रूप बदल जाता है। शहर में उनके सामने सबसे पहले तो निवास की समस्या उत्पन्न होती है। गाँव में उनके पास अपना घर होता है किन्तु शहर में उनके रहने की उचित व्यवस्था नहीं होती है। उन्हें झुग्गी झोपड़ियों में अपना निवास स्थान बनाना पड़ता है। शहर में मजदूरों को मलिन बस्तियों में रहना पड़ता है। उन्हें इतनी मजदूरी तो मिलती नहीं कि वे वहां अच्छी तरह से रह सकें और खा सकें। रुखा-सूखा खाकर उन्हें शहर की फैक्ट्रियों में काम करना पड़ता है, इसलिए वे जल्द ही किसी न किसी रोग के शिकार हो जाते हैं।

4.3 भूमि समस्या से जूझता खेतिहर मजदूर वर्ग

भारत में भूमि संपत्ति का विवरण हमें सिंधु सभ्यता से ही देखने को मिलता है। किंतु तब व्यवस्थित रूप से कृषि करने का साक्ष्य कहीं नहीं मिलता। आर्यों के आगमन के पश्चात ही व्यवस्थित रूप से खेती और पशुपालन करने के साक्ष्य मिलते हैं। इरफान हबीब के अनुसार- "घोड़े को पालतू बनाकर आर्यों ने

तीव्र गति प्राप्त कर ली थी। वे पशुपालन करते थे। गाय और मवेशी उनकी नजरों में धन का मुख्य रूप थे। वे खेती और चरवाही साथ-साथ करते थे और हल का उपयोग करना जानते थे। फिर भी आरंभ में वे केवल जौ और कुछ अन्य अनाज उपजाते थे।"[52]

आर्य सभ्यता के आरंभिक दौर में भूमि का खेतों के रूप में विभाजन देखने को मिलता है। जिस पर स्वयं खेतों के मालिक काम करते थे जिन्हें तब किसान कहा जाता था। उत्तर वैदिक काल जिन्हें आर्यों के विस्तार का दौर कहा जाता है। उत्तर वैदिक काल में ही जंगलों को काटकर कृषि के लिए उपयोगी बनाने का कार्य शुरू हो गया और चावल आदि की खेती प्रारंभ हो गई। तभी से अत्यधिक भूमि के मालिक को धनवान माना जाने लगा और वही भूमि के मालिक के पास ऐसे अधिकार आ गए जो अपने अंतर्गत खेतिहर मजदूरों को रख सकते थे जिनसे वे खेती एवं मवेशी आदि पालने का काम करवाते थे। तभी से हमें यह देखने को मिलता है कि भूमिहीनता खेतिहर मजदूरों के जन्म का कारण है। इरफान हबीब के अनुसार- "पहली बार खेतों को धन सूचक के रूप में गिना जाने लगा। भारी हल होने के कारण खेती निश्चित तौर पर उन लोगों के हाथों में रही होगी जिनके पास अनेक मवेशी और कृषिदास होते होंगे। कीथ ने सुझाव दिया है कि- "अपने खेतों पर काम करने वाले रियायों की जगह अपने खेतों में कृषिदासों से काम कराने वाले जमीन-मालिक ले रहे थे।"[53] खेतिहर मजदूरों के समक्ष सबसे बड़ी समस्या भूमि की है। उनके पास खेती करने के लिए पर्याप्त जमीन ही नहीं होती है जिस पर अन्न उपजा कर वह अपना और अपने परिवार का पेट पाल सके। शायद इसी कारण से उन्हें विभिन्न कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। भारत में भूमि के बड़े भू-भाग पर भूस्वामियों का ही कब्ज़ा है। वे स्वयं खेती न करके खेतिहर मजदूरों से खेती करवाते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात भूमि सुधार के जो भी कदम उठाये गए उसके परिणाम आशाजनक नहीं रहे हैं। सरकार या तो उन्हें लागू नहीं कर पाई या यों कहें कि बड़े-बड़े भूस्वामियों ने उन्हें लागू ही नहीं होने दिया। ये नीतियां सिर्फ सरकारी कागजों तक ही सिमट कर रह गईं। पूरनचन्द्र जोशी के अनुसार- "स्वतंत्रता से अब तक, भूमि सुधार के लिए अनेक कदम उठाए गए हैं जिनमें जमींदारी विनाश करके

बटाईदारों को भूस्वामित्व अधिकार देने, हदबंदी और अतिरिक्त भूमि का भूमिहीनों में वितरण सरकारी और भूदान जमीन का वितरण आदि शामिल हैं। हालांकि, यह सभी कदम सदेच्छा से उठाए गए थे, लेकिन इनके परिणाम आशानुरूप नहीं रहे।"[54]

भूमि व्यवस्था के तहत सरकार द्वारा यह नीति लागू की गई कि खेतिहर मजदूर उन्हें कहा जाएगा जिनका जीविकोपार्जन दूसरों की भूमि पर काम करना है। इसके अतिरिक्त जिस व्यक्ति के पास 0-1 हे. तक भूमि होगी उन्हें भी खेतिहर मजदूर की श्रेणी में रखा जाएगा। भागवत प्रसाद के अनुसार- "उ.प्र.शासनादेश सं.244 (1-4-(1)72 राजस्व 1,7 दिसम्बर 1994 के अनुसार खेतिहर मजदूर उसे माना जाएगा जिसके जीवन निर्वाह का मुख्य साधन दूसरों के खेतों में मजदूरी करना है। इसके अलावा ऐसा व्यक्ति जिनके पास 0-1 हेक्टेयर या इससे कम जमीन है उसे भी भूमिहीन माना जाएगा।"[55] जिन खेतिहर मजदूरों के पास खुद की जमीन होती है उसकी मात्रा इतनी कम होती है की उससे उनका गुजारा होना मुश्किल होता है। इन्हें अपनी जीविका चलाने के लिए मजदूरी ही करनी पड़ती है। कृषि हेतु पर्याप्त जमीन न होने के कारण ही सीमांत किसान कृषि से दूर होते जा रहे हैं। प्रधान हरिशंकर प्रसाद के अनुसार- "भारतीय परिवेश में खेत मजदूरों के स्वरोजगार का मतलब अपनी जमीन पर खेती होता है, इसलिए खेत मजदूरों के बीच स्वरोजगार के कम होने का साफ़ मतलब है कि अर्द्धसर्वहारा वर्ग के हाथों से जमीन धीरे-धीरे निकलती जा रही है। 1961 -71 के बीच ग्रामीण आबादी में बढ़ोत्तरी की तुलना में खेत मजदूरों की संख्या में बढ़ोत्तरी भी इसी परिस्थिति की ओर इशारा करती है।"[56]

खेत मजदूरों की समस्याएं इतनी ज्यादा होती हैं कि नाम मात्र की भूमि से ये उन्हें हल नहीं कर पाते हैं। समस्याओं से मजबूर होकर ही इन्हें महाजन और बैंक से कर्ज लेना पड़ता है। एक बार कर्ज का सिलसिला शुरू होने के बाद कभी खत्म नहीं होता है बढ़ता ही जाता है। ऋण को चुकाने के लिए उसे अपनी जमीन बेचनी पड़ती है और वह पूर्ण रूप से खेतिहर मजदूर बन जाता है। इसी कारण से भारत में खेतिहर मजदूरों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। खेतिहर मजदूरों की सभी समस्याओं का

मूल कारण भूमि की समस्या है। प्रधान हरिशंकर प्रसाद ने 'खेतिहर समाज' पुस्तक में लिखा है- "लगभग सारे के सारे अर्द्धसर्वहारा परिवार साधन की कमी से ग्रस्त रहते हैं। उनकी आमदनी अपनी न्यूनतम जरूरतों के लिए भी पूरी नहीं पड़ती। इस तरह उन्हें गाँव के धनी लोगों से कर्ज लेने पर मजबूर होना पड़ता है। नगद और उपज के रूप में भी। कर्ज देने वालों में सबसे बड़ी संख्या बड़े भूस्वामी वर्ग की होती है।.....लेकिन बड़ा भूस्वामी वर्ग लंबे समय के बाद भी पूरे भुगतान पर जोर नहीं देता। वह अक्सर, कर्जदारों को इस बात के लिए मजबूर करता है कि वे अपनी संपत्ति उनके नाम लिख दें।"[57] खेत मजदूर का न्यूनतम खर्च भी उनकी आमदनी से अधिक ही होता है इसीलिए उन पर कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है।

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में युनुस जो पेशे से खेतिहर मजदूर ही है। उसके पास जमीन तो है, लेकिन इतनी नहीं कि उससे उसके परिवार का गुजर-बसर हो सके। किसी भी काम को करने के लिए उसे मजदूरी का सहारा ही लेना पड़ता है। उसके पास जमीन का एक छोटा सा भाग है जिस पर उसे कुंआ खुदवाना है उसके लिए वह सड़क बनने का इंतजार कर रहा है जिससे उसे मजदूरी मिल सके- "यूनुस अपने ही तरीके से सोच रहा था। सड़क का काम खुलेगा तो दो एक महीने गाँव में ही मजूरी मिल जायेगी। अगर दो महीने सड़क का काम चल गया तो हो सकता है कि कूंए में टोटे लगवाने के लिए बैंक से लोन निकलवाने की जरूरत ही नहीं पड़े। फिर भी पहले हप्ते की मजूरी मिलते ही दीवानजी को दो सौ रूपये देकर नक़ल तो निकलवा ही लेनी है।"[58] यूनुस की सभी समस्याओं का मूल कारण उसके पास जमीन की कमी ही है। इसी कारण उसे छोटे से छोटे काम के लिए कर्ज का सहारा ही लेना पड़ता है। मजदूरों को अक्सर किसी बड़े काम के लिए कर्ज की जरूरत पड़ती है। भूस्वामी और महाजन मजदूरों को कर्ज देते रहते हैं जब तक उसकी संपूर्ण जायजाद की कीमत न पूरी हो जाए। उनके द्वारा लिए गए कर्ज पर सूद की दर बहुत ज्यादा होती है। इसलिए मूल चुकाने की बात ही नहीं ब्याज चुकाना भी उनके सामर्थ्य से बाहर की बात होती है। अक्सर भूस्वामी और महाजन मजदूरों के पास की संपत्ति उन्हें बेचने पर मजबूर

करते हैं। इसके बदले वे मजदूरों की पूरी कर्ज की राशि और ब्याज को भी माफ़ नहीं करते कुछ न कुछ शेष बचा ही लेते हैं। इस कर्ज की राशि का इस्तेमाल वे मजदूरों को बंधुआ बनाने में करते हैं।

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में साहिबु का एक पैर भीमा बा का बेगार करने में बैलगाड़ी के नीचे आ गया। भीमा बा साहिबु की दवा कराने के बदले उसकी जमीन हड़प लेते हैं और साहिबु और उसकी पत्नी रेशमी को अपने घर मजदूरी पर रख लेते हैं। साहिबु रेशमी को खेत में काम करते देखता है तो सोचता है- "मैंने क्या सुख दिया इस बेचारी को। पहनने-ओढ़ने का कितना शौक था इसको। लेकिन मैंने कभी इसकी पसंद का एक भी कपड़ा लाकर नहीं दिया। पर इसने कभी किसी बात का उलाहना नहीं दिया। आज मेरे पास मेरा खेत होता तो क्या मैं इसको गेंती चलाने देता ? कैसे बड़े-बड़े छाले पड़ गए हैं हाथ में, कितनी मेहनत करनी पड़ती है पर कभी मुंह पर सल नहीं आने देती।"[59] स्वतंत्रता के पश्चात देश में भूमि सुधार किया गया। हमारे देश में भूमि सीमित मात्रा में है किन्तु उसकी जरूरत ज्यादा लोगों को है इसलिए सरकार द्वारा यह कदम उठाया गया कि समाज के हर व्यक्ति के पास सीमित मात्रा में भूमि हो। अतिरिक्त भूमि का इस्तेमाल अन्य जरूरतमंद किसानों एवं भूमिहीन को देने में किया जा सके। किन्तु आज भी भूमिहीन मजदूरी करने पर ही मजबूर हैं। जिनके पास भूमि है वह इतनी कम है कि उन्हें दूसरों की भूमि पर काम करना पड़ता है। मैत्रेयी कृष्णराज के अनुसार-"किसानों की राष्ट्रीय नीति का पहला और सबसे जरूरी काम है भूमि सुधार जिसमें काश्तकारी क़ानून, भूमि को पट्टे पर देना और जोतों की चकबंदी जैसे मुद्दे भी शामिल हों। जहाँ तक संभव हो सके भूमिहीन श्रमिक परिवारों को बंजर भूमि या सीलिंग के बाद बची अतिरिक्त भूमि में से कम से कम एक एकड़ जमीन दी जाए।"[60]

पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' उपन्यास का रामप्रसाद ऐसा किसान है जो कहने को तो किसान है लेकिन काम से मजदूर है। उसे अपना गुजर-बसर मजदूरी करके ही करना पड़ता है- "दो एकड़ जमीन में परिवार का गुजरा कैसे होता था, यह रामप्रसाद को ही पता था।.....रामप्रसाद खुद भी दूसरों के खेतों में कुछ काम करके थोड़ा बहुत जुटा लेता और जैसे-तैसे टेर हो जाती थी। या कभी किसी की खेती

अधबटिया से ले लेता। दिन-रात खटता, अपने खेत में भी। कहने को किसान और काम से मजदूर।"[61] खेतिहर मजदूर दूसरों के खेतों में काम करता है तरह-तरह के यातनाएं सहता है इसके बावजूद उसकी जरूरतें पूरी नहीं हो पाती हैं।

किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के बीच भूमि संबंधी असमानता को दूर करने के लिए जो भी भूमि सुधार किए गए उनसे खेतिहर मजदूरों को कोई फायदा नहीं हुआ। भूमि संबंधी 'सीलिंग एक्ट' और 'चकबंदी' जैसी योजनाओं से भी खेतिहर मजदूर को कोई फायदा नहीं हुआ। क्योंकि उनके पास ऐसा कोई साधन ही नहीं होता है जिनमें सुधार किया जा सके। इसलिए समाज में गरीब और अमीर के बीच की खाई और भी मजबूत होती गई। एम.एस.श्रीनिवास के अनुसार- "अपेक्षाकृत नए विकास कार्यक्रमों के समताकारी प्रभावों के एक अपवाद की तरफ ध्यान दिया जाना जरूरी है। अन्त्यजों को, जो मुख्यतः भूमिहीन मजदूर होते हैं, अक्सर सिंचाई परियोजनाओं और चकबंदी से कुछ नहीं मिल पाता। उनके पास कुछ नहीं होता, कुछ भी नहीं, जिसे सुधारा जा सके, आर्थिक शुरुआत कर पाने का कोई साधन नहीं। और इसलिए वे आर्थिक और सामाजिक रूप से पिछड़े रह जाते हैं। अक्सर होता यह है कि विकास योजनाओं के कारण उनके और बाकी ग्रामीणों के बीच खाई कम होने की जगह चौड़ी होती चली जाती है।"[62]

किसान की पत्नी को भी दूसरों के घरों और खेतों में जाकर काम करती है। इन सबके बावजूद उनके परिवार को भरपेट भोजन मुश्किल से मिल पाता है। रामप्रसाद की पत्नी कमला की भी यही हालत है। वह भी अपना घर चलाने के लिए दूसरों के घर मजदूरी करती है। राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास का रणसिंह भी भूमि समस्या से ही ग्रसित है। उसकी पत्नी पारबती दिन-रात खेत में काम करती है। रणसिंह मुन्नी से अपनी चिंता व्यक्त करते हुए कहता है- "कोई क्या करे बो मुन्नी। मेरे को कोई पिणसण तो लगी है नईं। जघै जमीन कबीले को पूरी रोटी न देती है। आज दिन तक दिहाड़ी बाहके ई टब्बर पाला। अब बी ई टब्बर आठों पहर सिर पर सवार हिया। अब अपना सरीर तो चले न चले।"[63] खेतिहर मजदूर

के पास जब तक काम करने की ताकत हो तभी तक उसका पेट भर सकता है। नहीं तो उसके खाने को भी लाले पड़ जाएं क्योंकि दिन-भर किये गए काम की मजदूरी ही उसके जीने का सहारा होती है।

4.4 खेतिहर मजदूरों का पारिवारिक और सामाजिक संघर्ष

खेतिहर मजदूर को को जमीन आदि समस्याओं के साथ-साथ पारिवारिक और सामाजिक संघर्षों का सामना भी करना पड़ता है। खेतिहर मजदूर के पारिवारिक संघर्ष की बात करें तो उसे जीवन में बहुत से उतार-चढ़ाव से गुजरना पड़ता है। एक किसान के पास कम से कम उसकी जमीन का आधार होता है, किन्तु खेतिहर मजदूर का जीवन निराधार होता है। उसे तो अपनी मजदूरी का ही सहारा होता है। वह कितनी भी मेहनत कर ले किन्तु उसके जीवन में कोई परिवर्तन नहीं होता है। ऐसी ही समस्या एम.एम चन्द्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में देखने को मिलती है। फतह जो गाँव छोड़कर शहर मजदूरी के लिए जाता है, परिस्थितियां फिर उसे गाँव वापस ले आती हैं। वह बल्ली से कहता है कि- "मेहनती आदमी नहीं, पहले खेतिहर मजदूर था, फिर मजदूर बना और फिर से खेतिहर मजदूर बन जाऊंगा। बल्ली भाई, मेहनती और ईमानदार होना, हमारा नसीब नहीं बदलता।"[64]

खेतिहर मजदूर का पारिवारिक जीवन बहुत ही संघर्षमय होता है। वह अपनी और अपने परिवार की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए मजदूरी करता है, इस कारण उसके परिवार के अन्य सदस्य अपने आप मजदूरी नाम के पेशे से जुड़ जाते हैं। उनके बच्चे खेलने और खाने की उम्र में दूसरों के खेतों में काम करते हैं, उनकी पत्नी भी पारिवारिक जरूरतों को पूरा करने के लिए दूसरों के खेतों में काम करती है। खेतिहर मजदूरों की ये समस्या हमें सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में देखने को मिलती है। नारायण काम की तलाश में शहर जाता है तो उसकी पत्नी कमला गाँव में दूसरों के खेतों में मजदूरी करती है। नारायण के पूछने पर कहती है- "दिन भर एकली घर में कईं करूँ तो मैं बलाई मोहल्ला की औरतां का साथ मजूरी करने जाने लग गई।"[65]

सामाजिक स्तर पर ऐसे कई कार्य होते हैं जिनमें उन्हें शामिल नहीं किया जाता है। यदि किसान अपनी समस्याओं को लेकर लड़ाई लड़ सकते हैं तो खेतिहर मजदूर भी अपनी समस्याओं को लेकर विरोध कर सकते हैं, लेकिन समाज में ऐसा देखने को नहीं मिलता है। जब भी कोई खेती-किसानी को लेकर कोई पंचायत होती है तो उनमें सिर्फ किसान ही शामिल किये जाते है। खेतिहर मजदूरों के लिए उस पंचायत में कोई जगह नहीं होती है दूसरी बात उनके ऊपर काम का बोझ इतना ज्यादा होता है की वे चाहकर भी इनमें शामिल नहीं हो पाते हैं। खेतिहर मजदूर की ऐसी ही समस्या हमें एम.एम.चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में देखने को मिलती है। फतह एक खेतिहर मजदूर है, जो गाँव के ही किसान बल्ली के खेतों में मजदूरी करता है। उनके गाँव में जब भी किसानों की समस्याओं को लेकर बातचीत होती है तो वह वहां मौजूद नहीं रहता है। उसका बेटा फतह जब उसे पंचायत में जाने के लिए कहता है तो उसका सीधा सा जबाब होता है- "बेटा ! मुझे तो बल्ली के खेतों पर जाना है। यदि मैं किसान पंचायत में जाऊंगा तो खेतों की देखभाल कौन करेगा ? और फिर बल्ली ने बड़े भरोसे पर मुझे काम दिया है।"[66]

इसी प्रकार यदि हम राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास की बात करें तो उसमें भी यह समस्या दिखाई देती है कि खेतिहर मजदूर किस तरह से दूसरे के बनाये हुए समाज को अपना लेता है। वह स्वयं मजबूर होता है फिर भी वह औरों की समस्याओं से दुखी होता है। किसान के पास भूमि होता है फिर भी वह मजबूर होता है किन्तु खेतिहर मजदूर के पास कुछ न होने पर वह अनेक समस्याओं से गुजरता है। उसे जब किसान मजबूर दिखाई देता है तब वह उनसे मजदूरी तक नहीं मांग पाता है। यही हालत टेकू की है। प्राकृतिक आपदा के समय किसानों की फसल नष्ट होने पर वह उनसे मजदूरी तक नहीं मांग पाता है। वह सोचता है कि- "उस प्रलय के बाद अगले इन छ: महीनों महीनों में धरती पर ऐसा सूखा पड़ा कि धान की आने वाले फसल की पूरी आस ही ख़त्म हो गयी। उनके मुंहों को चिढ़ाने के लिए खेतों में चौड़ी दरारें बन आई| टेकू ने दिहाड़ी पर काम करना माना था, पर उसकी पूरी मजूरी उधार खाते में खड़ी रही। सिर्फ करमसिंह ने उसके पैसे चुकाए थे। बाकी के लोगों ने फसल आने के बाद उसका कर्ज निबटाने का जो

वायदा किया था, वह सिर्फ वायदा ही बना रहा।"[67] यह खेतिहर मजदूर का सामाजिक संघर्ष ही है जो उसे समाज के हर वर्ग से अप्रत्यक्ष रूप से जुड़ा हुआ है और उनकी जीवन पद्धति किसी न किसी रूप में उसे भी प्रभवित करती हैं।

खेतिहर मजदूर के जीवन में कभी स्थायित्व नहीं आ पाता है उसे तो काम की तलाश में इधर-उधर भटकना पड़ता है। एक जगह पर ज्यादा समय तक न टिक पाने के कारण उसका स्वयं का कोई समाज नहीं बन पाता है। ऐसी परिस्थिति में वह जहाँ पर काम की तलाश में जाता है वहीं के समाज से जुड़ जाता है। वह ही नहीं उसके साथ-साथ उसका पूरा परिवार भी उस समाज का होकर रह जाता है। यह एम.एम. चंद्रा के उपन्यास 'गाँव बिकाऊ है' में ऐसे ही खेतिहर मजदूर के समाज का चित्रण है। फतह गाँव में मजदूरी करने के साथ-साथ बल्ली द्वारा दिए गये दायित्व को बखूबी निभाने की कोशिश करता है। इसलिए बल्ली के आत्महत्या करने के पश्चात वह अपने बेटे अघोघ से कहता है- "बेटा ! मैं तो एक मजदूर हूँ। दुखों का पहाड़ भी गिर जाएगा, तब भी मुझे काम तो करना ही है। वरना सभी डांगर भूखे मर जायेंगे, फसल सूख जाएगी। मेरे जैसे व्यक्ति के लिए समय पर काम करना ही, बल्ली के लिए सच्ची श्रद्धांजलि है। ताकि कोई यह यह न कह सके कि बल्ली के अभाव में, फतह काम ही नहीं करता है। ऐसे में मेरे जैसे आदमी पर दुगुनी जिम्मेदारी आ जाती है।"[68]

कहा जा सकता है कि भूमिहीन किसान या खेतिहर मजदूर समाज में हमेशा से शोषित होता आया है। उसके शोषण के लिए समाज एवं सरकार दोनों ही जिम्मेदार हैं। उसकी जीविका का मुख्य श्रोत शारीरिक श्रम है। किंतु पूंजीवाद और बदलते सामाजिक परिवेश ने उनसे उनकी मजदूरी भी छीन ली है। गाँव में खेती का काम सीजन पर निर्भर होने के कारण उन्हें वर्ष भर काम नहीं मिल पाता है। मजबूरन वे शहर की तरफ पलायन करते हैं तो वहां पर नारकीय जीवन जीने को मजबूर होते हैं। सरकार मजदूरों के लिए योजनाएं चलाती हैं किंतु उन्हें उसका लाभ ही नहीं मिल पाता है। गाँव में वे भूस्वामी के शोषण का शिकार बनते हैं तो शहर में फैक्ट्री के मालिकों। मानो शोषित होना ही उनकी नियति है।

संदर्भ

1. भल्ला, जी एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद (अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरु भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-1 वसंत कुंज, नई दिल्ली-110070; संस्करण : 2016; पृ.70
2. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि (सं.)अवधेश प्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती कामप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2012; पृ.153
3. सुखविंदर; भारतीय कृषि में पूंजीवाद विकास (1990 के बाद हुए परिवर्तनों की एक रूपरेखा); राहुल फाउंडेशन 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ- 226006; संस्करण : 2011; पृ. 20
4. शर्मा, रामविलास; भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद; हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली विश्वविद्यालय, 10 केवेलरी लाइन, दिल्ली- 110007; संस्करण : 2015; पृ. 50
5. त्यागी, भीमसेन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 53
6. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास(1850-1947); राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002; संस्करण : 2015; पृ. 70
7. त्यागी, भीमसेन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 52
8. वही; पृ. 52
9. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि(सं.) अवधेश प्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती कामप्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2012; पृ. 64
10. त्यागी, भीमसेन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 52
11. बो, मिशेल; पूंजीवाद का इतिहास (1500-2000); ग्रंथ शिल्पी, प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2012; पृ. 145
12. त्यागी, भीमसेन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 168
13. कृष्णराज, मैत्रेयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.) अरविंद कुमार सिंह, रजनी कुमारी; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरु भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज-11 वसंत कुंज, नई दिल्ली- 110070; संस्करण : 2014; पृ. 28
14. त्यागी, भीमसेन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004; पृ. 294
15. वही; पृ. 57
16. वही; पृ. 57
17. वही; पृ. 59
18. ये फसल उम्मीदों की हमदम (मध्य बिहार में जनसंहार और किसान संघर्ष); सचिव, पीपुल्स यूनियन डेमोक्रेटिक राइट्स (पी.यू. डी.आर); पृ. 8
19. शिशिर, कर्मेंदु; बहुत लम्बी राह; यश पब्लिकेशन 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली- 110032; संस्करण : 2015; पृ. 10

20. प्रसाद, प्रधान हरिशंकर; खेतिहर समाज; फिलहाल ट्रष्ट, एम- 46/2 श्रीकृष्णनगर, पटना-800001; संस्करण : 2006; पृ. 27
21. (सं.) हिल्टन, रोडनी; सामंतवाद से पूंजीवाद में संक्रमण (अनु.) प्रदीपकांत चौधरी; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली 110092; संस्करण : 2007; पृ. 46
22. शिशिर, कर्मेंदु; बहुत लम्बी राह; यश पब्लिकेशन 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली- 110032; संस्करण : 2015; पृ. 39
23. वही; पृ. 95
24. वही; पृ. 103
25. शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली- 11000; संस्करण : 2010; पृ. 253
26. शिशिर, कर्मेंदु; बहुत लम्बी राह; यश पब्लिकेशन 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली- 110032; संस्करण : 2015; पृ. 130
27. वही; पृ. 191
28. वही; पृ. 215
29. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज –11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 30
30. सिंह, सूर्यनाथ; चलती चाकी; सामयिक प्रकाशन, 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2020; पृ. 233
31. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास (1850-1947); राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2015; पृ. 22
32. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 81
33. राय, शिवाजी; पहचान की तलाश में; फिलहाल (सं.) प्रीति सिन्हा; फिलहाल ट्रष्ट, एम-46/2, श्रीकृष्ण नगर, पटना-800001; जनवरी-फ़रवरी 2018; पृ. 18
34. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 81
35. राय, शिवाजी; पहचान की तलाश में; फिलहाल (सं.) प्रीति सिन्हा; फिलहाल ट्रष्ट, एम-46/2, श्रीकृष्ण नगर, पटना-800001; जनवरी-फ़रवरी 2018; पृ. 18
36. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 81
37. झा, धीरेन्द्र; खेत मजदूर : हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप; हंस (सं.) राजेंद्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 124
38. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 81
39. बो, मिशेल; पूंजीवाद का इतिहास (1500-2000); ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2012; पृ. 149

40. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी-56/ यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 96
41. वही; पृ. 96
42. वही; पृ. 96
43. बंद्योपाध्याय, शेखर; प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद आधुनिक भारत का इतिहास(अनु.) नरेश 'नदीम'; ओरियंट ब्लैकस्वान प्राइवेट लिमिटेड; संस्करण : 2008; पृ. 366
44. सिंह, सूर्यनाथ; चलती चाकी; सामयिक प्रकाशन 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2020; पृ. 233
45. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एस.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकुला-134113 (सेक्टर-16); संस्करण : 2015; पृ. 86
46. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज- 11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 16
47. वही ; पृ. 28
48. झा, धीरेन्द्र; खेत मजदूर : हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप; हंस (सं.) राजेंद्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा. लि., 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त, 2006; पृ. 124
49. मिथिलेश्वर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, 1-बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2018; पृ. 26
50. वही; पृ. 141
51. विराट; बढ़ते स्त्री-विरोधी अपराधों का मूल और उनके समाधान का प्रश्न; आह्वान; (सं.) अभिनव; रुचिका प्रिंटर्स, 10665, बी-100, मुकुंद विहार, करावल नगर, दिल्ली- 110094; मई-जून, 2014; पृ. 19
52. हबीब, इरफ़ान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी - 7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2017; पृ. 68
53. वही; पृ. 69
54. जोशी, पूरन चंद्र; भारत में भूमि सुधार अध्ययनों का सर्वेक्षण; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2012; पृ. 19
55. (सं.) प्रसाद, भागवत; भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता मार्गदर्शिका; अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान भारत जननी परिसर, रानीपुर भट्ट सीतापुर चित्रकूट (उ.प्र.) 210204; संस्करण : 2003-2004; पृ. 5
56. प्रसाद, प्रधान हरिशंकर; खेतिहर समाज; फिलहाल ट्रस्ट, एम-46।2 श्रीकृष्णनगर, पटना-800001; संस्करण : 2006; पृ. 22
57. वही; पृ. 18
58. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद - 201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 56
59. वही; पृ. 58
60. कृष्णराज, मैत्रेयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.) अरविंद कुमार सिंह, रजनी कुमारी; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरु भवन, 5 इंस्टीट्यूशनल एरिया, फेज- 11 वसंत कुंज, नई दिल्ली- 110070; संस्करण : 2014; पृ. 14

61. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन, पी. सी लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर- 466001 (म.प्र.); संस्करण : 2017; पृ. 10
62. (सं.) श्रीनिवास, एम.एन.; भारत के गाँव(अनु.) मधु बी. जोशी; राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2011; पृ. 22
63. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एस.सी.एफ. 267, सेक्टर- 16 पंचकुला- 134113 (सेक्टर-16); संस्करण : 2015; पृ. 70
64. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज –11, नई दिल्ली-110020 ; संस्करण : 2019; पृ. 16
65. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-11, गाजियाबाद-201005 (उ. प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 94
66. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज –11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 40
67. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एस.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकुला- 134113 (सेक्टर-16); संस्करण : 2015; पृ. 169
68. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज –11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 59

पंचम अध्याय

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में
किसान और खेतिहर मजदूर : तुलनात्मक अध्ययन

बीसवीं सदी के अंतिम दौर में जो भूमंडलीय स्थितियाँ उत्पन्न हुईं, उन्होंने उपन्यास साहित्य पर गहरा प्रभाव डाला। यही प्रभाव इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों का केंद्र बिंदु भी बनी। इक्कीसवीं सदी के बदलते परिवेश के कारण मनुष्य की जीवन शैली, रिश्ते-नातों में उनकी मूल्य दृष्टि आदि में कई सारे बदलाव हुए। भूमंडलीकरण और नवपूंजीवाद ने सम्पूर्ण विश्व को एक बाज़ार में परिवर्तित करने का काम किया है। आज मनुष्य रिश्ते नातों, प्रेम संबंधों को सिर्फ उपयोगितावादी दृष्टिकोण से देख रहा है। उसके लिए धन ही सर्वप्रथम है। जिस तरह से देश में औद्योगीकरण हो रहा है, बड़ी-बड़ी कंपनियों की स्थापना की जा रही है, इनका समाज के बदलाव में भरपूर योगदान है। इसी औद्योगिक और पूँजीवाद के प्रभाव ने समाज में असमानता को बढ़ावा दिया है, पूँजीपति वर्ग पहले की अपेक्षा और भी मज़बूत हो गया है तथा अन्य वर्ग आर्थिक रूप से और भी पिछड़ गए हैं । इन सबके परिणामस्वरूप समाज में हिंसा, साम्प्रदायिकता, अलगाव आदि को पनपने के लिए जगह मिली है क्योंकि निर्धन वर्ग अपने आप को समाज में अपेक्षित सा महसूस करने लगा है। जिस तरह के समाज का निर्माण हो रहा है उसमें हमारा कृषक और खेतिहर मजदूर समाज कहीं भी फिट नहीं बैठ रहा है, न ही इस वर्ग पर कोई ध्यान ही दिया जा रहा है। यदि सच में परिस्थितियां इस वर्ग के अनुकूल होती तो आज कृषक समाज की स्थिति दिन-प्रतिदिन और भी ख़राब नहीं होती। अंग्रेजी राज़ से लेकर अब तक ऐसी कई घटनाएँ देखने को मिलती हैं । जहाँ देश में अन्न का भंडार तो भरा रहता है लेकिन किसान और खेतिहर मजदूर भूखों मर रहे होते हैं।

कृषि प्रधान देश के किसान आखिर किन समस्याओं के सामने दम तोड़ देता है ? वह आत्महत्या का रास्ता अपना लेते हैं।

इक्कीसवीं सदी में उद्योग धंधे आदि विकसित होने के बावजूद किसान बेरोज़गारी एवं भुखमरी से परेशान हैं। इक्कीसवीं सदी समाज को तो नयी दिशा दी किंतु किसान एवं खेतिहर मजदूर अपनी दयनीय अवस्था में ही है। उनकी परिस्थिति में बदलाव नहीं हुआ। साहित्य की अनेक विधाओं में किसान एवं खेतिहर मजदूरों पर पूँजीवाद के प्रभाव को दिखाया गया है। पूंजीवादी व्यवस्था की खामियों को भारतेंदु हरिश्चंद्र ने पहचान कर अपनी रचनाओं में कई स्थानों पर उनका उल्लेख किया है। रामविलास शर्मा ने अपनी पुस्तक 'भारतेंदु हरिश्चन्द्र और हिंदी नवजागरण की समस्याएं' में भारतेंदु जी के एक लेख की चर्चा करते हुए कहते हैं- "भारत के कल-कारखाने, किसान, मजदूर, कारीगर सब बर्बाद हो रहे थे। अत: कपड़ा बनाने वाले, सूत कातने वाले, खेती करने वाले आदि सब भीख मांगते हैं। इस रोग का कारण अंग्रेजी राज़ है। इस अंग्रेजी राज़ में क्या कारण है कि दिन-दिन महंगाई बढ़ती जा रही है, जो अन्न गत वर्ष में 12 सेर का बिकता था जो इस वर्ष 8 सेर का बिकने लगा।"[1]

इक्कीसवीं सदी की परिस्थितियों और समाज में किसानों और खेतिहर मजदूरों के लिए कोई जगह नहीं है। इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में हमें किसान और खेतिहर मजदूर की जो समस्याएं देखने को मिलती हैं वो इक्कीसवीं सदी में आये बदलाव का ही प्रभाव है। कृषि एवं पशुपालन जिसकी शुरुआत लगभग 6500 ई.पू.में हुआ था। नवपाषाण युग में खेती का आविष्कार स्त्रियों द्वारा माना जाता है। जब पुरुष शिकार करता था और स्त्रियाँ खाने के लिए जंगलों से अन्न एकत्रित करती थीं। ऐसे ही अन्न को एकत्रित करते समय उन्होंने देखा कि अन्न के दाने से एक पौधा भी तैयार हो सकता है। तभी से उन्होंने ज़मीन में अनाज को गाड़ना शुरू किया। इस तरह से खेती करने की एक परंपरा का विकास हुआ या यूँ कहें कि कृषक समाज का ज़न्म हुआ। रामशरण शर्मा के अनुसार- "खेती के आविष्कार को मनुष्य के इतिहास में प्रथम औद्योगिक क्रांति कहा गया है।"[2]

भारत में कृषि व्यवस्था हजारो सालों से चली आ रही है। किसान की स्थिति जिस तरह से शुरूआती दौर में थी आज भी वैसे ही है सिर्फ तरीका बदल गया है। सामंती व्यवस्था से अब तक किसान सिर्फ शोषित ही होता आया है। सामंती शासन में भी कृषक पूर्णत: सामंतों के अधीन रहते थे इसलिए वे उनका भरपूर शोषण करते थे। इसमें किसान भूमि शुल्क के साथ-साथ अपनी उपज1/4 भाग राजा को दे देते थे। इरफान हबीब के अनुसार- "कौटिल्य ने इस बात पर बल दिया कि राजकीय भूमि पर बनी बस्तियों में वास करने वालों में अधिकतर संख्या कृषकों और अन्य निम्नतर वर्गों की अधिकता होनी चाहिए क्योंकि उनके शोषण की सम्भावना अधिक होती है।"[3]

परिस्थितियों के बदलते-बदलते सामंती समाज में ही कृषक वर्ग और खेतिहर मजदूर का विभाजन हो गया। किसान अपने आपको समाज में प्रतिष्ठित व्यक्ति के तौर पर देखने लगे थे, इसलिए उनका भूमिहीनों पर अमानवीय अत्याचार शुरु हो गया। पहली बात कि खेतिहर मजदूर के पास भूमि नहीं थी दूसरी वे समाज के सबसे निम्न वर्ग के लोग थे इसलिए इनका दोहरा शोषण होने लगा। इरफान हबीब के अनुसार- "गाँव से बहिष्कृत और जोतों से वंचित, अछूत कभी भी किसान नहीं बन सके, इस तरह वे विहित सेवक का काम करने के लिए मजबूर थे। इससे वे कम काम के समय में अपना गुज़ारा करते थे ताकि खेतों में ज़रुरत पड़ने पर वे उपलब्ध हो सकें। किसान जो खुद ही बुरी तरह शोषित था, शारीरिक श्रम करने वाले सेवकों के कठोरतम शोषण में शामिल हो जाते थे। यह निश्चय ही भारतीय सामाजिक इतिहास की घटक त्रासदियों में से एक था।"[4]

इस तरह किसान और खेतिहर मजदूर वर्ग का उदय समाज में प्राचीन काल से ही हो गया था। समय के साथ-साथ इनकी परिस्थितियां बदलती रहीं किंतु इतना तो अवश्य ही कहा जा सकता है कि अंग्रेजों के आगमन से किसानों की परिस्थितियों में काफी बदलाव आया। औद्योगीकरण, पूँजीवाद के बढ़ते प्रभाव ने किसान और खेतिहर मजदूरों को समाज में वंचितों की श्रेणियों में लाकर खड़ा कर दिया है। पूंजीवादी तरीके से कृषि करने से कृषि के ढांचे में कई परिवर्तन हुए हैं। पूंजीवादी कृषि बड़े किसानों के

लिए लाभदायक सिद्ध हुई, किंतु छोटे किसान, सीमांत किसान भूमिहीनता की तरफ बढ़ रहे हैं। पूंजीवादी कृषि की परिभाषा अशोक रूद्र ने इस प्रकार दी है- "किसान अगर किसी और को स्वामित्व न देकर ज़मीन को अपने अधीन रखता है, अगर अपने परिवार के श्रम के अनुपात में भाड़े के मजदूरों के श्रम का अधिक उपयोग करता है, अगर खेती के काम में मशीनों का उपयोग बढ़ता है, अगर उत्पादन का बड़ा भाग बाज़ार में जाता है, अगर उत्पादन में विनियोग मूलतः बाज़ार के लाभ के द्वारा परिचालित होता है तो यह मानना पड़ेगा कि खेती पूँजीवादी तरीके से हो रही है।"[5]

कृषि के इस तरीके के कारण हमारे समाज में छोटे एवं सीमांत किसानों के हाथों से उनकी ज़मीन धीरे-धीरे छिनती जा रही है और वह भूमिहीन होता जा रहा है। इसलिए समाज में खेतिहर मजदूरों की संख्या में बढ़ोतरी होती जा रही है। कृषि समाज में किसान और खेतिहर मजदूर वैसे तो एक दूसरे के पूरक हैं किंतु इनकी परिस्थितियां भिन्न होती हैं। किसान एवं खेतिहर मजदूरों की तुलना हम निम्न समस्याओं के आधार पर कर सकते हैं-

5.1 व्यवस्था और तंत्र

किसान और खेतिहर मजदूर की बात जहाँ आती है। वहां अनायास ही भ्रष्टाचार का प्रश्न उठता है। किसान और खेतिहर मजदूर की दयनीय स्थिति के लिए भ्रष्टाचार प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। समाज में किसानों एवं खेतिहर मजदूरों को बहला-फुसलाकर उनका शोषण करने के लिए कई शक्तियां उत्तरदायी हैं। सर्वप्रथम तो हमारे समाज में किसान जिनके सामने पहले से ही कई समस्याएं हैं उनको और बढ़ाने के लिए हमारा सरकारी तंत्र ही उत्तरदायी है। राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास में कासीनाथ जो इलाके का राजनेता है। वह किसानों और खेतिहर मजदूरों को रोज़गार देने का लालच देकर उनकी ज़मीनों को हड़पना चाहता है। उपन्यास में भूमंडलीकरण का दुष्प्रभाव दिखाया गया है कि अंधाधुंध विकास के दौर में किसी को भी किसानों एवं खेतिहर मजदूरों की कोई परवाह नहीं है। वे सिर्फ उनका दोहन ही करना चाहते हैं। कासीनाथ सीमेंट की फैक्ट्री लगाना चाहता है, जिसके लिए वह किसानों की जमीनों को हड़पना

चाहता है। किसान किसी भी कीमत पर अपनी ज़मीन नहीं देना चाहते हैं। काशीनाथ कहता है- "ये उदास गाँव वाले मूरख हैं। तरक्की वकास के दुश्मन ठहरे। आगे बढ़ना ई नईं चाहते। गरचे इधर समींट की ऊ फैक्टरी खुल जाने दी होती तो आर-पार की ये सारी रिढ़ियां ढ़लाने तमाम खरा पैसा मिलके बिक-बका ली होतीं। ऐसे ई इनमें क्या धरा है ? सीमेंट वाले साह ने इनका सारा पत्थर निकाल के इनको एकदम समतल मैदान न बना देना था। उस समतल में उसने फेर इंजीनिरिंग कौलेज खोल देना था। काशीनाथ कहता है इससे चार रोज़गार खुलते बिलबौंदे इन लौंडों लपाड़ों को कुछ कामधाम मिलता ...कहीं नौकरी धौकरी देखते।"[6]

जिनके पास जमीन है वे किसान अपनी ज़मीन को बचाने के लिए किसी भी हद तक विरोध करने को तैयार हैं। उन्हें खेती में दुःख उठाना मंजूर है किंतु अपनी ज़मीनें देना नहीं मंजूर है। दूसरी तरफ खेतिहर मजदूर जो पहले से ही भूमिहीन हैं, उन्हें तो सिर्फ अपने दिन की दिहाड़ी से मतलब है। जिन फैक्ट्रियों को खोलने के लिए किसानों की ज़मीनें हड़पी जाती हैं और उन्हें मजदूरी का लालच दिया जाता है। उन्हीं कम्पनियों में जब खेतिहर मजदूर काम करने जाता है तो उसे तरह-तरह की यातनायें मिलती हैं। सर्वप्रथम उन्हें मजदूरी कम मिलती है। दूसरी बात सरकार और पूंजीपति जब चाहे उसे बंद कर देते हैं और मजदूर बेरोजगार हो जाते हैं। डूमणू ने संतू से कहा-"पर इधर सुना था कि म्हारी फैक्टरी काम बंद करने वाली है,'। प्लास्टिक के लफाफों को सरकार ने बंद कर दिया है।.....सरकार का डमाक ख़राब है, संतू ने जरा सा कराहकर पहलू बदलते हुए कहा।.....पैसा आनो बंद हो गया तो टब्बर कैसे पलेगा भाऊआ।"[7]

मजदूर अपना परिवार पालने के लिए अपने श्रम का ही सहारा लेता है, किंतु किसान अपनी ज़मीन पर परिश्रम करके अपना पेट पाल सकते हैं। पूंजीवाद के दौर में मजदूरों की दशा अत्यंत दयनीय हो गयी है। समाज के हर वर्ग की दशा में परिवर्तन हो रहा है किंतु एक श्रमिक का जीवन विकास के हर दौर में एक जैसा रहा है। अजय तिवारी के शब्दों में- "औद्योगिक पूंजीवाद के आरंभिक दिनों में श्रमिकों की दशा इतनी सोचनीय न रही होगी जितनी वृद्ध पूंजीवाद के दिनों में है। तब अधिकारहीन श्रमिक के सामने

अधिकार अर्जित करने का संघर्ष था। उसमें वह कुर्बानियों के साथ-साथ विजय पाता जा रहा था। इस तरह अपनी नारकीय परिस्थितियों से बाहर निकलता जा रहा था। इसलिए एक नयी श्रमिक वर्गीय चेतना भी अर्जित कर रहा था। तभी यह नारा उभरा था-दुनिया के मजदूरों, एक हो ! आज मजदूर की दशा इतनी नारकीय नहीं है, लेकिन वह अब तक अर्जित अधिकारों को गंवा रहा है, पूंजीवाद के मायाजाल में उसकी चेतना इतनी गिर गयी है कि वह अपने शत्रु मित्र नहीं पहचानता, संघर्ष द्वारा अपने अधिकार पाने की इच्छा भी नहीं रखता।"[8]

किसान और खेतिहर मजदूर दोनों ही सरकार और बाज़ार के भ्रष्टाचार को समझ नहीं पाते हैं। और उनके शोषण का शिकार बनते रहते हैं। 'राजू शर्मा' का उपन्यास 'हलफनामे' तो पूर्णतः सरकारी तंत्र की भ्रष्टता को उजागर करता है। किसान शासन के मकड़ जाल में फंसता ही चला जाता है। स्वामीराम जो एक मध्यम किसान है। सूखे की समस्या के कारण क़र्ज़ के जाल में फंसता चला जाता है। स्थिति यहाँ तक आ जाती है कि वह आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाता है। स्वामीराम का पुत्र मकई जो खेती-किसानी से पूर्णतः दूर ही रहना चाहता है। न चाहते हुये भी वह अपने पिता की मृत्यु के पश्चात मुआवजे की राशि प्राप्त करने के लिए मकई हलफनामे दाखिल करता है। उसे संख्या में इतने हलफनामे दाखिल करने पड़ते हैं कि वह हलफनामों का ज्ञाता बन जाता है- "सहज, अनपढ़ तरीके से मकई ने गुन लिया था कि हलफनामों की रीति उस जैसे के लिए गले में फंदा डालने जैसा है। जिस तरह पशु बिना चखे महज सूंघकर वस्तु का हित-अहित भाप लेता है। कालान्तर में जब वह इस विद्या में पारंगत हुआ, उसने सरकार तक अपनी बात पहुँचाने के लिए उन्नीस हलफनामों का पुल बनाया, जबकि उसके नीचे बंजर ज़मीन थी और पुल की दरकार नहीं थी, और आखिर में मुख्यमंत्री तक पहुँचा भी, उसने जाना कि हलफनामों का यह प्रचंड घोषणा तत्व दिलासा ने इजाद नहीं किया था....देश में जितने हलफनामे बनते हैं सब एक जैसे होते हैं और उनकी समान भाषा के पीछे सत्ता की ताकत और एकतरफापन है। मकई का भोला संदेह सही था कि यह कागज़ कमजोर इंसान का बैरी है और सत्ता का एक साथ बैसाखी और औजार.....एक साल

बाद मकई हलफनामे की महिमा पर घंटों बोल सकता था।"[9] हमारे देश में भ्रष्टाचार की श्रेणी में कानूनी, गैरकानूनी बाज़ार आदि सभी शामिल हैं। कई बार ऐसा होता है कि किसानों को सरकारी पद पर बैठे लोगों का भ्रष्टाचार तो समझ में आ जाता है, किंतु बाज़ार और दलालों के भ्रष्टाचार को वे अच्छी तरह से समझ नहीं पाते हैं। समाज के दलाल कई कामों को किसानों के समक्ष इस तरह से पेश करता है कि वे उसमें फंस जाते हैं। सवेरा गाँव में लाला जिसका बोरवेल का व्यापार है। सवेरा गाँव को डार्क एरिया घोषित किया गया है। फिर भी लाला वहां के लोगों को बहला फुसलाकर अपना व्यापार जमा रहा है और किसान उसके जाल में फंसते जा रहे हैं- "एक सरकारी नूमाइन्दा खबर लाया कि सरकार ने इस इलाके को 'डार्क एरिया' घोषित कर दिया है। डार्क एरिया मतलब ! मतलब अँधा इलाका पानी से मरहूम, बोरिंग डालना अपराध है। पर सरकारी महकमे में लाला की अच्छी मिली भगत थी। उसकी छत्रछाया में खोदाखादी का काम चलाता रहा। बोरिंग के धंधे में उसका सर्वाधिकार था। दक्षिण भारत से सैकड़ों ट्रक पाइप लेकर पहुँच रहे थे। देखते ही देखते लाला मालामाल हो गया था और छोटे किसान तमाम क़र्ज़ में डूब गए। फसल का कोई ठिकाना नहीं था, एक पैदावार अच्छी हुई तो दूसरी बिगड़ गयी ।"[10]

भारत में भ्रष्टाचार फैलने का एक कारण यह भी है कि हमारे देश में बड़े-बड़े घोटालों पर मीडिया में खूब शोर-शराबा होता है किंतु निचले स्तर पर फैले भ्रष्टाचार और आमजन की समस्याओं पर मीडिया में बहुत कम ही चर्चे सुनाई देते हैं। इसलिए किसान और खेतिहर मजदूरों की समस्याएं दब कर रह जाती हैं। अनिल चमडिया के शब्दों में- "भारतीय मीडिया के क्रमिक विकास में देखा गया है कि किसानों और मजदूरों के लिए सूचनाएँ तो उसके ज़रिये पहुँचाने के प्रयास होते हैं, लेकिन किसान व मजदूरों की खबर के लिए भारतीय मीडिया में जगह कम होती चली गयी है। यह कमी इस हद तक है कि उनकी खबरों को नज़रअंदाज़ किया जाता है और भारतीय मीडिया उनकी सांगठनिक एकता के खिलाफ विचारधारात्मक स्तर पर दिखने लगता है।"[11]

भ्रष्टाचार का सर्वाधिक खामियाजा किसानों एवं मजदूरों को भुगतना पड़ता है। स्वामीराम तो सिर्फ सूखे की समस्या से निजात पाना चाहता था लेकिन उसे सूखे से तो निजात नहीं मिली ज़िन्दगी से मिल गयी। उसका बेटा मकई जो कि शासन तंत्र के हाथों की कठपुतली बनकर रह गया है। वह कोर्ट में बैठकर सोच रहा है- "बापू की आकृति सजीव-सी आँखों के आगे घूम गई। जाने के बाद वे सपनों में भी नहीं आये थे। मकई की आँखें छलछला गई-सामने की तहसील जनता और हाकिम, सरकारी कामकाज की अनवरत घिसघिस आंसुओं की डबडबाहट में तैरती, मिट्टी, अव्यक्त सी जान पड़ी.....क्या बापू भी कभी तहसील आए थे ? इस बेंच पर बैठे थे ? इस अबूझ तंत्र के सामने झोली फैलाई थी ? यह कैसी परीक्षा है ....आक्रोश का वह क्षण जिसे अपने में ही दम तोड़ना है।"[12] राजू शर्मा का 'हलफनामे' उपन्यास शासन के भ्रष्टाचार का जीता-जागता उदाहरण है। मकई जैसे साधारण इंसान उसमें फंसकर रह जाते हैं। पिता की आत्महत्या ने मकई के जीवन को परिवर्तित कर दिया। वह सिर्फ अपने पिता के लिए कोर्ट के चक्कर लगाता रहता है। पुष्पपाल सिंह के शब्दों में- "राजू शर्मा ने 'हलफनामे' उपन्यास में प्रशासनिक तंत्र के भीतर पोर-पोर तक समा गए भ्रष्टाचार का प्रत्यक्षदर्शी चित्रण किया गया है। गाँव को केंद्र में रख 'हलफनामे' में गाँव, कस्बे, तहसील और जिला स्तर पर कोर्ट-कचहरी, अदालत में फैले भ्रष्टाचार को नंगा किया गया है। कथानक में आई स्थितियाँ इतनी-इतनी जानी-पहचानी और सामान्यजन की ज़िन्दगी की कड़वी सच्चाइयां हैं कि पाठक को लगता है वह इन ज्यादतियों का सहभोक्ता है। रिश्वत, चाहे वह किसी भी रूप में कितनी ही बड़ी या छोटी हो, के बिना आज कोई व्यक्ति अपना कोई भी काम नहीं कर सकता।"[13]

भ्रष्टाचार ने ही हमारे देश में लोकतंत्र को जीवित रखने का कार्य किया है। क्योंकि ऐसा कोई भी देश नहीं है जहाँ लोकतंत्र हो और भ्रष्टाचार न हो किसान को हर काम के लिए रिश्वत का ही सहारा लेना पड़ता है। यहाँ तक कि मकई को अपने पिताजी के मृतक शरीर का पोस्टमार्टम करवाने के लिए भी डॉक्टर को रिश्वत खिलानी पड़ती है, क्योंकि डॉक्टर की मुट्ठी गरम किए वगैर वह मकई को स्वामीराम का मृत्यु प्रमाण-पत्र ही नहीं देना चाहता है। समाज का इससे घिनौना और कौन सा रूप हो सकता है जहाँ पर पुत्र

अपने पिता के मृतक शरीर के लिए खड़ा हो और उससे रिश्वत माँगा जा रहा हो। ऐसी स्थिति में किसी पुत्र की मन:स्थिति का अंदाज़ा लगाया जा सकता है- "डॉक्टर कागज़ पर झुका और खुद के जितनी पतली कलम से उस पर मौत की तारीख दर्ज कर दी, मानो यमराज जीवन-मरण का हिसाब रख रहा है। उसके बाद कागज़ दोनों हाथों को मिलते हुए जैसे मकई को दान कर दिया। दिलासा की हिदायत के अनुसार मकई ने सावधानी से गिने नोटों की एक गड्डी अपनी मुट्ठी में बंद कर रही थी। उसने मानो एक प्राचीन रीति को निभाते हुए वह गड्डी प्रसाद स्वरुप डॉक्टर की खुली हथेली में छोड़ दी।"[14]

कोर्ट कचहरी के कोई भी काम हो जैसे ज़मीन की खसरा खतौनी, नकल, ज़न्म-मृत्यु प्रमाणपत्र, जाति-प्रमाणपत्र, हलफनामे, भूमि का बंटवारा और भी ऐसे कई काम होते हैं जो कोर्ट में रिश्वत दिए बगैर नहीं होता है। घूसखोरी का धंधा समाज में इतने व्यापक रूप में फ़ैल गया है कि सरकारी पद पर बैठा कर्मचारी अपने मूल काम को छोड़कर घूसखोरी के धंधे में ही लगा रहता है । पुष्पपाल सिंह ने पूंजीवाद के दौर में जिस तरह से भ्रष्टाचार का बोलबाला बढ़ रहा है उसे इन शब्दों में व्यक्त किया है- "अथाह पूँजी के अबाध आवागमन ने विश्व अपराध जगत से भी अधिक भयानक एक और समस्या ने जकड़ रखा है, वह है भ्रष्टाचार। राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक क्षेत्र में या कहें जीवन का कोई क्षेत्र नहीं बचा है जो भ्रष्टाचार से ग्रस्त न हो। विकसित देशों और विकासशील देशों, यहाँ तक कि अविकसित देशों में भी भ्रष्टाचार के दानव ने अपने दैने पूरी तरह फैलाये हुए है।"[15]

देश की आम जनता जब अदालतों में जाती है, तो उसे वहां का अलग ही स्वरुप देखने को मिलता है, जिनसे वह अभी तक बेखबर ही था। हद तो उस जगह पर होती है जब वकील और न्यायाधीश के बगल में बैठकर बाबू गरीबों से पैसे ऐंठता रहता है। अदालतों में गरीबों के मुक़दमे सालों-साल चलते रहते हैं उनकी कोई सुनवाई नहीं होती है। उनकी समस्याएं फाइलों में ही दब कर रह जाती हैं। यही हाल मकई के साथ भी होता है। वह कोर्ट में बैठकर अंदाज़ा लगा रहा है कि आखिर क्या कारण है कि उसके इतनी बार हलफनामे दाखिल करने के बाद भी उन पर कोई सुनवाई नहीं हो रही है- "अब उन्हें दसवां और

ग्यारहवां हलफनामा चाहिए ...एक, दो, तीन...आठ, नौ से इनका पेट नहीं भरा, इन्हें और खुराक चाहिए, राक्षस की तरह रोज़ एक आदमी का मांस... इतनी शपथ और सत्यनिष्ठा इतना सर्वोत्तम ज्ञान में एक के बाद एक डकार जाते हैं, इनकी भूख नहीं मिटती, इन्हें अपच नहीं होता, न पाप लगता है। शपथ की आड़ में इन्हें धन चाहिए... हलफनामे के लिफाफे में इनका पैगाम होता है-दक्षिणा दो, घूस दो, नहीं तो गाड़ी आगे नहीं बढ़ेगी।"[16]

हमारे देश में भ्रष्टाचार की समस्या का सीधा सम्बन्ध भारतीय राजनीति से है। देश में जब से आज़ादी का आन्दोलन ख़त्म हुआ है, तब से राजनीति, लूट, भ्रष्टाचार, जातिवाद, मौकापरस्ती, आदि को बढ़ावा मिला है। राजनीति में कोई भी पार्टी सत्ता में आ जाये वह भ्रष्टाचार के ही पालन-पोषण में लग जाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो आज के समय में राजनीति एक धंधा बन चुकी है, जिसका उद्देश्य खुद को सत्ता में बने। इसके लिए इन्हें जिस भी हद तक गिरना पड़े वो गिर जाते हैं। राजू शर्मा के उपन्यास 'हलफनामे' में सवेरा गाँव जहाँ पानी की इतनी किल्लत है कि स्वामीराम की मृत्यु के समय पानी के अभाव में उसके घर के सारे बर्तन उलटे रखे हुए थे। चुनाव के समय की तैयारियां और मुख्यमंत्री के आगमन के समय गाँव के पूरे ढ़ांचे को ही परिवर्तित किया जा रहा है। परिवर्तन के नाम पर लूट मची हुई है- "कांट्रेक्टर और बिचौलिये, डीलर और दुकानदार लाला और उसके साथी ही थे। अनुभव भी उन्हें ही था। एक महीने में करीब चार करोड़ रूपये का निवेश सीधे या परोक्ष हुआ। लाला और साथियों की फर्मो ने कम से कम चालीस लाख का मुनाफा कमाया। इतना ही पैसा सरकारी जेबों में गया। इस मामले में बंदरबांट बराबर थी। सिर्फ एक क्षेत्र में कलेक्टर की मेहनत और कमरकसी रंग न ला सकी, सूखे और पानी के अभाव का कोई इलाज नहीं दिखा। स्पेशल ट्यूबवैल का ट्रायल किया गया, असफल रहा। 'पाताल तक पानी नहीं मिलेगा सर' इंजीनियर ने कहा। ऐसा डार्क एरिया मैंने आज तक नहीं देखा। बदहवासी में यहाँ तक सोचा गया कि टैंकरों में पानी मंगवाकर पोखर थोड़े भर दिए जाएँ, एक दिन की बात है।"[17]

हमारे देश में सांसद, विधायक चुनाव के माध्यम से आम जनता को ठगने की कोशिश में लगे रहते हैं। राजनीति और व्यवसाय तथा सरकारी और प्राइवेट का अंतर कम होता जा रहा है, क्योंकि दोनों ही जनता को ठगने का ही कार्य करती हैं। नेताओं और पूंजीपतियों का गठजोड़ होता है दोनों के मिली भगत से ही आम जनता बदहाली की स्थिति तक पहुंच रही है। यही स्थिति 'हलफनामे' में लाला की है। वह कलेक्टर और अन्य सरकारी अधिकारियों तक अपनी पैठ बनाए हुए हैं और उन्हीं के माध्यम से गरीब किसानों को आत्महत्या के कगार तक पहुंचा रहा है। नेता इन ठेकेदारों के भ्रष्टाचार में इनका भरपूर सहयोग करते हैं। चुनाव के समय किसान सिर्फ राजनेताओं के भाषण में मौजूद रहते हैं, सत्ता में आते ही सिर्फ उनके बड़े-बड़े भाषणों में किसान याद किए जाते हैं। सरकार के एजेंडे और बजट में किसान सिर्फ नाम मात्र के लिए मौजूद रहते हैं। प्रवीण कुमार ने अपने लेख 'निखर्ची कुदरती खेती : एक और जालिम जुमला' में राजनीति की सच्चाइयों को इन शब्दों में व्यक्त किया है- "देश के प्रधानमंत्री से लेकर छुटभैये नेताओं तक आये दिन कभी आदमी की गर्दन पर हाथी का सिर लगाने की कभी धर्म ग्रंथो में हवाई जहाज और परमाणु बम के फ़ॉर्मूले होने की बेतुकी बातें करते रहते हैं। जनता का एक हिस्सा उनसे प्रभावित भी हो जाता है। लेकिन वास्तविक ज़िन्दगी में, जहाँ लोगों को जिंदा रहने के लिए कुछ पैदावार करनी होती है वहां ऐसी वाहियात बातों के लिए कोई जगह नहीं होती। सच तो यह है कि हमारे इन रहनुमाओं के घास खेती के संकट का कोई समाधान है ही नहीं। वे जुमलेबाज़ी करके केवल लोगों को बरगलाना चाहते हैं।"[18]

राजनेता किसानों और खेतिहर मजदूरों को मोहरा बनाकर सिर्फ सत्ता पाना चाहते हैं। सत्ता में आने के पश्चात उन्हें इन किसानों, मजदूरों की कोई आवश्यकता नहीं होती है। यही हालत मकई की होती है। वह मुख्यमंत्री के द्वारा सिर्फ इसलिए सम्मान का पात्र बनाया गया कि मुख्यमंत्री का दौरा मकई के गाँव में होना है और मुख्यमंत्री मकई को उसके पिता की मृत्यु का मुआवजा देकर सिर्फ अपना नाम कमाना चाहते हैं तथा जनता का मन जीतना चाहते हैं, इसलिए वे मकई को दस लाख का चेक देते हैं। चेक देने के बाद

जैसे ही जनता का ध्यान मकई की तरफ से हटता है वह मुख्यमंत्री के साथ स्टेज पर एक गैर ज़रूरी वस्तु बनकर रह गया है- "बीस मिनट तक मकई स्टेज पर खड़ा रहा था। यह कतई आसान नहीं था। यूँ भी कि न उसकी दरकार थी न ज़रुरत। जो दृश्यबंध था उसमें मकई की जागरूक दस्तक का कोई रोल नहीं था। किसान आत्महत्या के शास्त्रीय पाठ में मकई का कोई संवाद नहीं था। वह खैराती था, नमूना या बानगी सिर्फ पर राज्य की लीलाएं, प्रशासनिक धुन का आलाप, राजकाज की अभिव्यक्ति, ये सब दिल की आवाज़ और मन की निडर उड़ानों पर ताला नहीं डाल सकते।"[19]

स्वामीराम के आत्महत्या का कारण लाला है। वह यह जानता है कि इस इलाके में बोरिंग करने पर पानी की एक बूँद भी नहीं निकलेगी। फिर भी वह भोले-भाले किसानों को बहला-फुसलाकर अपना धंधा जमा रहा है। कलेक्टर से लेकर विधायक सांसद तक सभी जनता को मूर्ख बनाने में ही लगे रहते हैं। फिर भी मुख्यमंत्री अपने भाषण में जनता की तारीफें लूटने वाली बातें करते हैं और सामने से ऐसा प्रदर्शित करते हैं कि वे ही जनता के सच्चे हितैषी हैं भले ही पीठ-पीछे वही जनता के खून चूसने का काम करते हैं- "मैंने आज सरकार की तरफ से भाई मकईराम को फाइन अदा किया है। क्योंकि भाई मकईराम की अपनी सरकार, किसानों की सरकार तमाम कोशिशों और सफलताओं के बावजूद उसके पिता को आत्महत्या करने से नहीं रोक पाई। इस दोष को परिवार का मुखिया होने के नाते मैं अपने सिर लेता हूँ और यह संकल्प करता हूँ कि हम वे सारी वजहें ख़त्म कर देंगे जो एक भी किसान का ऐसा अंत करती हैं।"[20] जिन समस्याओं में किसानों को फंसाने का ज़िम्मा ही सरकारी तंत्र ने ले रखा हो, भला वही उसे क्यों दूर करना चाहेगा, भारी-भारी वादों का इस्तेमाल वह भोली-भाली जनता को मूर्ख बनाने में करती है।

पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' का रामप्रसाद जो पेशे से खेतिहर मजदूर है। किंतु उसके पास दो एकड़ ज़मीन भी है। दो एकड़ ज़मीन में तो परिवार का गुज़ारा होने से रहा जैसे-जैसे दूसरों के खेतों पर मजदूरी करके या बटाई पर ज़मीन लेकर अपने परिवार का गुज़ारा कर रहा है। फिर भी हर वक़्त कोई न कोई समस्या उसे घेरे ही रहती है- "रामप्रसाद खुद भी दूसरों के खेतों में कुछ काम करके थोड़ा बहुत जुटा

लेता और जैसे-तैसे टेर हो जाती थी। या कभी किसी की खेती अधबटिया से ले लेता। दिन-रात खटता, अपने खेत में भी और अधबटिया से लिए गए खेत में भी। कहने को किसान और काम से मजदूर।"[21] रामप्रसाद की दशा तो पहले से ही दयनीय है। खेतिहर मजदूरों का जीवन तो पहले से ही समस्याओं से भरा रहता है। हर विभाग में सब कर्मचारियों के वेतन में हर साल बढ़ोत्तरी होती है सारी वस्तुओं के भाव बढ़ते हैं, किंतु जिन वस्तुओं या अनाज को किसान उपजाता है उनके मूल्य में कोई बढ़ोत्तरी नहीं होती है। इसलिए किसान और खेत-मजदूर का जीवन अभावग्रस्त ही बना रहता है। इसी वर्ग को हर जगह समझौता करना पड़ता है। एक बार देश के प्रथम प्रधानमंत्री पंडित जवाहरलाल नेहरु ने कहा था-"अगर देश को विकास की तरफ बढ़ते देखना है तो गरीबों को और किसानों को ही सैक्रिफाइस करना होगा।"[22]

आज़ादी को इतने वर्ष हो गए आज भी हमारे देश में किसान और खेतिहर मजदूर ही समझौता कर रहे हैं। खेतिहर मजदूरों के सामने तो हमेशा रोज़गार की ही समस्या बनी रहती है। क्योंकि इनकी समस्या का जड़ ही रोज़गार का न मिलना है। इनकी हमेशा यही कोशिश रहती है कि किसी भी तरह से इनको पेट भरने के लिए अन्न मिलता रहे। वैभव सिंह के शब्दों में- "1911 में जमशेद जी टाटा भारत में भारी उद्योग की नींव डाल रहे थे। उसी के समानान्तर सर्वहारा वर्ग का उदय हो रहा था जो भारत की विशाल कृषक आबादी से निकलकर आये थे। भूखे-बेकार किसानों से निकले ये अकुशल श्रमिक किसी भी हालत में ज़िदा रहने की कोशिश करते थे और उनकी किसी मांग पर ध्यान न दिया जाता था। लेकिन रूसी क्रांति के बाद यह संभव हुआ कि उनके अधिकारों, संगठित होने की आवश्यकता आदि पर ध्यान दिया जाने लगा।"[23]

जब भी देश में आर्थिक मंदी की समस्या आती है तो सबसे पहले उसका प्रभाव मजदूरों पर पड़ता है। उनके सामने मजदूरी का संकट उत्पन्न हो जाता है और काम मिले भी तो उसका पारिश्रमिक बहुत ही कम कर दिया जाता है। सत्ता में आने से पहले तो मुख्यमंत्री खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को दूर करने का दावा करते हैं लेकिन उसके पश्चात उन्हें उनकी समस्याओं को दूर करने में कोई रूचि नहीं रह जाती है।

स्वतंत्रता के पश्चात प्रधानमंत्री चरण सिंह जो किसान एवं खेतिहर मजदूरों की समस्याओं पर गौर फरमाते रहे लेकिन सत्ता में आने के पश्चात उन्होंने उनकी तरफ कोई ध्यान नहीं दिया। सुकोमल सेन के शब्दों में- "प्रधानमंत्री चरण सिंह किसानों की दरिद्रता की बात करते रहे परन्तु उनके दुखों को कम करने का एक भी उपाय नहीं किया। उन्होंने किसानों के हित में एक भी नीति नहीं बनाई, यह बताने की भी कोशिश नहीं की कि भूमि का केन्द्रीकरण किसानों की दरिद्रता का मुख्य कारण है। ग्रामीण क्षेत्रों में दस प्रतिशत लोगों के पास उन साधनों का केवल 0.1 प्रतिशत (दशांस) है। उन्होंने तो खेत मजदूरों की अच्छी मजदूरी की बात की न किसानों के कर्जों को समाप्त करने की बात की। मजदूर वर्ग का विरोध करते हुए चरण सिंह ने वास्तव में भूस्वामी वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व किया और खेत मजदूरों और गरीब किसानों के हित की कोई बात नहीं की।"[24] खेतिहर मजदूर जिनके अंतर्गत भूमिहीन किसान, बंटाईदार किसान एवं सीमांत किसान शामिल हैं। रामप्रसाद वही सीमांत किसान है। जिसके पास नाम मात्र की ज़मीन है। वह खेत की बुआई के समय से ही लागत और बचत का अनुमान लगाता रहता है। सारा खर्च जोड़ने के बाद परिवार के खाने के लिए भी तो कुछ अनाज बचाना होता है। लागत और परिवार के पोषण के लिए बचाए अन्न के सिवा ऐसा कुछ भी उसके पास नहीं बचता कि वह परिवार का कोई और भी कार्य कर सके। इसके अलावा जो खेत उसने बंटाई पर ले रखा है उसकी लागत की चिंता सो अलग से ही है- "सामान्य रूप से दस हज़ार रूपये प्रति एकड़ की दर से किसान ठेके पर खेत लेता है एक फसल के लिए। एक एकड़ में उपजाता है अट्ठारह क्विन्टल या सत्ताईस हज़ार का गेहूं और लागत पन्द्रह हज़ार, साथ में दस हज़ार ठेके का मिला कर पच्चीस हज़ार रूपये। मतलब बचत दो हज़ार रुपये। इसलिए छोटे किसान का पूरा परिवार खेतों में मजदूर की तरह लगा रहता है। ताकि मजदूरी वाले पैसे को ही बचा सके।"[25]

देश में बैंकों द्वारा भ्रष्टाचार की ख़बरें आये दिन समाचार में आती रहती हैं। नीरव मोदी और विजय माल्या जैसे लोग बैंकों की संपति लेकर फरार हो जाते हैं। देश की सरकारें उनके खिलाफ कोई भी ठोस कदम नहीं उठाती हैं। किंतु हमारे देश का अन्नदाता जो स्वयं दुखों को सहता है। खेतिहर मजदूर जो अपने

श्रम से इन्हीं पूंजीपतियों का पेट भरते हैं। उनके नाम पर बैंकों से फर्जी नोटिस देकर इन पर क़र्ज़ थोप दिया जाता है। रामप्रसाद जिसने कभी बैंक से लोन लिया ही नहीं, फिर भी उसके नाम पर बैंक से जारी कर दिया गया कि उसने तीस हज़ार का लोन लिया है। अगर उसने निर्धारित समय तक बकाया राशि नहीं जमा किया तो उसकी ज़मीन कुर्की कर दी जाएगी- "सूचना पत्र कह रहा था कि रामप्रसाद ने उसकी दो एकड़ ज़मीन पर जो क्रेडिट कार्ड बनवाया था और उस क्रेडिट कार्ड से उसने जो तीस हज़ार रुपये निकाल लिए थे, वह राशि दिसंबर तक जमा करनी थी लेकिन अभी फ़रवरी भी खत्म हो रही है और उसने वह पैसा जमा नहीं किया है। इसलिए यह रेवेन्यु सर्टिफिकेट जारी किया गया है। और उसमे एक समय सीमा दी गयी है। अगर उसने समय सीमा में बैंक जाकर पैसा नहीं जमा करवाया, तो कुर्की की कार्यवाही की जाएगी। कुर्की। कुर्की शब्द कितना भयावह होता है, यह केवल और केवल भारत का छोटा किसान ही बता सकता है।"[26]

किसानों को महाजन, सूदखोर तो लूटते ही रहते हैं। साथ ही उनको सुविधा देने के लिए बैंक में जो योजनायें चलाई गयी हैं। बैंक उनका दुरूपयोग करके किसानों को अपने जाल में फंसा रही है। खेतिहर मजदूर जिनमें शिक्षा का अभाव है वे बैंक आदि के कार्यों को समझने में सक्षम नहीं होते हैं उन्हें तो छोटी से छोटी चीज़ पढ़ने के लिए भी दूसरों के पास जाना पड़ता है। रामप्रसाद निरक्षर है वह तो नोटिस भी गाँव के मास्टर साहब से ही पढ़ कर समझ पाता है। जो क़र्ज़ उसने लिया ही नहीं वो उस पर ज़बरदस्ती ही थोपा जा रहा था- "रामप्रसाद ने जब पूरा नोटिस मास्टर के मुंह से सुना, तो वह माथा पकड़ कर वहीं मास्टर साहब के पास बैठ गया। किसान क्रेडिट कार्ड ? उसने कब बनवाया ? और कब बैंक से पैसे निकलवाए? वह भी तीस हज़ार ? कब ? उसे कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि क्या किया जाये।"[27]

बैंक वाले खेतिहर मजदूरों से बहुत ही मुस्तैदी से क़र्ज़ वसूल करते हैं। रामप्रसाद ने तो कोई क़र्ज़ ही नहीं लिया था, फिर भी उसके नाम पर नोटिस जारी कर दिया बैंक ने। बैंक के कर्मचारियों और ऋण पास कराने वाले दलाल आपस में मिलकर किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के नाम पर फर्जी तरीके से लोन

पास करवा लेते हैं और बैंक से नोटिस मिलती है मजदूरों को, यानि की क़र्ज़ लिया है बिचौलिये ने और उसकी भरपाई करनी होती है मजदूरों को। रामप्रसाद जैसे किसान इन्हीं बिचौलिए और बैंक की धोखाधड़ी का शिकार होते हैं- "बिचौलिये और हमारे ही बैंक के लोग मिलकर सारा खेल करते हैं। 6 महीने बाद पूरा पैसा जमाकर देते हैं और फिर उसी खाते में एक बार फिर से लोन ले लेते हैं। पैसा जमा हो जाता है, तो किसी को कोई परेशानी नहीं होती। किसान को पता तक नहीं चलता कि उसके नाम से कोई किसान क्रेडिट कार्ड बना है।"[28]

रामप्रसाद जो पहले से ही ज़हालत का जीवन जी रहा है ऊपर से फर्जी लोन कहाँ से अदा कर पायेगा। बैंक मेनेजर से लेकर कलेक्टर तक को पता है कि किसानों के साथ धोखा हुआ है उन पर ज़बरदस्ती क़र्ज़ मढ़ा जा रहा है। उन्हें यह भी पता होता है कि इन सब के पीछे किसी बिचौलिये का हाथ है फिर भी ऐसे दलालों को ढूढ़ने और सजा देने की वजाय किसानों को ही अपने शोषण का जरिया बनाते हैं। रामप्रसाद जिले के कलेक्टर श्रीराम के आगे हाथ-जोड़कर रोता गिड़गिड़ाता है कि वो उसे इस समस्या से छुटकारा दिलाए फिर भी कलेक्टर को उस पर कोई दया नहीं आती। वह अपने को बचाने के लिए राकेश पांडे से कहते हैं- "यहाँ के सारे अर्दलियों को भी समझा दो कि उत्सव के बाद इस प्रकार का कोई किसान यहाँ आता है आवेदन लेकर तो उसे मुझसे मिलने न दें, और कैंपस में ही नहीं खड़ा होने दो। सीधे कहो कि बैंक में जाईये यह बैंक का मामला है, इसमें कलेक्टर का कोई काम नहीं है। यह जो आज खड़ा था सूखा पानी का किसान, दिन-भर का भूखा, अगर वहीं पर बेहोश होकर गिर जाता, मर जाता, तो ...? हम क्यों बिना मतलब के यह सिरदर्द झेलें। उसकी हालत देखी थी, अब मरता कि तब मरता। मोटी-मोटी हैडिंग छपती समाचार पत्रों में कि धोखाधड़ी के शिकार किसान ने कलेक्टर कैंपस में कलेक्टर के सामने अपनी जान दी। खुद तो मरता, साथ में हमें भी मरवा जाता'। श्रीराम परिहार ने कुछ हिकारत के साथ कहा।"[29]

यह है हमारे शासनतंत्र की सच्चाई जो सारा सच जानते हुए भी किसानों से कोई हमदर्दी नहीं रखते हैं। उन्हें सिर्फ इस बात की चिंता है कि उत्सव आयोजन के लिए बजट को किस तरह से कहाँ-कहाँ पर लगाना है। जिससे अधिक से अधिक बचत कर अपनी जेबों को गर्म किया जा सके। मजदूर और किसान को मरना है तो मरे उससे उन्हें कोई फर्क नहीं पड़ता है। रामप्रसाद अपने साथ कागजों का पुलिंदा लेकर दर-बदर भटक रहा है किंतु उसकी कहीं कोई सुनवाई नहीं होती है। उसे डर है कि उसके पास जो थोड़ी सी ज़मीन है वह भी कुर्की कर दी जाएगी क्योंकि बैंक मजदूरों और किसानों के साथ क़र्ज़ वसूली में कोई रियायत नहीं बरतती है। रविभूषण के शब्दों में- "किसान की ऋण ग्रस्तता पर विचार करने वालों ने यह माना है कि बैंक से कहीं अधिक ब्याज गैर-बैंकिंग वित्तीय कंपनियां लेती हैं, जिनकी भूमिका और एकजुटता पर कम ध्यान दिया जाता है। किसानों पर बैंक कार्य सर्वाधिक है। बैंक से बाहर का क़र्ज़ तीन लाख करोड़ है। बैंक जितनी मुस्तैदी से किसानों से ऋण वसूलता है उतनी मुस्तैदी से कॉर्पोरेटों से नहीं।"[30]

पंकज सुबीर के उपन्यास 'अकाल में उत्सव' के रामप्रसाद के सामने अभी बैंक की धोखाधड़ी का लोन है ही। एक समस्या ख़त्म नहीं हुई कि बारिश से उसकी सारी फसल तबाह हो गयी। उसके जीवन में समस्याएं परत दर परत खुलती जा रही हैं। पटवारी रामप्रसाद को धमका रहा है कि बैंक का क़र्ज़ तो तुम्हारे ही नाम पर है और वो चुकाना भी तुम्हीं को पड़ेगा। रामप्रसाद तो एक बंटाईदार किसान यानि कि खेतिहर मजदूर है। बारिश से नष्ट हुई फसल की चिंता मन ही मन उसे खाए जा रही है। बैंक का क़र्ज़ ऊपर से फसल की बर्बादी कहाँ से वह क़र्ज़ चुका पायेगा। सारे किसान कलेक्टर ऑफिस के बाहर अपनी गेहूं के बालियों को लेकर खड़े हैं। अपने सामने से किसानों को हटाने के लिए कलेक्टर की तरफ से उन्हें बोल दिया जाता है कि पटवारी जाकर किसानों की नष्ट हुई फसल का जायजा लेगा और सबको मुआवजा मिलेगा। बंटाईदार किसान की सबसे बड़ी समस्या है कि उसने जिसकी ज़मीन को बंटाई पर ले रखी है उसमें लागत तो मजदूर को ही लगानी पड़ती है। मालिक को तो सिर्फ मुनाफे से मतलब है। रामप्रसाद पटवारी के पूछने पर बताता है कि उसने जो भी ज़मीन बंटाई पर ले रखी थी उसकी सारी फसल नष्ट हो

गयी है। यहाँ तक कि अब उसके घर में खाने तक के लिए अनाज नहीं बचेगा। पटवारी उससे कहता है- "अधकरी को मुआवजो थारे थोड़ी मिलेगो, जिसकी ज़मीन है उसको मिलेगो। तू तो अपनी ज़मीन की बात कर। जो थारे नाम से है वो ज़मीन। कित्ती ज़मीन है थारे पास ? दो एकड़ और तीन डेसीमल। ऋण पुस्तिका में देखते हुए पटवारी अपने रजिस्टर में लिखा-पढ़ी करने लगा। 'पन साब बोई तो मैंने ही थी उस ज़मीन में भी फसल। खाद-पानी, बीज, सब तो मैंने ही कियो थो। नुक्सान तो म्हारे हुओ है, ज़मीन मालिक तो अभी भी म्हारे माथे पर खडयो है, अपना पैसा लेने। मुआवजा भी वो इ ले लेगो तो म्हारो नुकसान को कइ होयगो साब ? रामप्रसाद ने अपनी व्यथा सुनाई।"[31] रामप्रसाद या कोई भी किसान कितना भी रोये गिड़गिड़ाए पटवारी या कोई भी सरकारी अफसर उनकी कोई भी बात नहीं सुनता।

मजदूर की सम्पूर्ण लागत और मेहनत उस दिन ख़राब हो जाती है जब उसकी फसल नष्ट हो जाती है। किंतु फसल नष्ट होने पर उसका मुआवजा मिलता है ज़मीन के मालिक को और नुकसान होता है मजदूर को। यही दशा रामप्रसाद की है। अपनी ज़मीन का मुआवजा प्राप्त करने के लिए भी उसे पटवारी को घूस देनी पड़ती है। हमारे समाज में भ्रष्टाचार का बोल-बाला इतना बढ़ गया है कि फसल भी ख़राब हो तो मुआवजा प्राप्त करने के लिए भी घूस देना पड़ता है। तभी पटवारी पीड़ित की श्रेणी में उस मजदूर का नाम अंकित करेगा। रामप्रसाद तो पहले से ही विपत्तियों और समस्याओं का मारा है उस बेचारे के पास घूस की राशि कहाँ से आएगी लेकिन उसकी इन समस्याओं को सुनने वाला कौन है। उसने पटवारी से लाख मिन्नतें की लेकिन पटवारी ने उससे साफ़ शब्दों में कह दिया- "कहने से कुछ नहीं होता, देने से होता है। भेंट पूजा करनी पड़ती है रिपोर्ट लिखवाने के लिए। कुछ लाया है क्या ? लाया हो तो दे दे, मै ग्राम सेवक को दे दूंगा, वह ठीक से रिपोर्ट बना देंगे। वैसे नहीं बनाता कोई भी रिपोर्ट।"[32]

हमारे देश में हर जगह लूट का व्यापार चल रहा है। जिसमें आमजन अधिक फंस रहे हैं। हमारा देश वैसे भी अन्य देशों की तुलना में प्रति व्यक्ति आय में बहुत पीछे है। उनमें भी किसान और उसके बाद खेतिहर मजदूर ये तो अपने गुजारे लायक राशि भी कमाने में असमर्थ हैं। ऐसी स्थिति में यदि इस वर्ग से

रिश्वत ली जाती है तो वह कैसे दे पायेगा। खेतिहर मजदूर और बंटाईदार किसान तो पहले से ही मजदूरी पर जीवित रह रहे हैं। फसल और मजदूरी ही जिनके जीवन जीने का सहारा है यदि वही किसी कारणवश उनसे छिन जाये तो उनके लिए जीवन और भी मुश्किल हो जाता है। रामप्रसाद पहले ही अपनी समस्याओं में घिरा हुआ है ऊपर से मुआवज़े की राशि पाने के लिए भी उससे रिश्वत मांगी जा रही है- "देख भाई पैसे का काम पैसे से ही होता है, बात से नहीं होता। तू यहाँ खड़े होकर कितनी ही बात कर ले लेकिन, काम तो होगा पैसों से ही। देख ले अभी व्यवस्था हो जाये तो ठीक है, नहीं तो व्यवस्था करके आ जाना तहसील में मेरे पास। अभी तो टाइम लगेगा रिपोर्ट बनने में। तेरी कितनी ज़मीन है, दो एकड़ और तीन डेसीमल, तो उस हिसाब से दो हज़ार तीन सौ रुपये लेकर आ जाना। पटवारी ने समझाते हुए कहा।"[33]

बैंक और सरकारी कर्मचारी होते तो हैं किसानों और मजदूरों की मदद करने के लिए लेकिन मदद के नाम पर ये उनकी समस्याओं को बढ़ाने का काम ही करते हैं। रामप्रसाद ने तो बैंक से क़र्ज़ भी नहीं लिया फिर भी उसके नाम पर नोटिस जारी कर दिया गया। बारिश से फसल नष्ट हो गई उस पर भी उसे मुआवजा नहीं मिल सकता क्योंकि उसकी स्वयं की ज़मीन नहीं है।

बैंक और सरकारी कर्मचारियों का भ्रष्टाचार सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में भी दिखाई पड़ता है। युनुस नाम का किसान है काम से वह खेतिहर मजदूर है। वह पानी की समस्या को दूर करने के लिए अपने खेत में कुआं खुदवाना चाहता है किंतु इसके लिए पैसे चाहिए। युनुस तो पहले से ही मजदूरी करके अपनी जीविका चला रहा है कुआं कहाँ से खुदवाएगा। उसने निश्चय किया कि वह और उसका परिवार स्वयं मिलकर खेत में कुआं बनाएंगे। सुबह से शाम तक युनुस का पूरा परिवार खेत में कुआं खोदता रहता। उनकी मेहनत उस दिन बेकार चली गई जब उनके खेत में कुँए वाली जगह पर भारी काला पत्थर निकल आया- "खुदाई का काम चलते-चलते तीन महीने हो गए थे। कुँए में छ: सात हाथ पर काला पत्थर निकल आया था। पत्थर भी ऐसा स्याह और कड़क की गैंती की चोट पड़ते ही चिंगारियां फूटती और गैंती का अगला हिस्सा मुड़कर टेढ़ा हो जाता। गैंती चलाते-चलाते युनुस और यास्मिन पसीने से नहा

जाते। उनके हाथों के छाले सूखकर छोटी-छोटी गठानों में बदल गए थे। पोर-पोर दर्द से भर गया था। ठंडी या गरम हवा ज़रा भी शरीर को छूती तो दर्द के मारे कराह निकल जाती। कई दिनों की हाड़तोड़ मेहनत के बाद भी चट्टान दो-चार इंच से ज्यादा नहीं दरकी।"[34]

खेत में कुँए की खुदाई में युनुस के परिवार ने जी-जान लगा दिया, फिर भी उनकी मेहनत कोई रंग न ला सकी। वह जब मजदूरी के लिए काम की तलाश में जनपद गया तो वहां पर उसके पैरों तले की ज़मीन खिसक गयी। जब उसे पता चला कि उसके नाम पर कूप निर्माण योजना के तहत एक लाख का क़र्ज़ निकाला गया है। युनुस ये खबर सुनकर हक्का बक्का रह जाता है क्योंकि खेत में कुँए की खुदाई का काम तो वह और उसका परिवार करता था फिर कर्ज किसने लिया। जब वह अपने सरपंच से इस धांधली के बारे में जानना चाहा तो उन्होंने उसे फटकारते और धमकाते हुए अपना और सरकारी भ्रष्टाचार का बखान इन शब्दों में किया- "हाँ, मैंने तमारा सबका अंगूठा लगा के पैसा हेड़िया। तमारे जहां जानो है जाओ। कलेक्टर पास जाओ, मुखमंतरी पास जाओ और हो सके तो प्रधानमंत्री पास भी चलिया जाओ।..... मै एकलो पैसा थोड़ी खाऊँ हूँ। बैंक से लगाके तो जनपद का बाबू, इंजीनियर, सीओ, कलेक्टर सबके पैसा दूँ हूँ। कौन से शिकायत करोगा। पैसा कौन नी खाय। मुखमंतरी तगाद रिश्वत ले है। बस उनका हिसाब से पैसा पोंचाने की अकल होनी चाहिए।"[35]

एक खेतिहर मजदूर और किसान के समक्ष यदि कोई सरकारी कर्मचारी इस तरह का धौंस दिखाए तो उस पर क्या गुजरती है। यह युनुस ही जानता है। युनुस को बैंक के नोटिस के साथ ही यह भी नोटिस मिला है कि यदि वह निर्धारित समय तक लोन नहीं चुका पाया तो उसकी ज़मीन की नीलामी कर दी जाएगी। युनुस तो पहले ही क़र्ज़ में डूबा है और बैंक की नोटिस पाकर उसका दर्द दुगना हो गया। बैंक के फर्जीवाड़े की ऐसी अनेक घटनाएँ सामने आती है जिसमें किसान क़र्ज़ तो लेता है 6000 का और उसे बना दिया जाता है साठ हज़ार। जाने माने पत्रकार पी.साईंनाथ के अनुसार- "अनेक मामलों में यह देखा गया है कि 8000 रुपए की ऋण राशि में से छोटे सरकारी अधिकारियों और स्थानीय बैंक अधिकारियों के

हिस्से में लगभग 3000 रुपए चला जाता है। लेकिन कर्जदाता को एक दस्तावेज़ पर अंगूठे का निशान लगाकर यह ऐलान करना पड़ता है कि उसे 8000 रूपए मिले। उसे इसी राशि पर ब्याज की रकम अदा करनी पड़ती है जबकि यथार्थ में उसे केवल 5000 रुपया ही मिल सका। अगर इस पर गौर करें तो हम पाएंगे कि उसे 20 प्रतिशत के हिसाब से ब्याज देना पड़ा जो व्यापारिक बैंकों की निर्धारित दरों से भी ज्यादा है। इसके अलावा उसे वह तीन हज़ार रुपया लौटाना पड़ता है जो उसने ऋण के रूप में कभी लिया ही नहीं।"[36]

सर्वप्रथम तो बैंक वाले खेतिहर मजदूर को अपने जाल में फंसाकर उन पर कर्ज थोपते हैं तत्पश्चात मजदूर उससे छुटकारा पाने के लिए जब कोर्ट-कचहरी का चक्कर लगाता है तो उसे वहां भी वकीलों और बाबुओं की जेब गर्म करनी पड़ती है क्योंकि बिना घूस लिए वहां भी उसकी कोई सुनवाई नहीं होती है। बैंक और सरपंच की धोखाधड़ी का शिकार युनुस लोन को चुकाने के लिए पुन: लोन लेने की सोच रहा है। लेकिन बैंक में यदि कोई मजदूर डिफाल्टर घोषित कर दिया जाता है अर्थात जिसने निकाले गए लोन को समय से अदा न किया हो तो उसे बैंक दोबारा लोन नहीं देती है। किसी तरह से यदि लोन देने के लिए तैयार भी हो जाये तो उसके लिए भी रिश्वत देनी पड़ती है। रामेश्वर युनुस को समझाते हुए कहता है- "यूँ तो तम सब डिफाल्टर हो। नियम से तो कोई बैंक तमारे लोन नी दे सके। पर यो मनीजर बोहत भलो और बात को धनी है। उने खुल्ली की है एक केस पे पांच हज़ार लेगो।"[37] आए दिन हमें अखबारों में बैंकों के फर्जीवाड़े की खबरें सुनाई देती हैं। बैंक देश के पूंजीपतियों और अमीरों को आगे बढ़ाने में अपना भरपूर सहयोग देती है। उनके द्वारा लिए गये कर्ज की रकम कभी सबके सामने नहीं आने पाती है। क्योंकि सरकार ने इन पूंजीपतियों और बैंकों को भ्रष्टाचार और लूट फ़ैलाने की खुली छूट दे रखी है। लालच, बेइमानी और भी कई बुराईयां मानव समाज में हमेशा से व्याप्त रही है किंतु आधुनिक पूंजीवादी और वैश्वीकरण के दौर में ये अपने उच्चतम शिखर पर पहुँच गयी हैं। पूंजीवादी विकास के दौर में मनुष्य में भोग करने की प्रवृति दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसी कारण मनुष्य की मानवीय प्रवृतियों का लोप हो रहा

है। मनुष्य लगातार सफलता पाने की लालच में लूट, खसोट, छल-कपट तथा जहाँ तक हो पाता है कानून व्यवस्था को अपने हिसाब से तोड़ने मरोड़ने की कोशिश में लगा रहता है। यह इस दौर में बदलते परिवेश के कारण है। इन परिस्थितियों में हमारा कृषक समाज और खासकर खेतिहर मजदूर बिलकुल भी नहीं फिट बैठता यही कारण है कि वह शोषण का शिकार है।

विकास के दौर में सरकार के पास औद्योगिक घरानों के लिए बजट होता है। वह पूंजीपतियों के कर्ज को माफ़ कर सकती है। किंतु किसानों की समस्याओं को नहीं दूर करना चाहती है। वह गरीब मजदूरों की समस्याओं को बैंक और सरकारी कर्मचारियों की मदद से और भी बढ़ाने का काम करती है। डॉ. सुरजीत बराड़ ने इस बारे में स्पष्ट करते हुए लिखा है- "सरकार लगभग हर साल करोड़ों रूपए टैक्स की छूट औद्योगिक घरानों को देती है। यहाँ अदानी ग्रुप के बारे में बात करना मुनासिब होगा कि देश का यह पहला ऐसा कारोबारी है, जिसे किसी विदेशी सौदे के लिए भारतीय स्टेट बैंक से 2014 में एक बिलियन डॉलर (लगभग 6000 करोड़ रूपए) दिया गया, जबकि पहले ही इस ग्रुप के सिर पर बैंकों का 65000 करोड़ रुपया खड़ा है। सरकार की मिलीभगत के कारण अदानी ग्रुप ने बैंकों का कर्ज लौटाया ही नहीं। तथ्य ये भी है कि देश में अमीर और भी अमीर हो रहे हैं।"[38]

ज़ाहिर सी बात है कि समाज के जिस वर्ग को सरकार ही गर्त में ढकेलना चाहती है वह कहाँ तक प्रशासन से लड़ पाएगा। एक न एक दिन वह शासन तंत्र के सामने घुटने टेक ही देगा। जैसा की युनुस के साथ भी हुआ। उसकी लाख कोशिशों के बावजूद वह यह सिद्ध नहीं कर पाया कि खेत में कुंए की खुदाई वह और उसके परिवार ने मिलकर की है।

राजनीति, जिसे एक तरह से कानूनी रूप से भ्रष्टाचार और लूट करने की मान्यता मिली हुई है। क्योंकि ये राजनेता सफेद पोशाक के पीछे कोई भी काम करें इन पर अंगुली उठाना आसान नहीं होता है। कोई व्यक्ति कितना ही ईमानदार क्यों न हो राजनीति में पहुंचते ही उसका अपना अलग रंग ही हो जाता है। आज़ादी के बाद से ही समाज में भ्रष्टाचार का मुद्दा एक चर्चा का विषय रहा है। इस भ्रष्टाचार में हमारे

देश के सांसद, विधायक, पुलिस, कोर्ट-कचहरी एक तरह से सब शामिल होते हैं इसलिए इसे समाज से ख़त्म करना और भी मुश्किल काम है।

एस.आर.हरनोट के 'हिडिम्ब' उपन्यास में शावणू का पूरा जीवन ही मंत्री के कारण तबाह हो जाता है। शावणू अपनी जिस ज़मीन को देव का प्रसाद समझकर उस पर खेती कर रहा है। वह मंत्री की आँखों को चुभ जाती है। समाज में बुराई तब ज्यादा पनपती है जब बुरा करने वालों का और भी लोग सहयोग करते हैं। पटवारी अपना प्रमोशन पाने की लालच में शावणू की ज़मीन मंत्री को देने के लिए हर हथकंडे अपना लेता है- "शावणू की जो वास्तविक ज़मीन थी उसके साथ कई बीघों का एक चरांद भी था। पटवारी ने उसे भी शावणू के नाम ही लगा दिया।...जब यह बात मंत्री को पता चलेगी तो वह कितना खुश होगा। इसका सारा श्रेय भी तो उसी को जायेगा। जो काम मंत्री की फौज कई बरसों में भी न कर सकी वह काम आज उसने पलक झपकते ही कर दिया। उसके एवज में प्रमोशन ही मिल जाए ? यह सोचते हुए उसने सारे कागज़ तैयार किए और शावणू को पकड़ा दिए।"[39]

शावणू की ज़मीन को हथियाने के लिए पटवारी के साथ मिलकर मंत्री ने क्या-क्या हथकंडे नहीं अपनाए वह विकास की आड़ में शावणू से ज़मीन लेना चाहता है। मंत्रियों को ऐसे कई अधिकार मिले हैं, जिनका प्रयोग करके वो आमजन की कोई भी वस्तु आसानी से हथिया सकते हैं। नेता अपने इन अधिकारों का प्रयोग अपने निजी स्वार्थ के लिए भी करते हैं। वह शावणू की ज़मीन को हड़पकर उस पर खुद का व्यापार करना चाहते हैं और नाम विकास का दिया जा रहा है। कुछ भी हो इस ज़मीन को शावणू से हड़पने के लिए उन्होंने सारे हथकंडे अपना लिए जब बात सीधी न बनी तो मंत्री के शुभचिंतकों ने गुंडागर्दी का मार्ग अपनाया। शावणू के बेटे को मार दिया गया। उसकी पत्नी का बलात्कार कर उसे पागल बना दिया। शावणू के हँसते खेलते संपन्न परिवार को मंत्री ने जड़ से नष्ट कर दिया। इन सब कारनामों में मंत्री की मदद पटवारी ने पूरी शिद्दत से की। वह पहले तो शावणू को पैसों का लालच देता है- "देख शावणू ! तू जानता है म्हारे मंत्री को तेरी ज़मीन कितनी पसंद है। फिर उनकी पसंद सिर-माथे। बोल कितणा पैसा लेणा है तेरे

को। अभी बोलेगा तो शाम को मुंह मांगे दाम तेरे हवाले बोल-बोल।"[40] समाज में भ्रष्टाचार का शिकार आमजन किसान मजदूर और समाज के निम्न वर्ग के लोग होते हैं। क्योंकि ये न तो उसके खिलाफ कोई कदम उठा सकते हैं न ही इनकी कोई सुनता है। इसलिए ये मजबूर होकर शासन सत्ता पूंजीपति के द्वारा दिए जा रहे यातनाओं को सहते जा रहे हैं। यही हाल शावणू का होता है। जो मंत्री के द्वारा दिए जा रही यातनाओं को चुपचाप सह रहा है क्योंकि उसके पास और कोई रास्ता भी नहीं है। यदि वह उनके खिलाफ शिकायत भी करना चाहे तो किससे करेगा आखिर उसे फंसा भी तो वही लोग रहे हैं, जिनके पास वह शिकायत दर्ज करवाने जाएगा। यही कारण है वह अपनी समस्याओं से खुद ही जूझ रहा है।

भ्रष्टाचार और शासनतंत्र समाज में सिर्फ आमजन को ही अपना शिकार बनाते हैं क्योंकि इस वर्ग के पास इनका विरोध करने की ताकत नहीं होती है। ये चुपचाप इनके अत्याचार को सहते रहते हैं। किसान हो या खेतिहर मजदूर दोनों ही शासनतंत्र के इस रवैये का शिकार हो रहे हैं। हाँ किसान के पास ज़मीन है तो वह किसी तरह के भ्रष्टाचार का शिकार होता है और खेतिहर मजदूर जिनमें भूमिहीन, बंटाईदार और सीमांत किसान हैं, वो दूसरी तरह से उनके अत्याचारों को सहने पर मजबूर हैं। लेकिन बचता दोनों में से कोई भी नहीं है जिसे शासनतंत्र की मार न पड़ती हो।

5.2 सरकारी नीतियां और किसान एवं खेतिहर मजदूर की दशा

देश को आजाद हुए सात दशक से अधिक का समय हो गया, फिर भी भारत में किसान बदहाली का जीवन जीने को मजबूर हैं। इन दशकों में जो भी सरकारें आयीं और गयीं, इनमें से अधिकतम ने किसान और खेतिहर मजदूरों को अपनी राजनीति का जरिया बनाकर सिर्फ अपना उल्लू ही सीधा किया है। किसान और खेतिहर मजदूरों पर समाज में राजनीति तो स्वतंत्रता के बाद से ही होती रही किंतु यह इनका दुर्भाग्य ही है कि इस वर्ग को लेकर कोई ऐसी नीति नहीं बन पाई है जो इनकी समस्याओं को कम कर सके। किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के हितों एवं उनकी तरक्की के बारे में तो देश का हर नेता दुहाई देता रहा लेकिन व्यावहारिक स्तर पर इनके लिए ऐसा कोई कार्य नहीं किया गया जिससे इनकी समस्याएं कम

हुई हों। ये नेता और चुनावी पार्टियां अपनी बातों में किसानों एवं खेतिहर मजदूरों को चाहे जितना शामिल किए करें अप्रत्यक्ष रूप से ये इनको ठगने का कार्य ही करती हैं। संजय रोकड़े के अनुसार- "आज भी किसान जग की जोर के समान है, जो भी दल केंद्र या राज्य की सत्ता पर काबिज़ होता है वह किसान को परेशान करता है। असल में अब किसान को राजनीति नहीं बल्कि नीति की दरकार है, लेकिन यह अभी भी कहीं नहीं दिखाई देती है।"[41] किसानों एवं खेतिहर मजदूरों का विकास न होने का सिर्फ एक ही कारण है कि देश में कोई भी शासक वर्ग उनकी समस्याओं को सचमुच दूर नहीं करना चाहता है। वह सिर्फ चुनावी वादे करता है। जिनसे एक बार जनता का मन जीतकर किसी तरह से सत्ता पर कब्ज़ा ज़मा लें।

चुनाव के हर पांच साल बाद पार्टियों को किसानों की याद आती है। क्योंकि किसान देश की सत्ता दिलाने का मजबूत हथियार हैं। यदि सरकार को किसानों के मदद के बगैर सत्ता हासिल हो जाये तो वे न तो चुनाव के पहले न चुनाव के बाद किसानों एवं मजदूरों को अपने आसपास फटकने ही न दें। सत्ता में आने के बाद एक पार्टी दूसरी पार्टी द्वारा बनाई गई योजनाओं को हटाने और अपने द्वारा किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के हितों में नई योजनाएं बनाने का काम ही करती रहती हैं। लेकिन इनमें से ठीक तरह से कारगर कोई भी योजनायें नहीं होती हैं। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास का युनुस जो सरकार द्वारा बनाई गयी नीतियों का ही शिकार है। किसानों एवं मजदूरों के लिए जो भी नीतियाँ लागू की जाती हैं वह उन पर अमल करने की कोशिश तो करता है लेकिन ठीक जानकारी न होने के कारण वह उनके दुष्परिणामों को झेलता रहता है। भारतीय किसान जीवनभर अपनी किस्मत ही आजमाता रहता है। जब भी सरकार की तरफ से कोई योजना आती है तो वह प्रफुल्लित हो उठता है। उसे लगता है कि शायद इस तरह का रास्ता अपनाने से उसकी समस्याएं कम हो जाएँ लेकिन ऐसा कभी नहीं होता है। युनुस पानी की कमी को दूर करने के लिए अपने दो एकड़ खेत भीमा बा के पास गिरवी रख देता है। वह बोरिंग तो करवाता है, लेकिन उसमें से पानी नहीं निकलता है। वह अब तक सीमांत किसान था और आज से पूर्णत: भूमिहीन हो गया, जिसका गुज़ारा सिर्फ मजदूरी करने से ही हो सकता है। दिनेश जब युनुस से पूछता है-

"अब क्या करोगे ? तुमने तो ट्यूबवेल के चक्कर में दो एकड़ ज़मीन भी गिरवी रख दी" ! दिनेश को सोच-सोच के सिहरन हो रही थी। उन्दरा का छोरा-छोरी दर खोदने सिवा और कई कर सके। मजूरी करांगा। घर भर का कल से भीमा बा के यहाँ दाड्की करने जाएँगा।"[42] जब तक किसान के पास ज़मीन रहती है, तब तक उसके पास उम्मीद भी बनी रहती है। वह अपने खेत और फसल के सहारे कम से कम अपने सपनों को तो जीता है, लेकिन खेतिहर मजदूर बनते ही उसके सपने भी मर जाते हैं क्योंकि वह अब सपना भी किसके सहारे देखे। अब तो उसकी ज़िन्दगी भी एक काम खोजने से दूसरे काम खोजने तक सिमट कर रह जाती है। वे कभी बंटाई पर ज़मीन लेकर खेती करते हैं तो कभी दूसरे के खेतों में मजदूरी करने की आस लगाए बैठे रहते हैं। ये मजदूर जब खेतों में काम नहीं मिलता तो सरकार द्वारा मजदूरों के लिए जो अन्य योजनाएं चलाई गई है उसमें काम खोजने के लिए चक्कर लगाते रहते हैं। आशुतोष के अनुसार- "जिनके पास खेती की ज़मीन नहीं होती है और केवल दो से तीन कमरों का मकान बनाने की ज़मीन होती है उन भूमिहीन किसानों की अवस्था भूमि वाले किसानों से ज्यादा खराब है। वे अपनी रोजी-रोटी के लिए बंटाई की खेती पर निर्भर रहते हैं। खेती में फसलों की बुआई, निराई, गुड़ाई और कुछ अन्य मौकों पर ही रोज़गार उपलब्ध होता है। इससे भूमिहीन किसान और खेत मजदूर बाकी समय बेरोजगार रहते हैं। ऐसे समय में वे दिहाड़ी मजदूरी, मनरेगा में अस्थाई मजदूरी या गांवों के अन्य छोटे-मोटे काम जैसे घर बनाना, ईट भट्ठों पर मजदूरी करके गुजर-बसर करते हैं।"[43]

युनुस के पास भी जब तक ज़मीन थी तब उसमें पैदावार बढ़ाने और भी कई तरह की तरकीबों के बारे में सोचता रहता है लेकिन एक ही झटके में उसके सारे सपने चूर-चूर हो गए क्योंकि अब वह किसान से मजदूर बन गया है। उसके पास अब जीविकोपार्जन का सिर्फ एक ही रास्ता है और वह है मजदूरी। उसका पूरा परिवार भीमा बा के यहाँ मजदूरी करता है। उसके गाँव में सड़क निर्माण का कार्य शुरू होने वाला है। युनुस मन ही मन सोचता है कि शायद अब उसे कहीं और से कर्ज लेने की जरुरत न पड़े सड़क परियोजना में मजदूरी करके ही वह कुएं में टोटे लगवाने भर का इंतजाम कर लेगा। मजदूर के सपने कभी

नहीं पूरे होते हैं। युनुस रोज सोचता कि जल्द से जल्द सड़क का काम शुरू हो और वह मजदूरी करने जाये। 'रोजगार गारंटी योजना' के तहत मजदूरों को काम देने का पहल शुरू किया गया है। युनुस सब मजदूरों के साथ मिलकर जॉब कार्ड बनवाता है और इंतजार करता रहता है कि कब सड़क का काम शुरू हो और वह मजदूरी करने जाये। लेकिन हमारे देश की सबसे बड़ी खामी यही है कि यहाँ कोई भी योजनायें ईमानदारी से लागू नहीं की जाती हैं। युनुस सड़क निर्माण कार्य के लिए छ: महीने से इंतजार कर रहा है। जब वह जनपद में जाकर पता करता है कि सड़क निर्माण का कार्य कब शुरू होगा तो उसे वहां पता चलता है कि सड़क निर्माण कार्य में जो भी कार्ड धारक हैं सबके नाम पर सौ दिन की हाजिरी लगी हुई है और सबके खाते में सात-सात हजार रुपये भी भेज दिए गए हैं। यह बात सुनकर युनुस समेत जितने भी मजदूर काम के लिए जनपद गए थे सबके पैरों तले की ज़मीन खिसक गई। हमारे यहाँ नीतियों का खामियाजा खेत-मजदूरों को ही भुगतना पड़ता है। एक तो किसी मजदूर को न तो काम मिला न मजदूरी मिली दूसरी बात उन्हें फटकार भी सुननी पड़ी- "तुम जैसे लोगों के कारण ही सरकार ने नगद मज़दूरी बांटना बंद किया है। जब मन करे ऊँचा मुंह करके शिकायत करने पहुँच जाओ। हमको मजदूरी नहीं मिली साब। सरकार ने पक्का इंतजाम किया है। इस बार मजदूरी के चेक तुम्हारे बैंक खाते में जमा हुए हैं। अब कह दो कि सरपंच और बैंक मैनेजर ने मिलके हमारे पैसे निकाल लिए।"[44]

ये तो हैं हमारे देश में सरकारी नीतियों की सच्चाई। सरकार नीतियां चलाती है और सरकारी कर्मचारी उन नीतियों में ही किसानों एवं मजदूरों को फंसा देते हैं। योजनायें तो मजदूरों के लिए चलाई जाती हैं और फायदा उठाते हैं सरकारी कर्मचारी। इसी प्रकार से सरकार की तरफ से गरीब जनता के लिए बी.पी.एल.कार्ड की योजना लेकर आई थी जिसके तहत गरीब जनता को सस्ते मूल्य पर राशन, तेल सरकार उपलब्ध कराएगी किंतु इस योजना का लाभ भी वास्तव में उसके जरूरतमंद तक नहीं पहुंचा। उसका लाभ भी सरकारी पदों पर बैठे लोग उठाते हैं। कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में इस योजना की सच्चाई से रूबरू करवाया गया है। पूरे आदिग्राम गाँव के निवासियों में से सिर्फ 27 लोगों

के नाम पर बी.पी.एल. कार्ड जारी किया गया है। इसका साफ़ मतलब यही है कि गाँव में सिर्फ इतने लोग ही गरीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर रहे हैं। जबकि सच्चाई कुछ और ही है- "यह सच है कि गाँव में हरिजनों, ईसाईयों और मुसलमानों को मिलाकर सात सौ से ज्यादा ही लोग गरीब थे। इनमें उनकी संख्या अधिक थी जिनके पास खेती नहीं थी और जिनका गुज़ारा दूसरे के खेतों या जगदलपुर और रानीरहाट के ईट भट्ठों पर मजदूरी करके चलता था। कुछ नलहाटी बाज़ार में 'भैन' (ठेला-रिक्शा) भी खींचते थे, दुकानों पर काम करते थे। आदिग्राम में भी हाईवे के पास पन्द्रह-बीस दुकानें भी, पान-बीड़ी, सिगरेट के ठेले थे, चाय की गुमटियां थीं। जिन्होंने जैसे-तैसे ड्राइविंग सीख ली थी, वे सिलीगुड़ी, नलहाटी लाइन में ट्रकें चलाते थे। मुंशीग्राम में आइसक्रीम की एक फैक्ट्री थी जहाँ कुछ लोग मजदूरी करने जाते थे। औरतें भी खेतों पर मजदूरी कर लेतीं।"[45]

सरकार जिन लोगों के लिए बी.पी.एल. योजना चलाती है वही इस योजना से वंचित कर दिए गए हैं। क्योंकि हमारे देश में योजनायें तो चलाई जाती हैं किंतु उनमें पारदर्शिता नहीं रहती है। गरीब जनता को पहले तो इन योजनाओं की सच्चाई का पता नहीं चलता और जब उनके सामने सच्चाई आती है तो भी वह कुछ कर नहीं सकती है। आदिग्राम में गरीबों की संख्या 27 से बहुत अधिक है किंतु सरकार एक साथ बी.पी.एल. योजना का लाभ इतने लोगों को नहीं दे सकती इसलिए उसने सिर्फ 27 लोगों के नाम पर ही कार्ड जारी किए हैं। क्योंकि सच में सरकार ने ये योजना गरीबों की गरीबी दूर करने के लिए नहीं चलाई है। उसे तो सिर्फ ये दिखाना है कि वह गरीबों की कितनी बड़ी हितैषी है। बी.पी.एल. कार्ड की सच्चाई को उपन्यास की इन पंक्तियों में बखूबी दिखाया गया है- "बी.पी.एल. कार्ड के बारे में भी सरकार की चालाकी अब गाँव वालों से छिपी नहीं रही। तीन-चार दिन पहले ही रघुनाथ ने एक छोटी-सी जनसभा की थी जिसमें कोई सौ-डेढ़ सौ लोग आये थे। सभा में यह खुलासा किया गया है कि सरकार विकास मद में अपने बजट में कटौती करने के लिए ही एक काल्पनिक रेखा खींच देती है और कहती है कि वह सात सौ लोगों में से सिर्फ सत्ताईस लोगों को ही वह तमाम सुविधाएँ देगी जो एक गरीब का हक है।"[46]

हमारे देश में किसानों एवं खेतिहर मजदूर की समस्याओं पर बातें तो हर कोई करता हैं किंतु उनके हल का कोई उपाय नहीं निकाला जाता है। खेतिहर मजदूर को मजदूरी दिलाने के उद्देश्य से जिस 'रोजगार गारंटी योजना' की शुरुआत की गई उसका कार्यान्वयन ठीक तरह से न हो पाने के कारण खेतिहर मजदूर की दशा में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। धीरेन्द्र झा ने अपने लेख 'खेत मजदूर: हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप'- "खेत मजदूरों के सवाल को कुछ कल्याणकारी योजनाओं, रोजगार योजनाओं के जरिए गरीबी उन्मूलन तक सीमित कर देती है। विभिन्न राज्यों की रिपोर्टें दर्शाती हैं कि रोजगार योजनायें अप्रभावी साबित हुई हैं। इसके तहत खर्च की गयी राशि मजदूरों तक शायद ही पहुँच पाती है। आजकल 'राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी कानून 2005' का काफी जोर-शोर से प्रचार किया जा रहा है। रोजगार देने वाली तमाम योजनाओं को इसमें शामिल कर दिया गया है और कानूनी तौर पर 100 दिन प्रति परिवार रोज़गार की गारंटी की व्यवस्था की गयी है। बिहार में तो गरीबी विरोधी तंत्र व नौकरशाही इतनी मजबूत है कि मजदूरों की यह 'रोज़गार गारंटी योजना' अफसर-ठेकेदार-अभियंताओं की लूट-खसोट योजना बनती नज़र आ रही है। आलम यह है कि रजिस्ट्रेशन जॉब कार्ड के लिए मारामारी हो रही है और प्रशासन सोया हुआ है। दिलचस्प बात यह है कि योजना के शुभारंभ के दिन बिहार के मुख्यमंत्री नीतीश कुमार ने अपने हाथों से जिन 59 मजदूरों को 'जॉब कार्ड' दिया उन मजदूरों को भी आज तक काम नहीं मिला है।"[47]

सरकार द्वारा गरीब किसानों के लिए समय-समय पर अनेक कामगार योजनायें चलाई जाती हैं। किंतु पर्याप्त जानकारी और उसका सही-सही प्रचार-प्रसार न हो जाने के कारण ये योजनाएं सुचारू रूप से चल नहीं पाती हैं। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास का युनुस एक जुझारू भूमिहीन किसान है। वह परिस्थितियों के आगे कभी घुटने नहीं टेकता है। उसके सामने एक के बाद एक कई सारी मुसीबतें आती रहती हैं किंतु वह उनसे भरपूर लड़ने की कोशिश करता है। वह अपनी ज़मीन भीमा बा को गिरवी रखकर स्वयं उनके यहाँ मजदूरी करता है। फिर भी वह सरकार की जो भी नीतियां आती हैं उन पर अमल करके अपनी गरीबी को दूर करना चाहता है। युनुस के गाँव में पशु पालन विभाग के अधिकारी आए और

उन्होंने किसानों को उन्नत किस्म के पशु पालने के लंबे-लंबे भाषण सुनाए। भाषण का केंद्र बिंदु था एचएफ प्रजाति की गाय। जो हर दिन चौबीस लीटर दूध देती है। युनुस के सामने अपनी गरीबी और क़र्ज़ की समस्या हल करने का इससे अच्छा उपाय और क्या हो सकता है। वह जैसे-तैसे करके पंद्रह हज़ार रुपये की व्यवस्था करके पशुपालन विभाग वालों के पास पहुँच गया। गाय आने तक तो युनुस की ख़ुशी का कोई ठिकाना नहीं था। किंतु जैसे ही गाय ने बछड़े को जन्म दिया युनुस की सारी ख़ुशी लुट गई क्योंकि वह बछड़ा खेती-किसानी के किसी काम का नहीं था। युनुस अपनी समस्या को लेकर पशु-पालन विभाग पहुँच जाता है- "युनुस ने कन्नोद पहुँचकर यह बात पशु-पालन विभाग के साहब को बताई तो वह बहुत देर तक खों-खों कर हसतें रहे फिर उन्होंने बताया कि एचएफ के बछड़े को खंदुर नहीं होता है। वह किसानी के काम का नहीं है।"[48]

युनुस को गाय खरीदने से पहले उसके बारे में कोई जानकारी नहीं थी और न ही पशुपालन विभाग के लोगों ने उसे ऐसी जानकारी दी थी। दरअसल युनुस ने जो गाय पाल रखी थी वह जर्सी प्रजाति की थी। वह मालवा के गर्म मौसम के लिए अनुकूल नहीं थी। उसका दूध भी बहुत पतला होता है। उस दूध के खरीददार भी नहीं मिलते। युनुस ने जिस उद्देश्य से गाय को ख़रीदा था उसका कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं हुआ उल्टा उसे बारह हज़ार घाटे का सौदा करके 4 हज़ार रुपये में गाय बेचनी पड़ी। उसे कोई लाभ तो नहीं मिला हाँ कर्ज का बोझ और भी अधिक चढ़ गया। सरकार दुग्ध व्यवसाय को बढ़ावा देने के लिए इस तरह की योजनायें चलाती रहती है किंतु वह इसके लिए अनुकूल परिस्थितियां नहीं उपलब्ध करवा पाती है। रघबीर सिंह के अनुसार- "1970 के बाद कृषि विरोधी और उद्योग के हित में नीतियाँ अपनाकर सब कुछ उलटा-पुल्टा कर दिया। लघु कृषि के संरक्षण का मुद्दा तो एजेंडे से सिरे से ही ख़ारिज कर दिया गया। इसके अलावा कृषि उत्पाद को बढ़ा देने वाले बीज और पशु नस्ल सुधार की योजनाओं को देश की अवस्था के अनुसार ढाल कर लागू करने के बजाय ऊपरी तौर पर लागू कर दिया गया।"[49]

दुग्ध व्यवसाय और पशु नस्ल सुधार के लिए सरकार द्वारा लाई गई इस योजना को देश में कई प्रदेशों में लागू किया गया किंतु कहीं से भी इसके सफल होने की सूचना नहीं सुनाई पड़ती है। सिर्फ इससे किसानों की समस्याएं बढ़ने की ही घटना सुनाई देती हैं। कहीं-कहीं तो इन योजनाओं से जुड़े हर व्यक्ति और अधिकारी भी अपने कर्त्तव्य को लेकर समर्पित थे। फिर भी यह योजना सफल नहीं सिद्ध हुई।

पशुपालन योजना की यही नीति संजीव के 'फ़ांस' उपन्यास में भी दिखाई पड़ती है। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह द्वारा वर्ष विदर्भ के किसानों को दुधारू गाय देने की योजना चलाई गई। जिसमें किसानों को नौ हज़ार रुपये देना पड़ता है बाकी का खर्च सरकार वहन करेगी। सरकारी कर्मचारियों के मुख से ऐसी गाय की चर्चा सुनकर सभी किसान लालायित हो गए। वे किसी भी कीमत पर गाय को खरीद लेना चाहते थे। तुकाराम को गाय मिली तो वह फूले नहीं समाया। वह अपने पास गाय को देखकर सोचता कि जिनको योजना के तहत गाय नहीं मिली उसे तुकाराम से रंज होता होगा। तुकाराम को गाय के चारे से लेकर दूध तक किसी बारे में भी जानकारी नहीं थी। उसे बाद में पता चलता है कि इन गायों को खिलाने के लिए हरे चारे की आवश्यकता होगी। यह तो विदर्भ की धरती का दुर्भाग्य ही है कि सूखी धरती पर हरा चारा कहाँ से उत्पन्न कर पाएंगे। किसी तरह से कोई चारे का इंतजाम भी कर दे तो गाय के दूध का कोई खरीदार ही नहीं मिल रहा है- "दूध लेकर तुकाराम कहाँ-कहाँ नहीं भटका ! रेट काफी कम। लेकिन दूध का कोई खरीदार नहीं। या शायद ये नए दुग्ध विक्रेता थे जिन्हें बाजार के तौर तरीके नहीं मालूम। कमोवेश यही हाल बाकी मनमोहिनी गायों का था। जिस दूध के लिए कभी बच्चे तरसते थे कभी सपने में भी नहीं सोचा था कि दूध में डुबकी लगाने के भी दिन आयेंगे। लेकिन डुबकी भी ऐसी लगी कि दम फूलने लगा। गाय न हुई, जी का जंजाल हो गयी। इतने दूध का क्या करें ? कोई लेता-देता तो है नहीं, खपाये कहाँ। फिर खिलाएं कैसे, पैसा तो निकलता नहीं।"[50]

योजना तो किसानों के हित में ही थी लेकिन इसका स्थानीय स्तर पर नियोजन गलत हुआ। जहाँ पर फसल के लिए पानी उपलब्ध नहीं है, पहले से ही किसान कर्ज में डूबे हुए हैं। दूध के ग्राहक न उपलब्ध

हों वहां पर ऐसी गाय पालना मुसीबत की ही बात है। वैसे भी देशी धरती पर विदेशी गाय पालना कोई सरल कार्य नहीं है। विदेशी गाय के लिए विदेशी चारा और विदेशी जलवायु किसान कहाँ से उपलब्ध करा पायेगा। अंत में गरीब किसानों ने घाटे का सौदा कर गायों को बेंच दिया- "कितनो को धन्य कर दिया गो माता ने। पहले तो खरीदारों को हरियाणा से 10-15 हज़ार की गाय का पच्चीस हज़ार दिखाया, दस हज़ार वहीं। फिर खिलाने-पिलाने से लेकर रख-रखाव तक जहाँ भी स्कोप मिला, कोई कोर-कसर नहीं छोड़ा भाई लोगों ने। महीने भर में ही शिकारी सेठों ने सूंघ लिया, ये आदिवासी और दूसरे दरिद्र गाय को संभाल नहीं पा रहे हैं, मुक्त होना चाहते हैं, 30 हज़ार की गाय मोल-तोल कर चार पांच हज़ार में खरीद लाये। निर्धन किसानों की गायें सेठों के खूँटे बंध गयी।"[51]

सरकार द्वारा किसानों के लिए चलाई गई पशुपालन योजना तो उनकी गरीबी दूर करने के लिए चलाई गई थी, किंतु इस योजना ने उन्हें और भी कर्ज के दलदल में ढकेल दिया। सरकार द्वारा चलाई गई पशुपालन योजना देश के कई राज्यों के किसानों को गरीबी से निजात दिलाने के लिए लागू की गई। ऐसी ही योजना 'उड़ीसा' के 'नवापण' में लागू की गई। जिसका उद्देश्य था कि गरीब किसानों को दुग्ध एवं पशुओं की नई नस्ल विकसित किया जायेगा। सरकार की यह योजना 'भारतीय एग्रो इंडस्ट्रीज फाउंडेशन' के तहत कार्य कर रही थी। इस योजना से जुड़े लाभार्थी एवं अधिकारी अपने पूरे जी-जान से लगे रहे। योजना के तहत गाय पालने वाले लाभार्थी को सरकार की तरफ से एक-एकड़ भूमि भी उपलब्ध कराई गई जिससे उस पर वे गाय के लिए चारे का इंतजाम कर सकें। लाख कोशिशों के बाद यह योजना भी विफल ही रही। पी.साईनाथ के अनुसार- "यह परियोजना भी उन अनेक परियोजनाओं में से एक थी जिससे इस इलाके का विनाश हुआ। जिनको 'लक्ष्य' के रूप में चिह्नित किया गया उनसे किसी भी तरह का सलाह-मशविरा नहीं किया गया। यहाँ दुग्ध परियोजना की कोई मांग ही नहीं थी। अधिकारियों को यह महसूस नहीं हो सका कि लोगों की दिलचस्पी सुबाबुल के पेड़ों में नहीं बल्कि रोज़गार पाने में थी। फिर भी इस तरह की गलतियाँ बार-बार की जाती हैं।"[52]

सरकार ने गरीबों को अस्पताल में मुफ्त चिकित्सा देने की योजना चला रखी है, जिससे किसी गरीब की मृत्यु दवा के अभाव के चलते न हो। किंतु उस कूपन का लाभ भी गरीबों को समय पर नहीं मिल पाता है। वह मुक्त चिकित्सा का कार्ड बनवाने के लिए दफ्तरों के चक्कर लगाते रहते हैं। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में रुक्मणि अपने पिता का ऑपरेशन करवाना चाहती है जिसके लिए उसके पास पैसे नहीं हैं। वह अपने भाई से लाख मिन्नतें करती है कि वह ताउजी का इलाज करवा दे लेकिन उसका भाई तैयार नहीं होता है। बाद में वह अपने पिता के ऑपरेशन का पैसा कानूनी दांव पेंच खेलकर खुद हासिल कर लेता है और पिता को उसकी हाल में मरने के लिए छोड़ देता है। रुक्मणि कानून की ऐसी व्यवस्था देखकर दंग रह गई। उसके सामने उसके भाई के बारे में तरह-तरह की बातें होती रहती हैं। लोग कानून व्यवस्था के बारे में बातें करते हुए कहते हैं- "यही धांधली पीला कूपन में भी चल रही है। जिनका बनना चाहिए वी विचारा तो सचिव का आगे-पीछे घूम-घूम के थक जाए पर उनका कूपन नी बने और कित्ता ही ऐसा है जिनकी बड़ी-बड़ी जोत है, हवेलियां बंधी है, दरवज्जे ट्रेक्टर खड़ियो है, उनका पीला कूपन बनेल है।"[53]

भारत में तो स्वास्थ्य पर वैसे ही सरकार के पास बहुत कम बजट होता है दूसरा गरीबों के लिए तो उसकी योजनाएं सिर्फ कागजों तक सीमित होती है। असल में तो उन योजनाओं का फायदा समाज का धनी वर्ग ही उठाता है क्योंकि दफ्तरों में इन्हीं की सुनवाई होती है। सरकार तो वैसे भी सार्वजनिक क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवाओं पर कटौती ही करती रहती है। इस वजह से गरीबों की चिंता और बढ़ जाती है क्योंकि निजी क्षेत्र की स्वास्थ्य सेवाओं का वहन करना उनकी क्षमता के बाहर की बात होती है। स्वास्थ्य सेवाओं में कटौती करके सरकार परोक्ष रूप से निजी क्षेत्र की सेवाओं को बढ़ावा दे रही है और गरीबों को मौत के दलदल में ढकेल रही है। पी.साईनाथ के अनुसार- "1992 -1993 के बजट में केंद्र सरकार ने राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए निर्धारित कोष में लगभग 43 प्रतिशत की कटौती की। इसी बजट में आबादी के सबसे ऊपरी हिस्से के 10 प्रतिशत लोगों को करों में लगभग 4800 करोड़ रुपये की रियायत

दी गई। इसके फलस्वरूप अन्य स्वास्थ्य कार्यक्रमों को भी मार सहनी पड़ी। इसे आप 'ट्रिकिल डाउन थ्योरी' कह सकते हैं जिसका अर्थ यह हुआ कि गरीबों से लो, संपन्न लोगो को दो और इसके बाद साँस रोक कर देखते रहो कि इसका कितना हिस्सा टपकते हुए गरीबों तक पहुँचता है।"[54]

सरकार जब अपनी नीतियों का प्रचार करती है तो उसमें वह सिर्फ उसकी अच्छाइयों को ही दिखाती है। उसके कमजोर पक्ष का प्रचार नहीं करती है। 'कालीचाट' उपन्यास का युनुस सरकार की नीतियों पर चलकर अपने को क़र्ज़ मुक्त करना चाहता है लेकिन वह जितनी बार नए हथकंडे अपनाता है उतनी बार उसमें फेल हो जाता है। अबकी बार वह मुर्गी पालन का व्यवसाय करता है। मुर्गी पालन विभाग के अफसरों ने किसानों को इस योजना के बारे में बताया कि सिर्फ पांच सौ रूपए में सौ चूजे और दाने सरकार की तरफ से दिए जायेंगे। साथ ही उन्होंने वहां मौजूद लोगों को लाभ का ऐसा पाठ पढ़ाया कि उन्हें सच में ऐसा लगने लगा कि सरकार हम गरीबों को गरीबी के दलदल से बाहर निकालना चाहती है। युनुस अपने को सरकार का कृपापात्र मानकर पांच सौ रूपए में चूजों को खरीद लेता है। चूंकि युनुस ने जब से अपनी ज़मीन गिरवी रख रखी है तब से वह अपनी जमीन को छुड़ाने के लिए सौ तरकीबें सोचता रहता है उसे भीमा बा से छुड़ाने के लिए। इसीलिए वह मुर्गीपालन का व्यवसाय अपनाना चाहता है। उसे यह चिंता हमेशा सताती रहती है कि वह किसान से मजदूर बन गया है। इसलिए वह मुर्गीपालन व्यवसाय का सहारा ले रहा है। मुर्गियों को खरीदने के बाद उसका परिवार सौ तरह के सपने संजोना शुरू कर देते हैं। लेकिन एक मजदूर की खुशी की उम्र ज्यादा लंबी नहीं होती है। युनुस की खुशियाँ और उसकी उम्मीदें भी जल्द ही समाप्त होने को हैं। युनुस ने मुर्गीपालन विभाग वालों से मुर्गियां तो खरीद लीं, लेकिन उन्होंने युनुस को मुर्गियों को पालने और उनके रख-रखाव के बारे में कोई जानकारी नहीं दी। युनुस भी इस धंधे में नया था। उसे यह तक नहीं पता था कि मुर्गियों को रखे कहाँ और उन्हें खिलाए क्या। उसकी पत्नी यास्मिन ने सारे चूजों को लकड़ी के पिंजरे में रख दिया। मुर्गियों को खिलाने का चारा तक उनके पास नहीं था। सुबह होते-होते सारे चूजे मर गए। मुर्गीपालन विभाग वाले चारा लेकर भी तब आये जब सारी मुर्गियां

मर चुकी थीं- "उका दो दिन बाद संझा घड़ी एक आदमी सरकारी जीप में से पच्चीस-पच्चीस किलो की दो बोरी उतार के ओसारा में धरने लगियो। मैंने पूछी भय्या इसे कई है ? उ बोलियो तुम्हारी मुर्गियों के लिए दाना है। मैंने कहा तमारे पेलां दाना लाना था और फिर मुर्गी। तमने तो उलटो करियो। उ केहन लगियो भय्या हम क्या करें। अफसर ने कहा मुर्गियां पहुँचाओ, हम मुर्गियां ले आये। आज कहा दाना ले जाओ, हम दाना ले आये। अब हमारी क्या गलती ? मैंने भी सोची, सही बात है। यो तो अपना जैसो नौकर आदमी है। ईकी बिचारा की कईं गलती। मैंने उके पानी-वानी पिलायो।"[55]

सरकार की योजनायें सिर्फ कागजों तक ही रहती हैं। गरीब किसान एवं खेतिहर मजदूरों को आवास देने के लिए आवास योजना के तहत वह गरीबों को आवास राशि देती है। राशि के नाम पर भीख स्वरुप 300 रूपए। 300 रूपए में कौन सा आवास निर्माण होता सकता है ? यह बात सिर्फ हमारी सरकारें ही बता सकती हैं। लेकिन सरकारें तो अपने चेहरे पर किसानों और खेतिहर मजदूरों के सच्चे हिमायती होने का मुखौटा लगाए रहती है जिससे उनकी पहचान जनता को न हो सके। संजीव के 'फांस' उपन्यास में देशपांडे ने लोगों को सरकारी योजनाओं की सच्चाई से रूबरू कराया- "मै भंडारा जिले की हकीक़त बता रहा हूँ-जिस सरकार से आपने आत्महत्या करने का परमिशन माँगा है, उसी के अधिकारी हवाई जहाज से ऊपर ही मुआयना कर नाप गये-कितना पानी। 300 रू. अनुदान मिले हैं मकान बनाने को। खुद के टॉयलेट तक के लिए लाखों और शेतकरी को पूरे मकान के लिए 300 ! चूहे की बिल भी न बने ! वाह रे तुम्हारा शेतकरी प्रेम ! कितनी मेहरबान है सरकार। भर दिया दामन वादों से ! वादे ! वादे ! वादे ! ।"[56]

इसी तरह से किसानों को सरकार की तरफ से जो अनुदान राशि या मजदूरों को मजदूरी आदि दी जाती है वह उन तक पहुँच ही नहीं पाती। क्योंकि सूची में जिन किसानों के नाम दिए जाते हैं असल में वे सब फर्जी होते हैं। और नाबार्ड जैसी संस्था या सरकारें बिना कोई जांच पड़ताल किए सीधे बैंकों को पैसा भेज देती हैं। बाद में पता चलता है कि पैसे जिनको दिए गए हैं असल में वो कोई किसान हैं ही नहीं। और असल किसान जिनके लिए ये राशि दी गयी है वो राशि उन तक तो पहुंची ही नहीं। यही हाल सरकार

द्वारा चलाई गई बाकी योजनाओं का भी होता है। अनुराग मौर्य के अनुसार- "बीमा, ऋण माफ़ी, पेंशन, बचत आदि में पास होने वाली प्रस्तावित राशियाँ भी किसानों तक पहुँचने के बजाय कृषि दलालों, बाजारियों या सरकारी दफ्तरों में ही आपस में बाँट ली जाती हैं। या फिर सरकार संस्थागत तरीके से अपने चहेतों तक पहुंचा देती है।"[57] सरकार ने किसानों को खाद, पानी, बिजली पर सब्सिडी की व्यवस्था बना रखी है ताकि किसानों पर लागत का बोझ कम पड़े। किंतु उन्हें यह सब्सिडी न मिलकर पूंजीपति ही इसका लाभ कमाते हैं। इसी तरह की समस्या से एम.एम.चंद्रा का उपन्यास 'यह गाँव बिकाऊ है' भी हमें रूबरू करवाता है- "ये सरकार, वो सरकार पूंजीपतियों की सरकार है। यह किसानों को सब्सिडी तो देती है, लेकिन वह किसानों को नहीं मिलती, बल्कि सीधे पूंजीपतियों के खातों में चली जाती है। हम किसान इस भुलावे में आ गए हैं कि ये सरकारें हमारे लिए काम कर रही है। इसके लिए हम जिम्मेदार हैं।"[58]

जब से भारत सरकार ने डब्लयू. टी. ओ. से समझौता किया तब से भारत में नई आर्थिक नीति लागू हुई है। इसे दूसरे शब्दों में हम निजीकरण, उदारीकरण और वैश्वीकरण भी कह सकते हैं। अब कृषि उत्पादन से लेकर फसल मूल्य तक किसान तय नहीं कर सकता है। यह काम भी बाज़ार कर रहा है। खेती-किसानी आज बाज़ार के हवाले कर दी गई है। इसलिए आज किसानों की दशा इतनी दयनीय हो गई है। किसान हो या खेतिहर मजदूर दोनों के लिए सरकार समय-समय पर नीतियाँ बनाती रहती है। यह अलग की बात है कि ये नीतियाँ कभी कारगर नहीं होती हैं। किसानों के पास अपनी भूमि होती है इसलिए सरकार उनके लिए उत्पादन बढ़ाने से लेकर कम लागत में कृषि हो सके ऐसी नीतियाँ बनाती हैं। इसी प्रकार खेतिहर मजदूरों को मजदूरी के लिए संसाधन उपलब्ध कराने संबंधित योजनायें चलाई जाती हैं।

5.3 उपन्यासों में अभिव्यक्त विस्थापन और पलायन की समस्या

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसानों और खेतिहर मजदूरों की अनेक समस्याओं में से एक विस्थापन और पलायन की समस्या है। ये समस्याएं इतनी बड़ी होती है कि इनका दर्द सिर्फ वही किसान और मजदूर समझ सकते हैं जिन्होंने अपने घर और गाँव को छोड़ने का दर्द झेला हो। 1947 के

बंटवारे ने लोगों को अपने घर और देश को छोड़कर जाने को मजबूर कर दिया था तब से आज तक विस्थापन और पलायन की समस्या ने लोगों का दामन नहीं छोड़ा है। हर साल बड़ी संख्या में किसानों और खेतिहर मजदूरों को अपने घर से बेघर होना पड़ता है। जब किसी व्यक्ति की ज़मीन या घर को विकास आदि कार्यों के लिए सरकारी योजनाओं के तहत अधिग्रहित कर लिया जाता है तो उसे विस्थापन कहते हैं। स्वतंत्रता के पश्चात देश में औद्योगीकरण को बढ़ावा दिया जाने लगा। विकास आदि कार्यों के लिए सड़क, रेलमार्ग, बांध, पॉवर प्रोजेक्ट आदि की स्थापना के लिए किसानों की ज़मीनें अधिग्रहित की जाने लगी। बड़े-बड़े उद्योगपतियों के फैक्ट्रियों को स्थापित करने के लिए किसानों की हजारों-हजारों एकड़ ज़मीन सरकार द्वारा अधिग्रहित कर ली जाती हैं। क्योंकि कॉरपोरेट जगत की फैक्ट्रियों के लिए भी ज़मीनें हमारे देश की सरकारों के जिम्मे से ही हड़पी जाती हैं। इस सन्दर्भ में 'जन संघर्ष समन्वय समिति का विचार' है- "1991 और 1995 के बाद से कानूनों में जो बदलाव किया गया है उसके चलते विभिन्न परियोजनाओं के लिए बड़ी मात्रा में ज़मीन अधिग्रहित करने के रास्ते खुल गए। इसकी शुरुआत 'स्पेशल इकनोमिक जोन' (सेज) के नाम से हुई। देश का कोई भी बड़ा उद्योगपति घराना ऐसा नहीं है जिसे सेज के नाम पर किसानों की हजारों-हजारों एकड़ उपजाऊ ज़मीन, अधिग्रहित करके न दे दी गई हो। किसी-किसी प्रान्त में पूरा का पूरा जिला और ब्लाक ही सेज के नाम घोषित कर दिया गया है। उस जिले या ब्लाक में कोई भी उद्योगपति जहाँ भी ऊँगली उठा देगा कि अमुक ज़मीन हमें चाहिए, वह उसे अधिग्रहित कर के दे दी जाएगी।"[59]

हमारे देश में कभी राष्ट्रीय राजमार्गों को चौड़ा करने के लिए तो कभी किसी कॉरपोरेट जगत की बड़ी परियोजनाओं के लिए ज़मीन अधिग्रहण का कानून सरकार द्वारा लाया जाता है। कभी छह-लेन तो कभी आठ-लेन सड़कें बनाने के लिए किसानों की ज़मीनें अधिग्रहित की जाती है। इन परियोजनाओं की शुरुआत सरकारी और निजी कंपनियों की भागेदारी में की जाती है और सरकार का काम ज़बरन भूमि को अधिग्रहित कर कंपनियों को सौंपना होता है। कितना दर्द भरा जीवन किसानों और मजदूरों का होता है

जिन्हें सरकार की इन विकास की योजनाओं के चलते अपनी ज़मीन और घर से बेदखल होना पड़ता है। ये लोग अपनी आजीविका से वंचित होकर बदहाली का जीवन जीने को मजबूर होते है। जहाँ इन्हें भरपेट भोजन तक नहीं नसीब होता है। ऐसे लोग बीमारी तथा बेरोजगारी और भी अन्य कई समस्याओं से ग्रसित जीवन जीते हैं। यह सब सिर्फ विकास की मार झेलने वाले किसानों और खेतिहर मजदूरों को सहना पड़ता है। और उन्हें यह बताया जाता है कि ये सब उनकी प्रगति के लिए किया जा रहा है। पी.साईनाथ के शब्दों में- "1951-90 के दौरान दो करोड़ सोलह लाख लोगों को इन्हीं स्थितियों का सामना करना पड़ा और ऐसा केवल बांधो और नहरों के कारण हुआ। इसमें अगर खदानों के सिलसिले में हुए विस्थापन के शिकार 21 लाख लोगों को और जोड़ दिया जाये तो यह समूची आबादी कनाडा की आबादी के बराबर हो जाएगी। उद्योगों, ताप बिजली घरों, वन्य जीवों के लिए संरक्षित प्रदेशों और रक्षा प्रतिष्ठानों के कारण कम से कम बीस लाख चालीस हज़ार लोगों को अपने घरों से बेदखल होना पड़ा। इन सबको जोड़ें तो पता चलता है कि लगभग दो करोड़ साठ लाख भारतीयों को विकास की मार झेलनी पड़ी।"[60]

कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास की मूल समस्या ही किसानों और खेतिहर मजदूरों को उनकी ज़मीन हड़प कर बेदखल करने की है। आदिग्राम के किसानों को कंपनी के नुमाइंदे अपनी तरफ से बहला फुसला कर उनकी ज़मीनें हड़पने में लगे हुए हैं। भोल-भाले किसानों को तो यह तक नहीं पता है कि उनकी ज़मीनें आखिर हड़पी क्यों जा रही हैं। कंपनी को तो सिर्फ किसानों की ज़मीनें चाहिए उन्हें उनके सुख-दुःख एवं समस्याओं से कोई लेना-देना नहीं है। कंपनी के नुमाइंदों को किसी भी तरह से किसानों की अधिक से अधिक ज़मीन पर कब्ज़ा करके अपने आपको काबिल सिद्ध करना है। उन्हें इससे कोई मतलब नहीं कि किसान बेघर होते हैं या विस्थापित होते हैं- "शाबाश ! तुम्हें पता भी है कि तुम्हें जिस एरिया को आइडेंटीफाई करना है, वह है कितना ? दो हफ्तों में दो किसानों से बातें हुई तुम्हारी। हमें उन्नीस हज़ार एकड़ चाहिए, दो बिस्वा नहीं। यू शुड बी फास्ट, यू नो ?..... तो एक तरफ तो बढ़ा-चढ़ाकर कंपनी को लिखो और दूसरी तरफ दिन-रात लोगों को मोबिलाइज करने में लग जाओ, समझे ? ..... और

हाँ याद रखो, अपने आपको किसी भी तरह के कमिटमेंट से बचा के रखना है तुम्हें। फिलहाल स्टेट गवर्नमेंट की तरफ से ऐसा कोई निर्देश नहीं मिला है हमें ! या हद से हद यह वर्वल आश्वासन दे सकते हो कि केमिकल हब के बैठने के बाद उन्हें कॉन्ट्रैक्ट बेसिस पर मजदूरी दी जाएगी।"[61]

जब भी सरकार को किसानों की ज़मीन हड़पनी होती है तो सरकार की तरफ से उन्हें तरह-तरह के लालच दिए जाते हैं। आज भी हमारे देश का किसान न तो इतना पढ़ा-लिखा है और न ही जागरूक कि वह सरकार की इन सारी बातों की सच्चाई को समझ पाए। इसलिए सरकार और कंपनियों की तरफ से उन्हें कभी नौकरी तो कभी किसी सुरक्षित स्थान पर बसाने के वादे किए जातें हैं किंतु ये वादे पूरे नहीं किए जाते हैं। एक बार योजना शुरू होने के लिए ज़मीनें अधिग्रहित करने के बाद इन किसानों और मजदूरों को कोई पूछता भी नहीं है। फिर भी भोले-भाले किसानों और मजदूरों को तो ऐसा ही लगता है कि ये सारे कार्य सचमुच विकास के लिए है, और इनके माध्यम से उन्हें भी अच्छा जीवन जीने का अवसर दिया जा रहा है। ये वादे होते ही इतने मज़बूत हैं कि कोई भी सीधा-साधा इंसान इसमें फंस जाय। इसी तरह से कंपनी के नुमाइंदों द्वारा आदिग्राम वासियों को भी झूठे वादों के झांसे में फंसाया जा रहा है- "आदिग्राम में जब कारखाना लगेगा तो इलाके का सर्वांगीण विकास होगा। आज की तारीख में एक-एक बिस्वे में एक घर के चार-चार लोग खेती करते हैं। नतीजा ? दो जून का भात भी ठीक से नसीब नहीं होता। फटा-चीथड़ा पहनते हैं। बात-बात पर झगड़ा सिर फुटौव्वल करते हैं। जब कारखाने में नौकरी लगेगी तो सबका दुःख-दलिद्दर दूर होगा। हर महीने सात तारीख को वेतन मिलेगा ही मिलेगा। न सूखे-बरसात की फिकिर, न फसल को कीड़ा-पाला लगने का डर। मैं कहता हूँ कि एक बार जब कारखाना बैठ जाएगा तो फिर आप देखेंगे कि यह आदिग्राम, अपना पुराना आदिग्राम नहीं रह जायेगा।"[62]

राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास में कासीनाथ भी गाँव के लोगों को तरह-तरह के लालच देता है। किसी तरह से गाँव के किसान उसकी बातों के बहकावे में आ जाएं और वह उनकी जमीन पर कब्जा करके उन्हें गाँव से बाहर ढकेल दे। वह लोगों से कहता है कि सीमेंट की फैक्ट्री खुलने से गाँव के

लोगों को चार पैसे का रोजगार मिलेगा उन्हें मजदूरी के लिए दर-बदर भटकना नहीं पड़ेगा। गाँव में स्कूल खुलने से गाँव के बच्चों की शिक्षा-दीक्षा अच्छी हो जाएगी। कासीनाथ के लाख लालच देने के बावजूद गाँव के किसान अपनी जमीन कंपनी को देने को राजी नहीं है। तब गाँव वासियों को कासीनाथ के आदमियों ने धमकाना शुरू कर दिया। वह गाँव के लोगों को यह बताता है कि शासन सत्ता की शक्ति कितनी बड़ी होती है- "ये जो सर्वे टीम आई है इधर आज उसका मतलब येई है कि अगर बंटाईदारों ने अपनी मनमर्जी से जमीन न बेची तो कासीनाथ ज़बरजस्ती सरकार से इस पर कब्ज़ा करवा लेगा। कब्जा करने का कानून बना देगा। उसके हाथ में कानून बनाने की पावर जनता ने उसको दी है। ये सर्वा टीम आखिरी बार हमको समझाने को आई है। कानून बनाके सारे बंटाईदारों को उनकी ज़मीन की कीमत सरकार दे देगी। सरकार कोई बी ज़मीन अपने कब्ज़े में ले सकती है।"[63]

सरकार अपने अधिकार के तहत किसानों और मजदूरों की ज़मीन पर जबरन कब्ज़ा कर सकती है और उन्हें बेघर कर सकती है। सरकार की तरफ से भूमि अधिग्रहण या अन्य किसी भी कारण से विस्थापित किसानों और मजदूरों के जो आंकड़े जारी किए जाते हैं वो भी सही नहीं होते हैं। सच्चाई तो यह है कि जिन परियोजनाओं के तहत किसानों और मजदूरों को विस्थापित होना पड़ता है, उनकी मांग तो कभी किसान और मजदूर करते ही नहीं। वे तो सिर्फ अपनी ज़मीन से जुड़े रहना चाहते हैं। इन परियोजनाओं के लिए विस्थापित लोगों की सही जानकारी भी सरकार के पास नहीं होती है। कई तो ऐसी परियोजनाएं भी सरकारी नीति के तहत आती हैं जिनकी जानकारी असल में आम जनता को होती ही नहीं है तो उस परियोजना के तहत विस्थापित आंकड़े कहाँ से मिलेंगे। ज़मीन अधिग्रहण के तहत विस्थापित उन्हीं लोगों के आंकड़े और नाम सरकार द्वारा जारी किए जाते हैं, जो इसका प्रत्यक्ष रूप से शिकार होते हैं। किसान जिनके नाम पर ज़मीनें होती हैं, उनके नाम तो विस्थापित आंकड़ों में दर्ज किए जाते हैं। किंतु खेतिहर मजदूर जिनके नाम पर अपनी कोई ज़मीन दर्ज नहीं होती हैं, वो विस्थापित तो होते हैं लेकिन सरकार द्वारा इनकी कोई सूची जारी नहीं की जाती है। विस्थापन का दर्द किसानों के साथ-साथ खेतिहर मजदूर भी

सहता है किंतु उनके दर्द को कहीं भी कोई जगह नहीं मिलती है। उसे मजदूरी करने के लिए भी जिन यातनाओं का सामना करना पड़ता है उसका कोई हिसाब हमारी सरकार के पास नहीं होता है। क्योंकि विस्थापित होने के पश्चात मजदूरी करने के लिए भी उन्हें दर-बदर भटकना पड़ता है। अपनी जर-जमीन से दूर रहकर उन्हें मजदूरी करने के लिए भी बहुत सी कठिनाईयां झेलनी पड़ती हैं। पी.साईनाथ के अनुसार- "दूसरे शब्दों में कहें तो इन आंकड़ों में उन लोगों को शामिल नहीं किया गया है जो विस्थापन से प्रभावित तो हुए हैं लेकिन जिनके पास अपनी कोई जमीन नहीं थी। पुनर्वास योजनाओं के अंतर्गत भूमिहीन मजदूर, मछुआरे और शिल्पी नहीं आते हैं। विकास की इस दृष्टि के कारण डूब वाले क्षेत्रों अथवा परियोजना क्षेत्रों से बाहर पड़े लाखों लोग उपेक्षित रह जाते हैं। यह ऐसे लोग हैं जिनके जीवन को सहारा देने वाली व्यवस्था को इन परियोजनाओं ने तहस-नहस कर दिया है। उन परिवारों का भी इसमें ज़िक्र नहीं होता जो कैचमेंट एरिया के कारण प्रभावित हैं। इस दायरे में वे परिवार भी नहीं आते जिन्हें वृक्षारोपण कार्यक्रमों के तहत अपनी जमीन खोनी पड़ी है।"[64]

हमारे समाज में प्रगति के कार्यों के अतिरिक्त और भी अनेक कारणों से किसानों और खेतिहर मजदूरों को विस्थापित होना पड़ता है। विस्थापन की मार सबसे ज्यादा महिलाओं पर पड़ती है। क्योंकि ये भले ही खेती-किसानी से जुड़ी होती हैं किंतु इनके नाम जमीनें नहीं होती हैं। इस कारण भूमि अधिग्रहण के पश्चात जो मुआवजों की राशि दी जाती है या पुनर्वास के लिए जो जमीनें दी जाती हैं उनसे महिलायें वंचित रह जाती हैं। पी.साईनाथ के शब्दों में कहा जाय तो- "विस्थापन का जो मुआवजा दिया जाता है वह आमतौर पर नकद धनराशि अथवा जमीन के रूप में होता है। प्राय: इन दोनों पर महिलाओं का नियंत्रण नहीं रहता। खासतौर से नकद राशि पर तो इनका सचमुच कोई नियंत्रण नहीं रहता। इसका असर बच्चों पर पड़ता है क्योंकि पैसे खर्च करने के मामले में जहाँ महिलायें निर्णय लेने की स्थिति में होती हैं वहां बच्चों की देखभाल बेहतर ढंग से हो पाती है। लेकिन जो हमारा मौजूदा ढांचा है उसमें इस तरह के संसाधनों पर महिलाओं के स्वतंत्र अधिकारों को कोई मान्यता नहीं दी गयी है।"[65]

जैसा कि हम यह बात जानते हैं कि जब भी किसानों और खेतिहर मजदूरों को जबरन एक स्थान से दूसरे स्थान पर बसाने के लिए जमीनें दी जाती हैं तो वे सिर्फ अपने मूल स्थान से ही नहीं वंचित होते हैं। वरन उनका घर, खेत-खलिहान, चारागाह, उनका समुदाय आदि से भी उन्हें वंचित होना पड़ता है। लेकिन इन सब समस्याओं और उनकी भावनाओं से खिलवाड़ करने का कोई मुआवजा उन्हें सरकार नहीं देती है। ये मुआवजा और पुनर्वास सिर्फ सरकारों की तरकीबें हैं जिनके माध्यम से वे किसानों और खेतिहर मजदूरों को बेघर बनाते हैं।

जिस तरह से विस्थापन में किसानों और खेतिहर मजदूरों को जबरजस्ती उनके घर और जमीन से बेदखल कर दिया जाता है उसी तरह से पलायन में उनकी खुद की मजबूरियां उन्हें अपनी जमीन और घर से दूर जाने पर मजबूर कर देती है। 'पलायन' उसे कहते हैं जब व्यक्ति किसी भी कारणवश अपने निवास स्थान को छोड़कर अन्य स्थान पर चला जाता है। आजादी के बाद हमारे देश में उद्योग-धंधों को मजबूत बनाया गया जिससे लोगों के मन में यह धारणा बनी कि उन्हें अपने प्रगति के लिए इन उद्योग-धंधों से जुड़ना चाहिए। जिससे उनका भी जीवन सुखमय हो सके। साथ ही जब गाँव में किसानों को अपनी खेती में पर्याप्त मुनाफा नहीं मिल पाता है तब भी वे मजबूर होकर शहर की तरफ पलायन करते हैं। शिवाजी राय के अनुसार- "आजादी के बाद देश में बड़े पैमाने पर उद्योगों की स्थापना हुई, तब तक इस इलाके में भी यह धारणा मजबूत हो चुकी थी कि सिर्फ खेती किसानी से काम नहीं चलेगा। रोजगार के कामों को बढ़ाने के लिए बड़े उद्योग कायम करना जरूरी है। लेकिन उस बदले परिवेश में भी इन क्षेत्रों में न तो नए उद्योग स्थापित हुए और न ही इस विशाल भू भाग के संरचनात्मक विकास पर कोई ध्यान दिया गया। बेहद धनी आबादी वाले इस इलाके के लोगों को घर बार छोड़कर देश के सुदूर इलाके और विदेशों में भी भाग कर के जाने को विवश किया गया।"[66]

हमारे देश में सत्ता के रखवाले आजादी के बाद से ही खेती को आत्मनिर्भर बनाने के बदले पूंजीपतियों और उनके सहयोगियों को फायदा पहुँचाने में लगे रहे। इसी प्रयास के तहत 'हरित क्रांति' की

शुरुआत की गई जिसमें बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीजों, खादों और कीटनाशक दवाओं के साथ ही खेती में मशीनों के प्रयोग पर बल दिया गया। खेती में धीरे-धीरे श्रम शक्ति और पशुओं की जरूरतें कम होती गई। खेती के लागत में भारी वृद्धि हुई। सिंचाई, बिजली, डीजल आदि के दामों में बेतहाशा वृद्धि होती गई। इन सबका ये असर हुआ कि खेती घाटे का सौदा बन गई और किसान अपना और अपने परिवार का पेट पालने के लिए शहरों की तरफ पलायन करने लगे। मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास में बलेसर बत्तीस बीघे का काश्तकार है। वह अपने खेतों से अत्यंत प्रेम करता है और अपनी खेती नहीं छोड़ना चाहता है। बलेसर के बेटे पढ़-लिख कर शहरों में निवास करते हैं। उन्हें खेती करना घाटे का काम लगता है। इसलिए वो इसी कोशिश में लगे रहते हैं कि बलेसर किसी तरह से भी अपने खेतों को बेंचकर शहर में पलायन कर जाए वे बलेसर को समझाते हुए कहते हैं- "खेती अब घाटे का सौदा हो गयी है पिता जी। खेती से जुड़े रहने में अब कोई लाभ नहीं। खेती में जितना श्रम, संघर्ष और खर्च है, उसकी तुलना में उपार्जन नगण्य, उलटे खेती की परेशानियों से जीवन का सुख-चैन भी गायब, निरंतर असुरक्षा और आतंक के माहौल में रहना। हमें समय रहते खेतों को बेचकर अपनी पूँजी शहर में स्थानान्तरित कर लेनी चाहिए। आगे खेतों के खरीदार भी नहीं मिलेंगे।"[67] किसानों की असली सम्पति उनकी भूमि ही होती है। वह मजबूरी हो या प्रेम अपने भूमि से बंधे रहना चाहता है। किंतु जिस तरह से समय ने खेती-किसानी करने के माध्यम को बदल दिया है, किसान खेती को मजबूरी में छोड़ना चाहते हैं। क्योंकि अब कृषि करना उनके वश की बात नहीं रह गई है। उन्हें अगर कोई और विकल्प मिल जाये तो वे शीघ्र ही कृषि छोड़कर उसे अपना लेना चाहते हैं। हमारे देश में छोटे एवं सीमांत किसान संख्या में सबसे अधिक हैं। इन किसानों के पास भूमि का बहुत कम रकबा होता है। इसलिए वे कृषि करने में और भी असमर्थ होते जा रहे हैं। क्योंकि खेती दिन-प्रतिदिन महंगी होती जा रही है। मैदानी क्षेत्र हो या पहाड़ी हर जगह के किसान खेती से पलायन कर रहे हैं। आज युवा वर्ग पढ़-लिखकर शहर में रोजगार के लिए शहर की तरफ भाग रहे हैं। क्योंकि उन्हें वहीं अपना भविष्य सुनहरा दिख रहा है। प्रेम पुनेठा के अनुसार- "सरकारी क्षेत्र में रोजगार के बढ़ते अवसरों

का पर्वतीय इलाकों के लिए रोजगार देने के सबसे बड़े क्षेत्र हो गए। इससे पूर्व सेना ही रोजगार का सबसे बड़ा क्षेत्र था। पढ़े-लिखे लोगों का यह पहला बड़ा पलायन था।.....इस पर भी यह पूर्ण पलायन नहीं था क्योंकि तब मैदानों में जाने वालों के परिवार पहाड़ में ही रहते थे। इस तरह उसका गाँव और खेती-किसानी से रिश्ता टूटा नहीं था। स्थिति में परिवर्तन अस्सी के दशक के प्रारंभ से आना शुरू हुआ। जब खेती की जमीन के बंटवारे और उसके और अधिक अलाभकारी होने से व्यक्तियों का खेती से मोहभंग हो गया और वे अपने परिवारों को लेकर मैदानों और महानगरों की ओर पूरी तरह से पलायन कर गए।"[68]

बलेसर के बेटे पढ़-लिखकर शहर की चमक-धमक में खोए हुए हैं और उन्हें वहीं का जीवन रास आ रहा है। हमारे समाज का पढ़ा लिखा युवा वर्ग आने वाली समय की सच्चाई और सरकारी नीतियों के दुष्परिणामों को अच्छी तरह से जानती है। शहर में सचिवालय में काम कर रहा कुलराखन भविष्य में खेती-किसानी में आने वाले संकट के बारे में अपने पिता को बताता है। हमारे देश में जिस तरह से पूंजीपतियों को बढ़ावा दिया जा रहा है। उससे खेती का काम और भी कठिन होता जा रहा है। एक दिन ऐसा आएगा जब हमारे देश में भी किसानों के खेत पर बड़े-बड़े उद्योगपति खेती करवाएंगे। जब बलेसर कहते हैं कि ऐसा समय कभी नहीं आएगा जब देश में खेती-किसानी बंद हो जाएगी तब कुलराखन उन्हें समझाते हुए कहता है-"खेती होगी पिता जी, बंद नहीं होगी। लेकिन परिवर्तित रूप में होगी। आने वाले समय में बड़े-बड़े उद्योगपति खेतों को खरीद लेंगे। फिर विस्तृत चकलों में घेरेबंदी कर मजदूरों से उन्नत खेती कराएंगे। अपनी सामर्थ्य पर सरकार से कृषि के लिए पर्याप्त अनुदान और सहयोग ले लेंगे। अपनी उस खेती से पैदा उपज स्वतंत्र बाजार में महंगे दामों पर बेचेंगे। इस तरह कृषि कार्य भी उनके उद्योगों की तरह ही लाभ का जरिया बन जायेगा, जैसा अमेरिका में होता है...। अमेरिका की विकसित खेती ही हमारे देश के लिए भी विकल्प बनेगी...।"[69]

किसान अपनी भूमि से जुड़ा होता है और इतना जुड़ा होता है कि किसी भी कीमत पर उससे दूर नहीं होना चाहता है। उसका एक ही मकसद होता है कि किसी तरह से वह अपनी भूमि को बचाए रखे।

यही हालत बलेसर की भी है। वह खेती के सारे फायदे नुकसान को जानते हैं। उन्हें पता है कि आजकल खेती का काम कितना मुश्किल भरा होता जा रहा है। आज के जमाने में बिना किसी अन्य कमाई के खेती का काम करना मुश्किल है क्योंकि जिस तरह से खेती में दिन-प्रतिदिन लागत बढ़ती जा रही है बिना किसी अन्य कमाई के खेती कर पाना जोखिम भरा काम है। अपने बेटों से वह कितना भी क्यों न विरोध करें किंतु अपने मन में वो भी सारी सच्चाई से वाकिफ हैं- "अब मान के धरातल पर वे महसूस कर रहे थे कि कुलराखन का कहना बिल्कुल गलत नहीं था। कृषिकार्य अब तलवार की धार पर चलने से कम कठिन कार्य नहीं रह गया था। न प्रकृति का सहयोग न सरकार का। अपने खुद की सामर्थ्य पे फसल उपजाना। बलेसर देख रहे थे कि उनके गाँव के कई छोटे किसान (दस-पंद्रह बीघे तक के काश्तकार) शहर चले गए थे। उनमें से कुछ ने अपने खेत बेच भी दिए थे, कुछ ने खेतों को नकदी या टीका-बंटाई पर बंदोबस्त कर दिया था। बलेसर अनुभव कर रहे थे, अब गाँव का सफल किसान वही होता था जिसका एक पाँव शहर में तो दूसरा गाँव में हो। शहर की आय को जोड़कर ही गाँव की अच्छी खेती संभव थी।"[70]

पलायन करने के किसानों के सामने कई कारण हैं। वह अपनी मर्जी से पलायन नहीं करना चाहता है अपितु परिस्थितियां ऐसी बन जाती हैं कि उसे मजबूरी में अपना गाँव खेत छोड़कर शहर जाना पड़ता है। क्योंकि गाँव में रोजगार के अवसर नहीं हैं। युवा वर्ग के सामने पढ़-लिखकर रोजगार की तलाश एक मजबूरी है दूसरी तरफ वे खुद भी पढ़-लिखकर खेती जैसा जोखिम कार्य नहीं करना चाहते हैं। जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँववालो' उपन्यास का भैरव इतना पढ़ा-लिखा युवक है। वह दिन-रात एक ही सपना देखता है कि गाँव में रहकर खेतीबारी का काम संभाले और यहीं की परिस्थितियों को सुधारने में अपनी उम्र लगा दे। लेकिन उसके परिवार की स्थिति ऐसी है कि उसके पिता खुद नहीं चाहते कि भैरव एक पढ़ने-लिखने के बावजूद खेती में अपना जीवन होम कर दे। परिस्थितियों को देखते हुए कहीं न कहीं भैरव को भी ऐसा लगने लगा। तभी वह अपने मित्र जकीर से कहता है- "मैं क्या करूँ जकीर। मेरे प्रति बाउजी की नाराजगी रोज-रोज बढ़ती जा रही है। उनका मानना है कि पढ़-लिखकर गाँव में पड़ा रहना

सरासर मूर्खता है। खेती की जो हालत हो गई है, अब तो मुझे भी यही लगने लगा है। नौकरी अगर नहीं करूँगा तो घर की फटेहाली भुखमरी में बदल जाएगी।"[71]

गाँव में बिजली और पानी की समस्या से किसानों के खेत की फसलें सूख जातीं। गन्ने की मिल बंद हो जाने से किसानों के सामने फसल बेचने की समस्या और भी ऐसी कई समस्याएं गाँव के किसानों के सामने मुंह फैलाये खड़ी है जिनसे निजात पाने के लिए ही किसान गाँव छोडकर शहर की तरफ पलायन कर रहे हैं। ऐसी ही हालत से सल्तनत का भाई मतीउर गुजर रहा है। आज गाँव में खेती के सामने ऐसा संकट उत्पन्न हो गया है कि गाँव के जिन युवाओं की खेती में रूचि है उनके पास कोई काम ही नहीं है। मजबूरन उन्हें रोजगार के लिए पलायन करना पड़ता है। मतीउर भी खेती में रुचि रखने के बावजूद भी शहर जाने को बेवश है क्योंकि गाँव में उसके करने के लिए कोई काम ही नहीं बचा है- "छोटी, अब इस गाँव में मेरे करने के लिए कुछ नहीं रह गया है, लगता है जैसे खाली वक्त मुझे काटने दौड़ता है। बुरा न मानना बहन... मैं अब यहाँ से जा रहा हूँ।"[72]

कुछ तो खेती का जोखिम दूसरा हमारे देश में औद्योगीकरण और पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव ने भी खेती से लोगों का मोहभंग करने का काम किया है। आज जिस किसी की भूमि पर उद्योगपतियों की निगाहें जम जाएँ तो उसे पाने के लिए ऐड़ी-चोटी एक कर देते हैं। गाँव के किसान जिनकी पुश्तैनी जमीनें हैं। वे अपनी भूमि से ही जुड़े रहना चाहते हैं किंतु युवा वर्ग को कंपनियों की बातों की चमक इतनी अच्छी लगती है कि उन्हें अपने खेत की मिट्टी की महक नहीं प्रभावित करती है। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में औद्योगीकरण के प्रभाव ने गाँव के युवाओं के मन में खेती-किसानी के प्रति एक घृणा भाव भरने का काम किया है। कंपनी के दलाल जब अपनी बातों से गाँव के किसानों को नहीं प्रभावित कर पाए तो उन्होंने गाँव के युवाओं पर अपना प्रभाव जमाना शुरू किया। गाँव के युवाओं को उनकी गाड़ियों और रुतबे ने ऐसा प्रभावित किया कि उन्हें सच में अपनी जमीनें कंपनी को देने के लिए दबाव बनाने लगे। क्योंकि उनके सामने कंपनी के दलाल बातें ही ऐसी करते कि युवाओं को उन्हीं की बातें सच लगें-

"अम्बाशंकर अपने दोनों हाथ गर्दन के पीछे ले जाता और केंची की शक्ल में बंधी हथेलियों पर सिर टिकाते हुए बोलता, तुम भी चाहो तो अपनी जमीन कंपनी को बेंच के पैसा बैंक में रख दो और कंपनी में नौकरी कर लो। पांच एकड़ जमीन के सौदे पर कंपनी दस हजार रूपए देगी। पचास एकड़ जमीन का सौदा करवा दिया तो घर बैठे लाख रूपए मिल जायेंगे। लड़के सपनों पर सवार हो आसमान में उड़ने लगते और उड़ते-उड़ते ही घर पहुँच जाते। फिर घर में सपने और यथार्थ के बीच मचता घमासान। नतीजतन जमीनों के छोटे-छोटे चक और छोटे होने लगे और बढ़ने लगी कंपनी की हद।"[73] औद्योगीकरण और पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव ने भी देश के युवाओं का ध्यान खेती की तरफ से भंग करने का काम किया है। क्योंकि कंपनियों की चमक-धमक युवाओं की आँखों को रुचिकर लगती हैं। इसलिए वे अपने खेतों को बेचकर शहरों में भोग-विलास का जीवन यापन करना चाहते हैं।

खेतिहर मजदूर तो मजदूरी मिलने के अभाव में या अन्य भी कई परिस्थितियों से मजबूर होकर गाँव छोड़कर शहर की तरफ पलायन करता है। खेती किसान और खेतिहर मजदूर के सहयोग से ही संभव है। किंतु बदलते समय ने खेती करने के तौर तरीकों में बदलाव कर दिया है, जिससे खेत मजदूरों के सामने मजदूरी का संकट उत्पन्न हो गया है। खेत मजदूर गाँव में चरवाही, सब्जी उगाना, पशु-पालन आदि भी कई काम करते थे, किंतु आज खेती में मशीनों का प्रयोग होने से मानव श्रम की उपयोगिता कम हो गयी है। किसानों के शहर में पलायन करने के कारण खेत भी कम होते जा रहे हैं। इसलिए खेत-मजदूरों के सामने और भी काम का संकट उत्पन्न हो गया है और वह गाँव छोड़ने पर मजबूर हो रहे हैं।

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास का नारायण शहर में लाख कष्टों को झेलने के बावजूद वहीं पर मजदूरी करने को विवश है क्योंकि गाँव में करने को कुछ काम ही नहीं है। पेट भरने के लिए उसे मजबूरी में शहर का रास्ता ही देखना पड़ता है- "देहरी में खड़ी कमला चुपचाप नारायण को सामान समेटते देख रही थी। उसका मन हो रहा था वह नारायण से कहे, मत जाओ। यहीं गाँव में ही मेहनत मजदूरी कर के जिंदगी काट लेंगे। किसी तरह भी दो रोटी का जुगाड़ तो जम ही जाएगा। लेकिन वह भी बदलते समय

को देख रही थी। वह समझ रही थी कि अब सब कुछ आसान नहीं रह गया है। पेट भरना है तो गाँव छोड़ना ही पड़ेगा।"[74] खेतिहर मजदूर के पास अपनी भूमि बहुत ही कम होती है। वह दूसरों के खेतों में काम करके ही अपना और अपने परिवार का पेट पालता है। खेतिहर-मजदूरों का काम भी मौसम के हिसाब से ही चलता है। उन्हें पूरे वर्ष काम नहीं मिलता इसलिए उसे अपने परिवार का पेट भरने में भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। मजदूरी न मिलना ही उनके पलायन का मुख्य कारण है। शहर में भी उन्हें बहुत सी कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है फिर भी काम के आगे वे इन कठिनाइयों को बहुत छोटा समझते हैं। क्योंकि अभाव का जीवन जीने से अच्छा वे कठिनाइयों का सामना करते हुए मजदूरी करना पसंद करते हैं। अरविन्द मोहन के अनुसार- "अस्थायी तौर पर घर छोड़ने वाले काफी सारे ग्रामीण मजदूर अपना पेट पालने भर के लिए खेती और दूसरे कामों में रोजगार तलाशने निकलते हैं। मूलतः यह कदम वे अपने आपको जीवित रखने और बचाने के लिए करते हैं क्योंकि उनके अपने रहने वाली जगह के आस-पास पूरे साल भर लायक रोजगार नहीं मिलता। औपनिवेशिक काल और आजादी के बाद हुआ असमान विकास ही इस मजबूरन परदेसी बनने का कारण है।"[75] किसानों को उनका भूमि प्रेम पलायन करने में बाधा उत्पन्न करता है। वे पहले परिस्थितियों का सामना करते हैं और जब हार जाते हैं तब पलायन करते हैं। किंतु खेतिहर-मजदूरों को तो सिर्फ पेट पालने के लिए अपनी मजदूरी से मतलब है, इसलिए उन्हें जहाँ कहीं भी काम मिलता है वे वहीं पर रहना चाहते हैं। बदलते परिवेश में उन्हें गाँव की अपेक्षा शहरों में अधिक काम मिलता है, इसलिए हर साल बड़ी संख्या में खेत मजदूर गाँव से शहर की तरफ पलायन करते हैं।

5.4 उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान और खेतिहर मजदूर आंदोलन

हमारे देश में किसान और खेतिहर मजदूर हमेशा से शोषण का शिकार होता आया है। साथ ही हम यह भी जानते हैं कि शोषण से मुक्ति का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना शोषण का। किसान और मजदूर आंदोलन का इतिहास हमारे देश में बहुत ही पुराना है। भारत में सामंतवाद से लेकर आज

इक्कीसवीं सदी में भी किसान और मजदूर शोषित होता आया है। शोषण के साथ-साथ हमारे देश के किसानों ने शोषण के खिलाफ आवाज उठाना भी सीखा है। अंग्रेजों के आगमन ने हमारे देश में किसानों और मजदूरों की स्थिति को और भी खराब करने का काम किया। अंग्रेजों ने लगान वसूली के लिए स्थाई बंदोबस्त, रैयतवारी, महलवारी आदि प्रथाओं को समय-समय पर क्षेत्र के आधार पर लागू किया जिससे किसानों की दशा दिन-प्रतिदिन खराब होती गई। घर में खाने को अन्न हो या न हो फिर भी उन्हें लगान अदा करना होता था। खेती में लागत और मेहनत किसान की होती थी लगान कंपनी ले जाती थी। कंपनी ने हर क्षेत्र में अपने जमींदार नियुक्त कर रखे थे जो किसानों से लगान वसूली करते थे। स्वामी सहजानंद सरस्वती के अनुसार- "कभी-कभी ऐसा होता था कि जमींदार की जमीन में किसान अपने हल बैल और बीजादि लगा कर जो कुछ पैदा करता था उसका आधा जमींदार को देने के लिए मजबूर किया जाता था। कुछ स्थानों में जमीन की ठेकेदारी के करते किसान पूरे गुलाम बन गए थे। जो किसान जमींदार से थोड़ी सी भी जमीन लेकर जोतता बोता था, उसे उसके बदले में जमींदार को अपनी बकाश्त या जिरात जमीन में खेती करने के लिए हल, बैल, बीज आदि देने के सिवाय बहुत अंशों में स्वयं मजूरी भी करनी पड़ती थी।"[76]

किसान और खेतिहर मजदूर अपने शोषण के खिलाफ ही कभी जमींदारों से तो कभी सत्ता से संघर्ष करते आ रहे हैं। इक्कीसवीं सदी में जमींदार प्रथा का तो खात्मा तो हो गया लेकिन किसान और मजदूर का शोषण आज भी जारी है। आज हमारे देश में जमींदारों की जगह महाजन और बैंक और नेताओं ने ले ली है जो किसानों और मजदूरों का शोषण कर रही हैं। देश में किसानों के विकास करने के नाम पर ऐसी कृषि नीतियाँ बनाई जाती हैं, जिससे किसान कर्ज के दलदल में फंसता जा रहा है। मानव सभ्यता के विकास के आरंभ से लेकर आज तक कृषि ही मानव की आजीविका का साधन बनी हुई है। फिर भी कृषि में इतने जोखिम हैं कि किसान और मजदूरों को हमेशा से अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है। लह्म्बर सिंह के अनुसार- "यदि हम मानवीय इतिहास पर नजर डालें तो पता चलता है कि यह

एक तरह से किसान आन्दोलन और संघर्षों का ही इतिहास है। भारत में औद्योगीकरण और औद्योगिक विकास के बावजूद हमारी लगभग 70 फीसदी आबादी आज भी आजीविका के लिए कृषि और जमीन पर ही निर्भर है। आबादी के इतने बड़े हिस्से की समस्या सिर्फ इस हिस्से की ही समस्या नहीं रह जाती, बल्कि यह पूरे देश की समस्या बन जाती है। भारत के इतिहास का यदि वैज्ञानिक दृष्टिकोण से अध्ययन किया जाये तो इतिहास के हर दौर में समस्याओं से बुरी तरह प्रभावित होने के बावजूद किसानी ही हर आंदोलन, हर मोड़ और हर मौके पर इतिहास की चालक शक्ति रही है।"[77]

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसानों एवं खेतिहर मजदूरों के सामने ऐसी कई समस्या हैं जिनसे वह संघर्ष करते हुए दिखाई देता है। ऐसा नहीं है कि हमारे देश में सचमुच किसानों के लिए कोई योजनाएं नहीं चलाई जाती है। सरकार द्वारा योजनाएं तो चलाई जाती हैं किंतु इन योजनाओं का सही लाभ किसानों एवं खेतिहर मजदूरों को नहीं मिल पाता है। हमारे देश में किसानों को खेतों में इस्तेमाल करने के लिए सरकारी मूल्य पर खाद दिया जाता है। हमारे देश में बिचौलिये और कालाबाजारी के चलते किसान को इस योजना का लाभ नहीं मिल पाता है। उन्हें बाहर से अधिक मूल्य पर खाद खरीदना पड़ता है। मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास के किसान इसी समस्या से जूझ रहे हैं, किंतु वे चुपचाप रहकर इस अत्याचार को सहते नहीं है बल्कि इसके खिलाफ आंदोलन की योजना बनाते हैं- "पहले खाद पर हम विचार कर लें, फिर पानी पर निर्णय करेंगे...। हमारे ऐन मौके पर यूरिया की कालाबाजारी शुरू हो गयी है। कालाबाजारी वाले जानते हैं कि इस समय हमारे धान की फसल को यूरिया की अत्यंत आवश्यकता है। जैसा कि आप जानते हैं, सरकार ने हम किसानों के लिए यूरिया का मूल्य निर्धारित कर रखा है। हमारे क्षेत्र में वितरण की दुकानें भी हैं। लेकिन वे दुकानें अक्सर बंद ही रहती हैं। खुलती भी हैं तो वितरण साफ जवाब दे देते हैं-निर्धारित रेट वाला यूरिया अभी नहीं आया ...।" लेकिन हम देख रहे हैं, वही यूरिया खुले में मनमाने दामों पर बिक रहा है। इसके लिए हमें समूह में चलकर अपने हक के लिए आंदोलन करना है। हमारे चुपचाप बैठे रहने से कुछ होने वाला नहीं। पिछले वर्ष हमारे आंदोलन पर ही

नजर का रुका हुआ पानी आया था और सरकारी रेट पर बीज वितरण की धांधली भी रुकी थी। हमें यूरिया वितरण की सरकारी दूकानों पर चलकर ताला जड़ देना है।"[78]

नई कृषि व्यवस्था में किसानों के लिए सरकारी मूल्य पर धान खरीद के केंद्र बनाए गए। इन क्रय केन्द्रों की स्थापना का उद्देश्य किसानों को व्यापारी और आढ़तियों के लूट से बचाने के लिए की गई थी। ताकि किसानों को फसल का उचित मूल्य प्राप्त हो सके। सरकार की अन्य योजनाओं की तरह ये योजना भी किसानों के लिए हितकारी साबित न हो सकी। किसान वहां अपनी फसल लेकर तो जाते हैं किंतु कभी उनमें नमी तो कभी मिट्टी आदि बहाने से धान को खराब बताकर लेने से मना कर देते। किसान ऐसी ही और भी कई समस्याओं का सामना करके किसी तरह से इन केंद्रों पर अपनी उपज बेच पाते थे। उसके बाद उन्हें फसल का भुगतान पाने में भी महीनों तक इन्तजार करना पड़ता। भुगतान प्राप्त करने के लिए भी उन्हें आंदोलन करना पड़ता है- "निहोरा भाई, हम हर मोर्चे पर लड़ेंगे ....। अभी सबसे पहले पैक्स से हमें निपटना है ...। पैक्स ने इस बार हमें जबर्दस्त धोखा दिया। धान लेने के बाद दो माह के अन्दर ही भुगतान का आश्वासन दिया था। लेकिन एक वर्ष होने जा रहा है। हम समझते थे कि पिछले वर्ष बिके हमारे धान के वे रुपये पहले ही मिल जायेंगे...। अपने उन्हीं रुपयों को ध्यान में रखकर हमने इधर-उधर से कुछ भी इंतजाम नहीं किया। अब इस समय तो वे रुपये हर हालत में हमें मिलने ही चाहिए। अपने उन रुपयों के लिए हमें जो करना हो सब करेंगे। हमारे खून-पसीने और खेतों की वह कमाई है, किसी भी बपौती नहीं...।"[79]

किसान तो अपने अधिकार के लिए हमेशा से लड़ता आया है। इक्कीसवीं सदी में वह सरकारी नीतियों के खिलाफ भी लड़ने को तैयार है। सरकार की जिन नीतियों से किसानों के अधिकारों का हनन होता है उनके खिलाफ वह खड़ा हो जाता है। हमारे देश में विकास के नाम पर जो परियोजनाएं चलाई जाती हैं, उनमें किसानों की कृषि योग्य भूमि को अधिग्रहित किया जाता है। किसान के लिए भूमि ही उसकी माँ है, उसके खेत ही उसके पालनहार हैं। वह अपने खेत को किसी परियोजना के लिए कैसे दे

क्योंकि उसकी जीविका उसी पर निर्भर है। उसे कैसी भी परिस्थिति का सामना करना पड़े वह अपनी जमीन को बचाने की कोशिश करता है। हमारे देश में जमीन अधिग्रहण के नाम पर किसान हमेशा से संघर्ष करता आया है। राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास के किसानों की यही समस्या है कि उनकी जमीन सीमेंट की फैक्ट्री लगाने के लिए अधिग्रहित की जा रही है और किसान उसके विरोध में एकजुट होकर खड़े हैं- "पारवती भाभी ने जो कहा असल बात वोई है। हम अपनी जमीन नई देंगे तो नई देंगे। बस ई म्हारा आखरी फैसला है। कोई पंची पंचैत बैठे याकि कासीनाथ के मुलाजम इधर आके हमको भटकाने की कोसिस करें। फिर चाहे तो चले डांग-सोठा या दराट-दराटी, या फिर चल ले बंदूक गोली। हम न मानने वाले हुए। चाहे कोई तो म्हारी जान ले ले पर ये चिक माटी म्हारी माँ है। फौज में मैंने येई सीखा है कि गरचे इसको बचाने के तईं जान बी देनी पड़े तो दे दूंगा, पर माँ के मत्थे कलंक न लगने दूंगा।"[80]

कुणाल सिंह के 'आदिग्राम उपाख्यान' उपन्यास में केमिकल फैक्ट्री खोलने के लिए किसानों की जमीनें अधिग्रहित करने का फरमान जारी किया गया है। कंपनी की तरफ से गाँव के किसानों को कई तरह के प्रलोभन दिए गए किंतु किसान किसी भी कीमत पर अपनी जमीनें देने को तैयार नहीं है। आंदोलन का नेतृत्वकर्ता रघुनाथ है जो किसानों को आंदोलन करने के लिए प्रेरित करता है- "रघुनाथ ने कहा कि यह संघर्ष का समय है। यदि हम अपनी जमीन बचाने के लिए खुद आगे नहीं आये तो याद रखिये, साच्छात गौरांग महाप्रभु भी हमारी जमीन नहीं बचा सकते। हमें अपनी लड़ाई खुद लड़नी होगी। लड़ने के लिए क्या चाहिए ? सबसे पहले चाहिए कलेजा, जो आप सबके पास है। हम वीर सुभाषचन्द्र बोस, विनय-बादल-दिनेश-बाघा जतिन, खुदीराम बोस के वंशज हैं। लेकिन सिर्फ जिगर के दम पर हम ये लड़ाई नहीं जीत सकते। सो दूसरी चीज जिसकी हमें जरूरत पड़ेगी, वह है हथियार।"[81]

देश में हर वर्ष सरकारी नीतियों के कारण हजारो किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो जाते हैं। चाहे वह बहुराष्ट्रीय कंपनियों का बढ़ता प्रभाव हो, भूमि-अधिग्रहण हो किसान इन नीतियों के कारण ही आत्महत्या करता है। आज किसान कृषि नीतियों से हारकर यदि आत्महत्या कर रहा है तो दूसरी तरफ

वह सरकार के खिलाफ खड़े होने की ताकत भी अपने अंदर जुटा रहा है। इन सबमें हमारे देश का युवा वर्ग अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभा रहा है। एम. एम. चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास में समाज का युवा वर्ग ही अपनी सूझबूझ से गाँव वालों को कृषि नीतियों की सच्चाई बताते हैं और उन्हें अपने अधिकारों के लिए सजग बनाने का काम कर रहे हैं। बल्ली का बेटा राजेश अपने पिता की आत्महत्या के पश्चात अपने गाँव और आसपास के गाँव के लोगों को अपने अधिकारों के लिए लड़ना सिखा रहा है। वह चाहता है कि जिन नीतियों के कारण उसके पिता को आत्महत्या करनी पड़ी उन्हीं नीतियों का शिकार अन्य किसान न हो। इसलिए वह अपनी माँ से कहता है- "माँ मुझे किसी ने नहीं बहकाया, हमारे गाँव के बारे में, किसानों के बारे में, जब कोई नेता नहीं सोच रहा है, तब हम जैसे किसानों के बच्चों को ही आगे आना होगा। यह खेती-किसानी का संकट हमारा है, इसलिए इसके समाधान के लिए भी हमें ही लड़ना पड़ेगा।"[82]

इक्कीसवीं सदी में किसान सरकार के खिलाफ आंदोलन करने के लिए विवश है। सरकार पूंजीपतियों के कर्ज को माफ कर देती है जिसकी किसी को कानो-कान खबर नहीं होती है, लेकिन किसानों की कठिनाइयों को दूर करने में अपनी कोई रुचि नहीं दिखाती है। किसानों को न तो समय पर अपने फसल का मूल्य मिल पाता है न ही उनके लिए चलाई गई कृषि नीतियाँ ही कारगर हो रही हैं। अपने अधिकार को प्राप्त करने एवं सरकार के शोषण के खिलाफ ही किसान आंदोलन करने को मजबूर हैं। हरित क्रांति के पश्चात खेती-किसानी के बढ़ते तौर-तरीकों ने भी किसानों में असंतोष का भाव पैदा करने का काम किया। हरित क्रांति से देश में बड़े किसानों को लाभ हुआ किंतु छोटा एवं सीमांत किसान हाशिए पर चला गया। उनकी स्थिति दिन-प्रतिदिन बदतर होती जा रही है। किसानों का ये वर्ग खेतिहर मजदूर में तब्दील होता जा रहा है। लह्म्बर सिंह के अनुसार- "योग्य उजरत, उजरत में महंगाई में वृद्धि के अनुसार बढ़ोतरी, सस्ता अनाज और दूसरी जरूरी वस्तुओं के लिए प्रभावशाली सार्वजनिक वितरण प्रणाली घरों के लिए प्लाट, मकानों के लिए सरकारी सहायता, उनके अधिकारों और हितों की रक्षा के लिए व्यापक केंद्रीय

कानून आदि। ऐसे ही कई दूसरे मुदद्दों पर पिछले समय के दौरान देशभर में बड़े पैमाने पर संघर्ष हुए हैं, जिन्हें हम किसान आंदोलन का अभिन्न अंग मानते हैं।"[83]

हमारे देश में किसान तो अपने अधिकारों के लिए लड़ रहा है किंतु खेतिहर मजदूर तो अपने पारिश्रमिक के लिए लड़ रहा है। वह खेतों में काम करता है जिसके लिए उसे अनाज या रूपए पारिश्रमिक के रूप में प्राप्त होते हैं। खेतिहर मजदूर की लड़ाई उसकी मजदूरी के लिए लड़ाई है। वह जो कार्य करता है उसके लिए उसे वाजिब मजदूरी ही नहीं मिलती है। हर कर्मचारी की मजदूरी बढ़ती है किंतु खेतिहर मजदूर आज भी 150 रू प्रतिदिन की मजूरी पर काम करता है। खेतिहर मजदूर का काम मौसम पर निर्भर करता है। उन्हें वर्ष भर काम नहीं मिलता है यही उनकी समस्या का मूल कारण है। वह अपने मजदूरी की दर में वृद्धि के लिए आंदोलन करता है। उसकी मांग काम को लेकर है कि उसे वर्ष भर काम मिले जिससे वह अपना और अपने परिवार का पेट पाल सके। सरकार द्वारा खेतिहर मजदूरों को वर्ष में 100 दिन काम देने के उद्देश्य से रोजगार गारंटी योजना की शुरुआत की गई, फिर भी खेतिहर मजदूरों को न ही 100 दिन का काम मिल पा रहा है और न ही मजदूरी। खेतिहर मजदूरों की समस्याओं के लिए किसान एवं सरकार दोनों ही उत्तरदायी होती हैं। इसलिए खेतिहर मजदूरों का संघर्ष भी दोहरा हो जाता है एक तो किसानों के खिलाफ दूसरा प्रशासन के खिलाफ उन्हें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करना पड़ता है।

5.5 ऋणग्रस्तता

किसान के लिए कृषि करना कोई व्यवसाय नहीं है, कृषि उनके जीवन का एक हिस्सा है। अपने जीवन के हिस्से को व्यक्ति अपने से अलग कैसे कर सकता है। वह दिन-रात खेतों में अपने परिवार के साथ मिलकर मेहनत करता रहता है। आज की जो कृषि है वह पूर्णतः पूंजीवादी व्यवस्था से प्रभावित है। किसान अपने भूमि पर ही बना रहना चाहता है इसके लिए उसे कई कठिनाइयों से गुजरना पड़ता है। अपनी भूमि को बचाने के लिए ही वह कर्ज के दलदल में फंसता चला जा रहा है, सच में एक किसान का जीवन जीना बहुत ही जटिलता का काम है। रमेश उपाध्याय के शब्दों में- "जिस किसान जीवन को हम बहुत

सीधा-सादा समझते हैं, वह वास्तव में बहुत ही जटिल, गहन और व्यापक वास्तविकताओं को अपने में छिपाए हुए है। यही कारण है कि साहित्य में इस यथार्थ का चित्रण आसान नहीं है। आज के भारतीय किसान जीवन पर लिखने के लिए इस यथार्थ का ज्ञान तो होना ही चाहिए, उसके परस्पर उलझे हुए विभिन्न आयामों वाले अंतर्विरोधों की सही पहचान भी होनी चाहिए।"[84]

संजीव के 'फांस' उपन्यास की पूरी कहानी ही कर्ज में डूबे किसान की है। भूमंडलीकरण और पूंजीवाद के बढ़ते प्रभाव ने किसानों को हाशिए पर ढकेल दिया है। हरित क्रांति के भारत में लागू होते ही समाज में छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए खेती करना एक बहुत ही जटिल काम हो गया है। पहली हरित क्रांति ने किसानों के लिए प्राकृतिक संसाधनों को ही खत्म कर दिया, जिस पर निर्भर रहकर ही छोटे एवं सीमांत किसान अपना जीवन यापन करते थे। भारत में कृषि क्षेत्र में छोटे एवं सीमांत किसानों की ही संख्या सबसे अधिक है इसलिए इन्हीं लोगों के लिए हरित क्रांति का आना दु:खदायी साबित हुआ है। शकुन का पूरा परिवार कर्ज में डूबा हुआ है। उसके परिवार की दशा उपन्यास की इन पंक्तियों में देखने को मिलती है- "बैंक का पहले का ऋण अदा करने में ही तबाह हुआ यह परिवार" शुभा बोली- "पड़ोसी होने के नाते मैं जानती हूँ इस परिवार को। इसी कुएं से सरकारी कर्ज के चलते तीन साल से इस परिवार ने त्योहार के दिन भी कभी पूड़ी-पकवान नहीं बनते देखा। पूड़ी-पकवान तो दूर, भर पेट कभी दोनों जून जेवण भी नसीब नहीं हुआ हो, मुझे तो संदेह है।"[85]

उदारीकरण नीति के चलते किसान पूरी तरह से कारपोरेट घराने का हो चुका है। कारपोरेट या कहें कि बहुराष्ट्रीय कंपनियां देश में पूँजी लेकर लाभ कमाने के उद्देश्य से ही आती हैं। उनका काम ही होता है कैसे भी करके अधिक से अधिक ग्राहक बनाए। इन्हें किसानों की जमीन, जमीन की गुणवत्ता, सिंचाई के संसाधन, एवं पैदावार से कोई मतलब नहीं होता है। इसलिए खेती में लागत बढ़ती जा रही है और पैदावार दिन-प्रतिदिन घटती जा रही है। फिर भी हमारे देश में पहली हरित क्रांति के बाद, दूसरी हरित क्रांति भी आई लेकिन उससे किसान कर्ज की दलदल में फंसते जा रहे हैं। हमारी सरकार हर रोज बहुराष्ट्रीय कंपनियों

के साथ सौदा करके उन्हें हमारे देश में आने का न्योता दे रही है। जाने-माने कृषि चिंतक देविंदर शर्मा के शब्दों में- "पहली हरित क्रांति ने भारतीय कृषि में रासायनिक खाद, हाइब्रिड बीज और कीटनाशक जिसे अंग्रेजी में लैंड ग्रांड सिस्टम कहा जाता है, शामिल किया तो अब दूसरी हरित क्रांति अमेरिकी कृषि व्यापार के हितों की दिशा में खड़ी की जा रही है। 2005 में मनमोहन सिंह ने अमेरिका में कहा कि भारत में पहली हरित क्रांति ने लाखों लोगों को गरीबी से ऊपर उठा दिया और अब मैं इसलिए खुश हूँ कि अमेरिकी राष्ट्रपति के साथ मिलकर भारत में दूसरी हरित क्रांति के लिए भारत और अमेरिका ने कृषि के क्षेत्र में साझापन करने का फैसला किया है।"[86]

प्रधानमंत्री जी के भाषण को सुनकर तो ऐसा लगता है कि सच में इन्होनें किसानों के लिए हरित क्रांति लाकर संजीवनी का काम किया है। लेकिन ऐसा नहीं है। किसान के लिए यही हरित क्रांति जहर साबित हो रही है। सरकार नई तकनीकी के तहत जिस बीटी काटन की बात करती है। असल में वही बीटी काटन किसानों के गले का फांस बन रही है। बीटी काटन का प्रयोग जिन-जिन प्रदेशों में बढ़ा वहां पर किसानों के कर्ज में भी बढ़ोत्तरी दर्ज की गयी है। महाराष्ट्र के विदर्भ, आंध्र प्रदेश, राजस्थान में इस बीटी काटन ने किसान को पूरी तरह से तबाह कर दिया। संजीव के 'फांस' उपन्यास के तो हर किसान की समस्या का कारण बनी हुई है। ये बीटी काटन के बीज भारत में बहुराष्ट्रीय कंपनियों की देन है। इसलिए यहाँ पर ये बीज सिर्फ एक सीजन में ही किसानों के लिए लाभदायक सिद्ध हुए दोबारा से खेत बुआई के लिए किसानों को नये सिरे से बीज की खरीददारी करना। किसान एक बार की फसल की बुआई में ही तबाह हो जाता है बार-बार उसे नए खाद और बीज खरीदने पड़ेंगे तो उसकी क्या ही दशा होगी। उस पर सिर्फ कर्ज का बोझ ही बढ़ता जा रहा है-"शेतकरी की एकता तोड़ने के लिए या उनके उद्धार के नाम पर भगवान जाने सन 2002 में आया था कापूस का महाबीज बीटी कॉटन बीज, क्या, तो विलायत से कि अमेरिका से ! विलायती बीज है, नाजुक बीज, खाद चाहिए ? लो ! कीटनाशक भी चाहिए ? लो पैसे नहीं हैं, सरकार कर्ज दे रही है न ! लो ! और पानी ! ऊपर वाला देगा न ! उस साल ऊपर वाले ने दिया भी।

उफ़....क्या रेशे थे ! क्या फलन ! पूरा खेत कपूस से बूढ़े सन्यासी की तरह उजाता हो गया। वही उजास किसानों के मुंह पर-हिंदी फिल्म 'मदर इंडिया' के गीत की तरह .... 'दुःख भरे दिन बीते रे भैया' अब सुख आयो रे, रंग जीवन में नया लायो रे ! लेकिन अगले ही साल झटका लगा। बीटी कॉटन का महाबीज दूसरी बार फिस्स हो गया। अब फिर से बीज खरीदो। फिर से खाद, कीटनाशक, फिर से मजदूरी, फिर से कर्ज यह तो सरासर धोखा है। शेतकरियों में कसमसाहट हुई। फसल में नये-नये कीड़े, नये-नये रोग और बिक्री केन्द्र पर नई-नई बेइमानियाँ। तौल में गड़बड़ी।"[87]

एक किसान को सिर्फ खेती के लिए ही नहीं अन्य कामों के लिए भी कर्ज लेने की जरूरत पड़ती है। सिर्फ खेती के काम जैसे बीज, कीटनाशक, सिंचाई ही नहीं उस पर उसके परिवार की भी जिम्मेदारी होती है, जिसमें उसके बच्चे और उसकी पत्नी भी शामिल होती है। बच्चों की शिक्षा, बेटी की शादी और स्वास्थ्य संबंधित कार्यों के लिए भी उन्हें कर्ज की समस्या का सामना करना पड़ता है, क्योंकि इन कार्यों के लिए सरकार की तरफ से उसे कोई कर्ज देने की सुविधा नहीं है। पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' का रामप्रसाद यह उम्मीद लगाए बैठा रहता है कि फसल अच्छी हुई तो ये करेंगे, फसल अच्छी हुई तो वह करेंगे। लेकिन घर में फसल आते ही इतने कामों का बोझ आ जाता है कि निजी समस्याओं के लिए उसके पास कुछ बचता ही नहीं। अपनी अन्य जरूरतों के लिए वह या तो अपनी पत्नी के जेवर गिरवी रखेगा या तो कर्ज लेगा- "रामप्रसाद के पास तोड़ी को गिरवी रख कर मिले पैसों से बिजली का बिल भरने के बाद जो पैसे बचे थे उनके खर्च का इंतजाम भी हो गया था। राजेश भी लगभग रामप्रसाद के ही स्तर का किसान था, ऐसे में अगर रामप्रसाद आगे बढ़कर सहायता नहीं करे तो तय था कि अब उसकी बहन के पैरों में जो तोड़ी पड़ी है, उसके बिकने की बारी है। वैसे भी राजेश की स्थिति तो रामप्रसाद की तुलना में और कमजोर है। पढ़ा लिखा तो वह है लेकिन है तो किसान ही।"[88]

देश में हर छोटा किसान एवं सीमांत किसान किसी न किसी का कर्जदार होता है। चाहे वह बैंक हो, खाद की सोसाइटी हो या बिजली विभाग या सरकार का। सारे कर्जों की वसूली किसान से यही

पटवारी साहब लोग ही करते हैं। जो किसानों से रिश्वत भी लेते रहते हैं। रामप्रसाद के परिवार की आखिरी निशानी जो उसकी पत्नी के पैरों की तोड़ी है। आज वह भी ख़त्म हो रही है। आज के बाद उसकी पीढ़ी की यह परंपरा टूट जाएगी। कमला अपनी बहु को वह तोड़ी नहीं दे पाएगी जो उसकी सास ने उसे दी थी। किसान के घर में जब तक धातुएं रहती हैं तब तक वह किसान को पूर्णतः मजदूर बनने से रोके रहती है ! क्योंकि धातुएं ही होती हैं जो उसकी जमीन को बिकने से रोकती है। एक बार ये धातुएं परिवार से समाप्त हो गईं तो फिर किसान को कर्ज से छुटकारा पाने के लिए अपनी जमीन ही बेचनी पड़ती है। रामप्रसाद पर बिजली के कर्ज का बोझ है जो उसे चुकाना है नहीं तो उसकी जमीन कुर्की कर दी जाएगी। रामप्रसाद अपनी पत्नी की तोड़ी लेकर सुनार के पास बैठा है। वह अपनी पीढ़ी की परंपरा को टूटते हुए देख रहा है। उसकी मनः स्थिति देखते ही बन रही है- "कारीगर तन्मयता से अपने काम में लगा है। तोड़ी के टुकड़े करने के। दोनों के लिए यह प्रक्रिया बहुत अलग-अलग अर्थ रखती है। अपने-अपने सापेक्ष सचों के साथ। कारीगर के लिए और रामप्रसाद के लिए। कारीगर के लिए एक पुराना जेवर टूट रहा है और रामप्रसाद के लिए यह एक पुरानी परंपरा टूट रही है। कारीगर के लिए यह प्रक्रिया कुछ शुरू होना है, कुछ फिर से नया बनना शुरू होना, जबकि रामप्रसाद के लिए यह प्रक्रिया कुछ समाप्त होना है, कुछ पुराना समाप्त होना। हमेशा के लिए। कारीगर के लिए यह विशुद्ध रूप से एक धातु है, जबकि रामप्रसाद के लिए यह धातु न होकर विशुद्ध भावना है। धातुएं इसी प्रकार से परेशान करती है, वह धातु न रह कर भावनाएं बन जाती हैं।"[89]

उदारीकरण के दौर में जिन समस्याओं का सामना किसान का रहा है वह है महंगाई। आज किसान के समक्ष जो हाइब्रिड बीज उपलब्ध कराये जा रहे हैं उनसे उनके सामने कृषि का संकट उत्पन्न हो रहा है। सरकार हाइब्रिड बीज को बढ़ावा दे रही है और परम्परागत खेती के समर्थक इसका विरोध कर रहे हैं। लेकिन हमारी सरकारों को किसी के विरोध करने से कोई फर्क नहीं पड़ता है। हाइब्रिड बीज से हमारे किसानों को खेती में अतिरिक्त बोझ पड़ता है। एम.एम.चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास का बल्ली

एक बड़ा एवं संपन्न किसान है। वह खेती को अपने तरीके से करता है और खुशहाली का जीवन जी रहा है लेकिन सरकार के सामने किसान की क्या मजाल कि वह सुकून की जिंदगी जी सके। सरकार ने आर्थिक सुधार नीति के तहत देश में विदेशी-बीज का प्रचार प्रसार शुरू कर दिया और अपने परम्परागत बीज को बाजार से गायब करवा कर संकर बीज किसानों को खरीदने पर मजबूर करने लगी। विजय गुप्त के शब्दों में- "आज हम मूल बीजों की जगह संकर बीजों की खेती करने को मजबूर कर दिए हैं। हाइब्रिड बीजों से खेती करना गुलामी करने जैसा है। हाइब्रिड बीज कंपनियों के मालिकों की सख्त नियमावली और शर्तें हैं। बिना उनकी अनुमति से हम बीजों का दुबारा इस्तेमाल नहीं कर सकते। एक बार फसल लेने के बाद अमूमन हाइब्रिड बीज बंजर हो जाते हैं। हाइब्रिड फसलें वैसे भी गरीब और साधनहीन किसानों के लिए कहीं से भी बेहतर नहीं हैं। 90 से 140 दिनों की हाइब्रिड फसलों को बहुत पानी और देख-रेख चाहिए, जो मामूली और छोटी जोतवाले किसानों के लिए संभव नहीं।"[90]

बल्ली एक ऐसा किसान है जो अपनी शर्तों पर अपनी खेती करता है। सरकार द्वारा नये संकर बीज उपलब्ध कराने के बावजूद बल्ली अपने पुराने कॉटन के बीज से ही खेती करता है किंतु फसल तैयार होने के बाद वह बाजार में जब उसे बेचने ले जाता है तो उसका कोई ग्राहक ही नहीं मिलता। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सारे छलावे से हमारी सरकारें भली-भांति परिचित होती हैं फिर भी वे अपने देश में इनके प्रचार-प्रसार पर रोक नहीं लगाती हैं। बल्कि उनकी यहाँ पर पैठ बनाने में भरपूर मदद करती हैं। और किसानों को मजबूरन उन्हीं संकर बीज की खेती करनी पड़ती है। यही हाल बल्ली और बाकी किसानों का भी होता है- "बल्ली ही नहीं, न जाने कितने किसानों ने कर्ज लेकर कपास की आधुनिक खेती शुरू की थी। बल्ली ने अगली फसल के लिए बड़ी मल्टीनेशनल कंपनी से बढ़िया बीज ख़रीदा ताकि इस बार फसल और अधिक अच्छी हो और पुराना कर्ज उतर सके। बल्ली ने ऐसा ही किया। लेकिन बल्ली को नहीं पता था कि बढ़िया बीज के साथ, उस कंपनी का महंगी कीमत पर खाद और कीटनाशक भी खरीदना पड़ेगा, क्योंकि अन्य खाद और कीटनाशक का कोई प्रभाव आधुनिक खेती पर नहीं पड़ता। बीज, खाद

और कीटनाशक एक ही कंपनी से खरीदना बल्ली की जरूरत नहीं, मजबूरी थी। अब बाजार खेती किसानी के बीज बोने से लेकर फसल बेचने तक दाम तय करने लगा।"[91]

अमेरिका जैसे देश हमारे देश में ऐसी तकनीक को लाती हैं जिन्हें दुनिया के हर देश में नकार दिया जाता है। उसने हमारे देश में पशुओं की नई नस्ल विकसित करने से लेकर बीजों की नई-नई किस्में हमारे देश में विकसित करने की पहल हमारे सरकारों के जरिये की है। हमारी सरकारें भी अमेरिका जैसे देशों के आगे नतमस्तक होकर उनको यहाँ कंपनियां लगाने में भरपूर सहयोग करती हैं। इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के प्रचार प्रसार ने ही हमारे देश में किसानों को कर्ज लेने पर मजबूर किया है। क्योंकि इतने महंगे बीज, खाद और सिंचाई के लिए देश के गरीब किसानों के पास रकम नहीं होती है इसलिए मजबूर होकर उसे कर्ज लेना पड़ता है। विजय गुप्त के अनुसार- "पांचवे-छठे दशक में अमरीकी बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने विकास के झूठे सपने को दिखाकर ग्वाटेमाला की वेहद-उर्वर जमीनों को हथियाना था। उनकी अमूल्य फसलों पर बलात कब्जा कर उस खेतिहर गरीब देश को बर्बाद कर दिया था। बर्बादी का यह पूरा हिसाब-किताब इतिहास के खाता-बही में दर्ज है। लेकिन इतिहास का परिहास देखिये कि जनता के नाम पर कॉरपोरेट पूंजी की मदद और षडयंत्र से सत्ता में आई कांग्रेस ने, और फिर 2014 के 16 वीं लोकसभा के चुनाव में कांग्रेस को पराजित कर भारत की गद्दी पर बैठी भारतीय जनता पार्टी सरकार ने उन्हीं बहुराष्ट्रीय कंपनियों को भूमिचोरों को, ग्वाटेमाला के हत्यारों को हमारी छाती पर मूंग दलने के लिए सादर आमंत्रित करने में जरा भी शर्म महसूस नहीं की।"[92]

बल्ली जैसा बड़ा किसान जो अपनी खेती से खुशहाली का जीवन जी रहा था लेकिन इन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव ने उसके जीवन और उसकी कृषि को तबाह कर दिया। वह पूरी शिद्दत के साथ खेती करता और अपनी खेती के लाभ को सबके सामने बताता। लोग उससे सीख लेते थे लेकिन बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बढ़ते प्रभाव के कारण उसे अपनी परम्परागत कृषि को छोड़कर नये ढ़ंर्रे की कृषि को अपनाना पड़ा और हालत ये हो गई कि उसके खेतों में नए बीज में से एक भी पौधा नहीं निकला।

बल्ली के सारे बीज, खाद और कीटनाशक लगाने के बावजूद उसके खेत परती जैसे रह गए। वह इस बात की शिकायत लेकर इस दफ्तर से उस दफ्तर के चक्कर काटता रहा लेकिन कहीं कोई सुनवाई नहीं हुई। थक-हारकर वह बैठ गया। क्योंकि सरकार ही तो कंपनियों को ऐसे बीज तैयार करके किसानों तक पहुंचवाने का माध्यम बनी हुई है यदि वह किसानों की सहायता करने लगेंगी तो कंपनियों को कैसे फायदा होगा। जो बल्ली गाँव का सबसे संपन्न किसान था आज वह कर्ज के बोझ से दब गया है- "बल्ली एक बार बैंकों का कर्जा तो चुका भी देता, क्योंकि उसको तो सरकार ने समय दिया हुआ था, लेकिन उन सूदखोरों का पैसा कहाँ से लौटाता, जिनसे यह कहकर कर्ज लिया था, फसल के बिकने पर कर्जा उत्तार दूंगा। उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा दाव पर लग चुकी थी। उसे कोई भी रास्ता नजर नहीं आ रहा था।"[93]

कृषि के पूंजीवादी ढर्रे ने बल्ली जैसे किसान को रास्ते पर लाकर खड़ा कर दिया। गाँव के सबसे बड़े किसान का नाम आज बैंक के सबसे बड़े कर्जदार की श्रेणी में था। उसे पता है कि वह सरकार और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथों से ठगा गया है। इसलिए वह अपने साथ और भी किसानों को लेकर कभी बैंक तो कभी नेताओं के दफ्तर में चक्कर काट रहा है लेकिन एक किसान की बात को कौन सुनेगा। अब बल्ली पूरी तरह से लाचार हो चुका है। उसके सामने कोई रास्ता नहीं बचा है। किसान के लिए उसकी मरजाद सबसे बड़ी चीज होती है और वह उसे बचाने के लिए किसी भी हद तक जा सकता है। बल्ली जिन किसानों को नए ढंग की कृषि अपनाने के लिए प्रेरित करता रहता था आज उनके सामने जाने में भी उसे शर्म महसूस हो रही थी। वह गाँव के हर व्यक्ति के सामने जाने से कतराता है। वह हमेशा यही सोचता है कि कहीं कोई उसे देख न ले। इसलिए वह ऐसे रास्ते से अपने खेत की तरफ जाता कि उस पर किसी की निगाह ही न पड़े। जो बल्ली कभी शान से चलता था आज उसकी यह दशा हो गयी है कि वह लोगों से आँखे चुराता फिरता है। बंजर खेत कर्ज में डूबा बल्ली हमारे देश की कृषि नीति ने उसे किस हाल में पहुंचा दिया है- "बल्ली ने सबसे पहले अपने खेतों की तरफ देखा, जहाँ उसके खेत लहलहाते थे। बल्ली को अब वे खेत सूखे बंजर दिखाई दे रहे थे। उसने अपने उन खेतों की तरफ भी देखा, जिसमें परम्परागत

रूप से खेती हो रही थी। लेकिन उन खेतों को देखकर उसे ज्यादा सुकून नहीं मिला। उसने अपने खेत की मिट्टी को माथे से लगाया और फिर धीरे-धीरे खेत की मिट्टी को अपने पूरे शरीर में मलने लगा। जब वह अपनी खेत की मिट्टी से पूरी तरह भूत बन गया, तब वह अपने ही खेत में थोड़ी देर के लिए ओन्धा लेट गया।"[94]

संजीव के 'फांस' उपन्यास की महिला किसान आशा भी इन्हीं कंपनियों के हाथों की कठपुतली बनी हुई है। आशा एक जुझारू संघर्षशील किसान है। घर का पूरा दायित्व आशा पर ही है। अपनी मेहनत और कृषि के बल पर उसने अपने पूरे परिवार को संभाल रखा है। किंतु कपास की नई किस्में उसमें आने वाले खर्च से आशा पर दिन-प्रतिदिन कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है। ऊपर से मौसम की मार और खेतों में ही फसल का सड़ जाना। आशा बुरी तरह से कर्ज के दलदल में फंसती जा रही है- "कर्ज चालीस हजार से बढ़कर 1 लाख हुआ और साल-दर-साल बढ़ता रहा बाढ़ के पानी की तरह। मुलगियाँ जवान हो रही थीं, कोई मुलगा अभी तक देखा नहीं। नवरा को तो दारू को छोड़कर कुछ दिखाई पड़े तब न। पर इन दिनों न नवरा, न मुलगी, न शादी वह निरंतर खेत और कर्ज के बारे में ही सोचती रहती थी। पेड़ की छाया अलग मर्ज थी, पानी अलग मर्ज। खरीफ तो मारी गयी। पिछले दो साल तो पानी सूखते ही कर्ज उधार लेकर रबी बो दी थी, गेहूं और चना। बहुत अच्छा तो न था, पर 'ना' से 'हाँ' भला। लेकिन इस साल थम ही गया पानी। खेत में घुसा तो निकला निकला ही नहीं। खेत की उर्वरता भी न बची। दूसरे साल उस पर दया करके अमला के साहूकार-महाजन आनन्द ने 10 हजार दिए थे। फिर बीया ! फिर कीटनाशक ! फिरर खाद...! कर्ज बढ़ते-बढ़ते जा पहुंचा दो लाख के स्तर पर और अब यह तीसरा साल। इस साल भी वही किस्म। फिर से नहर का पानी डुबो गया फसल को।"[95]

किसानों के सामने खेती करने में इतनी कठिनाईयां आती हैं कि मजबूरन उन्हें कर्ज लेना ही पड़ता है। जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँव वालो' उपन्यास का जकीर पढ़ा-लिखा किसान है। वह लोगों को यह दिखाना चाहता है कि कृषि से भी आसानी से अपनी जीविका चलाई जा सकती है। किंतु उसके गाँव

में सबसे बड़ी समस्या पानी की समस्या है। इसके साथ ही फसल के भंडारण से लेकर उसे मंडी तक ले जाने की भी सुविधा नहीं है। वह पानी की समस्या को दूर करने के लिए वह कर्ज लेकर बोरिंग करवाता है- "सल्तनत ! पूँजी तो मेरी सारी खत्म हो गई है लेकिन कर्ज लेकर भी हम बोरिंग करवाएंगे और डीजल पंप बिठाएंगे। उस पंप की खासियत यह होगी कि उसमे मेरी और मेरी जाति के ही नहीं बल्कि उसकी पहुँच में आने वाले सारे खेत पटाये जायेंगे।"[96]

जकीर के लाख कोशिशों के बावजूद वह पानी की कमी को दूर नहीं कर पाया क्योंकि पंप की पहुँच से दूर वाले खेतों तक पानी ही नहीं पहुँच पाया। न तो नहर से पानी आया न ही वर्षा हुई और न पंप से पूरी तरह खेतों को पानी मिल पाया। समस्या इस कदर बढ़ गयी कि उस पर कर्ज का बोझ बढ़ता गया क्योंकि पानी की कमी से और लगातार फसलों के खराब होने से उसके घर में खाने की समस्या भी उत्पन्न होने वाली थी- "लगातार दो खरीफ और फिर एक रबी फसल में धोखा खाने के बाद जकीर की आंतरिक हालत बिलकुल चरमरा गयी। वह एक अच्छा खाता-पीता मंझोला किसान था। उसके घर की कोठियों में कम से कम पचास मन चावल का भंडार हमेशा जरूर रहा करता था। गाँव में अपने करीबी लोगों के घटने-कमने के समय अपनी ओर से इमदाद मुहैया कराने के लिए उसकी मुस्तैदी गौरतलब थी। आज हालत ऐसी हो गई कि उसे खुद के लिए भी किल्लत के दिन देखने पड़ गए। बोरिंग करवाने एवं पंप बिठाने के समय उसने जो कर्ज लिया वह घटने की जगह बढ़ता ही चला गया।"[97]

हमारे देश की जमींदारी और बंधुआ मजदूरी प्रथा का अंत हो गया लेकिन यह सिर्फ कागजों तक क्योंकि आज भी किसानों को जमींदार या महाजनों के पैरों के नीचे दब कर ही रहना पड़ता है। वे किसानों से बेगार भी करवाते रहते हैं। सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास में भीमा बा गाँव के सब गरीब किसानों को कर्ज देता है और बदले में उनकी जमीनों को अपने पास रख लेता है। साहिबू का एक पैर भीमा बा की बेगारी करने में ही कट गया है। कायदे से तो भीमा बा को ही साहिबू का इलाज कराना था लेकिन नहीं। भीमा बा ने तो साहिबू के इलाज कराने के बदले उसकी दो एकड़ भूमि को अपने यहाँ बंधक

के रूप में रख लिया। साहिबू और रेशमी को भीमा बा के यहाँ बेगार करनी पड़ती है। एक तो बेगारी करते समय साहिबू का पैर कट गया दूसरा उसके हाथ से उसकी जमीन भी छिन गयी और अब वो पूरी तरह से भीमा बा का बंधुआ बन गया है। क्योंकि उसे भीमा बा के पैसे का ब्याज भी चुकता करना है। सब जगह से सिर्फ कर्ज ही कर्ज और साहिबू की हालत भी ऐसी नहीं कि वह कर्ज चुकता कर पाए- "भीमा बा का कर्जा, बैंक का कर्जा ...जमीन, घर सब नीलाम हो जाए तब भी कर्जा नहीं उतर सकता और जो घर जमीन बिक गयी तो दूर-दर का होना पड़ेगा। कौन सहारा देगा ? सहारा देने जैसे लोग आसपास होते तो पांव के इलाज के लिए जमीन गिरवी ही क्यों रखनी पड़ती ? रेशम के पीहर में भी ऐसा कौन है जो सहारा दे सके। एक भाई है उसके तो खुद ही खाने के लाले हैं ऊपर से हम तीन जने।"[98]

कर्ज की समस्या सबसे ज्यादा तो किसानों के सामने ही आती है क्योंकि उनके पास अपनी जमीन होती है जिसे वह किसी भी कीमत पर नहीं छोड़ना चाहते लेकिन खेतिहर मजदूर उसके पास तो कोई जमीन होती ही नहीं जिसके लिए उसे कर्ज लेने की जरूरत पड़े। लेकिन उसे अपने अन्य कामों को करने के लिए कभी-कभी कर्ज लेना पड़ता है उसको न चुका पाने की स्थिति में कभी कभी उसको खुद को बंधक रखना पड़ता है। यहाँ तक कि उसके द्वारा लिए गए कर्ज को उसकी आगे आने वाली कई पीढ़ियाँ चुकाती रहती हैं। किसान को अपनी जमीन पर खेती करने के लिए कर्ज की जरूरत होती है। मजदूर भी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही कर्ज लेता है। आज के जमाने में कृषि में बढ़ती समस्याओं के कारण मजदूर जीवन को कृषक जीवन से बेहतर समझता है। इस बात को 'फांस' उपन्यास में मोहन के कथन से प्रमाणित किया जा सकता है-"मन्थर गति से आकाश में उड़ते बादल एक होते, बरसते, उसके पहले ही बिखर जाते। किसानों की आत्महत्या की खबरें आने लगी थीं। फिर तो महामारी की तरह फैलता गया वह रोग। इस सुखाड़ इलाके के इस मर्ज का कोई इलाज नहीं। जानबूझ कर बेटी विद्या का ब्याह किसान से नहीं, मजदूर परिवार में किया। चन्द्रपुर के मजदूर से। पांच एकड़ खेत दोनों बेटों की पढ़ाई और बेटी की शादी में होम हो गए।"[99] मोहन के इस कथन से ही पता चलता है कि किसानी का जीवन

आसान नहीं होता है। उसे हर काम के लिए कर्ज की समस्या सताती रहती है। कर्ज ले ले तो चुकाये कहाँ से। किंतु मजदूर को किसान की तरह अपने जमीन बचाने की चिंता नहीं होती है।

5.6 आत्महत्या

किसान और मजदूर का नाम आते ही उनके साथ ही आत्महत्या का प्रश्न सहज ही उत्पन्न हो जाता है। भारत में लगभग 70 प्रतिशत गाँव की जनता कृषि पर ही निर्भर है। लेकिन वैश्वीकरण के पहले के दौर का किसान इतना बेवश और लाचार नहीं था, जितना अब हो गया है। प्राचीन काल से अब तक किसान और भूमिहीन किसान लगातार शोषित ही होता आया है। कृषि के आरंभिक दौर जब से भूमि के आधार पर किसानों की श्रेणियां बनीं तभी से शोषण की प्रक्रिया आरंभ हो गई थी। सामंती युग से लेकर अंग्रेजों के आगमन तक किसान और खेतिहर मजदूर का शोषण होता रहा किंतु उसने कभी हार न माना। क्योंकि किसान और खेतिहर मजदूर का जीवन ही संघर्षमय होता है। उदाहरण स्वरुप हम प्रेमचंद के 'गोदान' के होरी को ही ले लें उसने अपने जीवनपर्यंत किन-किन कठिनाइयों का सामना नहीं किया। उसकी एक छोटी सी इच्छा गाय पालने की थी वह भी पूरी न हो सकी। कठिनाइयों से जूझता हुआ वह एक किसान से खेतिहर मजदूर बन गया फिर भी उसने कभी जीवन की कठिनाइयों के सामने घुटने नहीं टेके निरंतर उनसे संघर्ष करता रहा। होरी के संघर्षशील स्वभाव को 'प्रेमचंद' ने इन पंक्तियों में व्यक्त किया है- "आज तीस साल तक जीवन से लड़ते रहने के बाद वह परास्त हुआ है और ऐसा परास्त हुआ कि मानो उसको नगर के द्वार पर खड़ा कर दिया गया है और जो आता है, उसके मुंह पर थूक देता है। लेकिन वह संघर्ष में पराजित नहीं हुआ। जब कंकर खोदने का काम शुरू करता है तब मानो एक नया जीवन शुरू कर रहा हो। हीरा से मिलकर उसे बेहद खुशी होती है। जिस दिन वह लू लगने से मरने को होता है, उस दिन उसकी मानसिक दशा यह थी- "जीवन-संग्राम में वह हारा है। यह उल्लास, यह गर्व, यह पुलक क्या हार के लक्षण हैं ? इन्हीं हारों में उसकी विजय है। उसके टूटे-फूटे अस्त्र उसकी विजय पताकाएं हैं। होरी का चरित्र भारत के अजेय किसान का चरित्र है।"[100]

किसान का सम्पूर्ण जीवन ही संघर्षों से भरा होता है। उसे कभी खाद, कभी बीज, पानी, बिजली आदि की समस्याएं सताती रहती हैं तो कभी वह अपनी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए जो कर्ज लेता है, उसे चुकाने की चिंता उसे सताती रहती है। समय-समय पर प्राकृतिक आपदाओं के आगे तो वह एकदम ही मजबूर हो जाता है, क्योंकि इस पर किसी भी मनुष्य का कोई वस नहीं होता है। जीवन में कितनी भी समस्याएं क्यों न आ जाए लेकिन किसान कभी हार नहीं मानता है, वह इन कठिनाइयों से कभी घबराकर मौत का रास्ता नहीं अपनाता था। वह इन कठिनाइयों को अपनी तकदीर समझ कर इन्हीं से लड़ने के लिए निरंतर प्रयास करता रहता था, किंतु आज के जमाने की कृषि ने हमारे देश के किसानों को इस कदर तक बेवश बना दिया है कि जब उसे अपनी समस्याओं का कोई हल नहीं नजर आता है तो वह अपने लिए आत्महत्या का मार्ग चुन लेता है। रामकिशोर मेहता के अनुसार- "इतिहास साक्षी है एक वर्ग के रूप में किसान की प्रवृति आत्महत्या करने की कभी नहीं रही यद्यपि सबसे अधिक प्राकृतिक आपदाओं का प्रकोप किसान झेलता रहा है। वह बहुत संतोषी, थोड़े में गुजारा करने वाला, वस्तु विनिमय के आर्थिक व्यापार में जीवित रहने वाला रहा है। उसने सूखा, अतिवर्षा, बाढ़, टिड्डी दलों का आक्रमण झेला है। वह महामारियों का शिकार हुआ है। वह जर, जोरू और जमीन के संघर्ष में मरा है। एक ऐसा समय भी था जब किसान कई कारणों से मर जाते थे। वैसे ही समय-समय पर परिवार के परिवार काल के ग्रास बन जाते थे। आत्महत्या कर जीवन संघर्ष से भगाने की आवश्यकता उसे पड़ी ही नहीं। किसानों की आत्महत्याएं बहुत हद तक इस आधुनिक युग की देन हैं।"[101]

इक्कीसवीं सदी के हिंदी उपन्यासों में किसान एवं खेतिहर मजदूरों की आत्महत्या को एक बड़ी समस्या के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पंकज सुबीर के 'अकाल में उत्सव' के रामप्रसाद को ही देखें तो वह एक खेतिहर मजदूर का जीवन ही जी रहा है। क्योंकि उसके पास सिर्फ दो एकड़ खेत हैं, जिससे वह अपना और अपने परिवार का पेट पालता है। इसके अतिरिक्त वह बंटाई पर भी खेती करता है। इसलिए वह कहने को तो किसान है लेकिन काम से मजदूर। रामप्रसाद जैसे किसान की स्थिति को उपन्यास की

ये पंक्तियाँ बखूबी उभारती हैं- "हर छोटा किसान किसी न किसी का कर्जदार है, बैंक का, सोसाइटी का, बिजली विभाग का या सरकार का। सारे कर्जों की वसूली इन्हीं आर.आर.सी के माध्यम से पटवारी और गिरदावरों को करनी होती है। वसूली कितना खौफनाक शब्द है, यह कोई कर्जदार ही बता सकता है। वसूली के ठीक बाद की प्रक्रिया है कुर्की। यह जो कुर्की है, यह अपने नाम से ही किसान को डराती है। कुर्की में वसूली से ज्यादा डर इज्जत उतरने का होता है। किसान, कर्जा, कलेक्टर और कुर्की चारों नामों को साथ लेने में भले ही अनुप्रास अलंकार बनता है, लेकिन यह किसान ही जानता है कि इस अनुप्रास में जीवन का कितना बड़ा संत्रास छिपा हुआ है।"[102]

उपन्यास की इन पंक्तियों से ही अंदाजा लग जाता है कि क्यों छोटा, सीमांत किसान या खेतिहर मजदूर आत्महत्या करने की स्थिति तक पहुँचता है। हमारे देश में आधुनिक कृषि प्रणाली ही ऐसी बन गई है कि छोटे एवं सीमांत किसानों के लिए कृषि करना अपनी मृत्यु को ही चुनना है। क्योंकि उनके लिए कहीं से ऐसा कोई रास्ता नहीं रहता जिस पर वह सरलतापूर्वक चल सके। हमारे देश में किसानों को फसल का न्यूनतम समर्थन मूल्य मिलता है उसमें भी आये दिन कोई न कोई रोड़ा आता ही रहता है। लेकिन जब किसानों की यही उपज बाजार में अलग-अलग रूपों में तैयार किया जाता है तो उसका कोई समर्थन मूल्य नहीं होता है। रामप्रसाद जैसे किसान से बैंक का कर्ज, बिजली का कर्ज सरकार की तरफ से जबरदस्ती वसूला जाता है। लेकिन पूंजीपतियों के करोड़ों रुपये सरकार कब माफ कर देती है, किसी को कानोंकान खबर तक नहीं होती है। बैंक और बिचौलिये मिलकर रामप्रसाद को इस हालत में पहुंचा देते हैं कि उसके पास कर्ज चुकाने का कोई रास्ता ही नहीं बचा है। जो कर्ज उसने बैंक से लिया ही नहीं उसका नोटिस उसके नाम पर जारी कर दिया गया है- "हुजुर मैंने तो एक पइसा भी नी लियो बैंक से, म्हारी कुर्की करने को नोटिस दइ दियो। गरीब किसान हूँ हुजुर, छोटी-सी जमीन है, बाल-बच्चे पाली रियो हूँ जमीन से। सूबे से गाँव से चला, तेसील में गया, तो पतो चल्यो कि आज कोई भी नी मिलेगा, सब मीटिंग में गया है, बैंक गयो तो उनने के दिया कि पटवारी, तेसीलदार करेगा हम नी कर सकते अब कुछ भी। सूबे से एक दाना

अन्न का नी डाल्यो है पेट में, इनंग से उनंग फिरतो फिर रयो हूँ पागल समान। म्हारे बाल-बच्चा होन को कँई होमगो हुजुर...म्हारे बचई लो साब, म्हारे बचई लो।"[103]

रामप्रसाद को इस हालत में पहुँचाने वाला हमारा शासन तंत्र है। बैंक के झूठे कर्ज ने उसे आत्महत्या करने पर मजबूर कर दिया। बैंक का नोटिस लेकर वह कहाँ-कहाँ नहीं भटका लेकिन उसकी किसी ने एक न सुनी। बारिश और ओले ने उसकी पूरी फसल तबाह कर दी। उस पर भी उसे मुआवजा पाने के लिए रिश्वत भी देनी पड़ेगी। कर्ज और ऊपर से फसल में तबाही रामप्रसाद को कोई रास्ता न सूझा तो वह आत्महत्या कर लेता है। किंतु उसकी आत्महत्या या शासन द्वारा किए गए हत्या को भी उसका पागलपन बताया जाता है। जिले का कलेक्टर श्रीराम परिहार अपने को निर्दोष साबित करने के लिए रामप्रसाद की हत्या को कृषि के कारणों से न करने वाली आत्महत्या साबित करना चाहते हैं- "अरे भाई ...तो पता करो कि मामला क्या है ? सचमुच आत्महत्या है कि नहीं ? और अगर है भी तो उसके पीछे कोई दूसरा कारण तो नहीं है। क्या किसान केवल एक ही कारण से आत्महत्या करता है ? दूसरा कोई कारण नहीं होता है क्या ? लेकिन नहीं सबको बस एक ही बात दिखती है, किसान ने आत्महत्या की तो उसके पीछे खेती ही कारण होगा और कुछ नहीं।"[104]

किसानों की आत्महत्याएं देश में अनेक कारणों से हो रही हैं। राजू शर्मा के 'हलफनामे' उपन्यास में स्वामीराम की आत्महत्या की मूल समस्या पानी की समस्या है। जिस प्रकार जीवन जीने के लिए पानी हमारी प्राथमिक आवश्यकताओं में से एक है। उसी प्रकार खेती के लिए भी बीज और खाद के बाद सिंचाई के लिए पानी ही सबसे आवश्यक वस्तु है। हमारे देश में किसानों के सामने पानी का संकट एक बड़ी समस्या है। देश के कुछ राज्य लगातार सूखे की समस्या का सामना करते हैं, तो कुछ हर साल बाढ़ की समस्या से अपने फसलों को गंवा देते हैं। हमारे देश की सरकारों को पता है कि हमारे देश का किसान पानी की समस्या का सामना कर रहा है फिर भी वह उनके लिए कुछ नहीं करती है। पूरा उत्तर भारत सूखे की समस्या का सामना कर रहा है। वहां के भूजल का स्तर लगातार नीचे गिरता जा रहा है। किंतु सरकार

की तरफ से सिंचाई की सुविधा के लिए कोई कारगर कदम नहीं उठाए गए हैं। किसान और खेतिहर मजदूरों के लाख कोशिशों के बावजूद सरकार उनकी मांगो पर कोई ध्यान नहीं देती है। प्रभाकर श्रोत्रीय के अनुसार- "तमाम सामाजिक आन्दोलनों और पर्यावरणविदों की चेतावनी के बावजूद बिजली उत्पादन और सिंचाई के नाम पर भीमकाय बांध बनाये गए। इससे मानव-सभ्यता की जो हानि हुई वह तो है ही, बाढ़ और सूखे के खतरे लगातार सघन हुए। पिछले दिनों बांध की वजह से रुकी नदी के कारण आन्दोलनकारी किसानों को गोलियों का शिकार होना पड़ा था।"[105]

राजू शर्मा के 'हलफनामे' उपन्यास के स्वामीराम की आत्महत्या का मूल कारण सूखे की समस्या है। वह अपने खेतों में पानी पहुँचाने के लिए बोरिंग करवाता है किंतु एक भी बोरवेल से पानी नहीं निकलता है। चूंकि उसे बोरिंग करवाने के लिए कर्ज भी लेना पड़ता है। किंतु कर्ज चुकाने का कोई मार्ग न होने पर स्वामीराम आत्महत्या का रास्ता अपनाता है- "स्वामीराम छोटा किंतु समर्थ और कुशल किसान था। वह पूरी तरह आत्मनिर्भर था। पर सूखे और अकाल की मार विनाशकारी होती है। पानी की खोज में स्वामीराम ने एक के बाद एक तीन बोरेवेल डाले और सब फेल हो गए। वह कर्ज में डूब गया।"[106]

स्वामीराम के सामने कर्ज और पानी दोनों की समस्या थी और दोनों में से किसी एक का भी निदान उसके पास नहीं था। हमारे देश में बिचौलिये और सरकारी नुमाइन्दे इतने भ्रष्ट हो चुके हैं कि वे किसानों की मजबूरी का नाजायज फायदा उठाते हैं। उन्हें पता है कि किसानों की शिक्षा का स्तर इतना ऊँचा नहीं है कि उसे सरकार की सब नीतियों की जानकारी हो सके, इसी बात का नाजायज फायदा उठाकर वे किसानों को ठगने का काम करते हैं। लाला को पता होता है कि गाँव के किसानों को यह पता नहीं है कि गाँव की जमीन में बोरिंग डलवाने का कोई फायदा नहीं है क्योंकि ये डार्क एरिया है। जहाँ की जमीन से पानी निकालना नामुमकिन है। इसलिए वह किसानों को बहकाकर कर्ज भी देता है और बदले में उनसे उनके खेत रेहन रखवा लेता है। जब किसान कर्ज नहीं चुका पाते हैं तो वे खेत लाला के हो जाते हैं- "लाला ने बोरेवेल के धन्धे से गाँव को विनाश के कगार पर पहुंचा दिया था। अनाप-शनाप बोरिंग करा

वह लाखों कमा रहा था। उसके सम्पर्क देश भर में फैले थे। जमीन रेहन पर रखवा कर्ज भी वही देता था। काफी जमीन पर उसका कब्जा हो गया था। उसके कुकृत्यों में लेखपाल और पंचायत के सदस्यों की मिली-भगत थी।"[107]

किसानों को कृषि करने के लिए जो मूलभूत आवश्यकताएं वो भी नहीं पूरी हो पा रही है और न ही उनकी समस्याओं पर सरकार गंभीरता से विचार ही करती है। हमारे देश में दिन-प्रतिदिन खेती और किसानी पर संकट गहराता जा रहा है। इसी कारण से ग्रामीण आबादी की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन बद से बदतर होती जा रही है। किसान और खेतिहर मजदूरों की बढ़ती समस्याएं ही उन्हें आत्महत्या के मार्ग पर ढकेल देती हैं। सबसे बड़ी बिडंबना तो यह है कि हमारी सरकारें खेतिहर मजदूरों द्वारा की जा रही आत्महत्याओं को सामने ही नहीं लाना चाहती हैं। रंजना पाढ़ी के अनुसार- "खुदकुशी तो एक ज्यादा गहरे रोग का लक्षण भर है। रोग यह है कि पूरे कृषक समुदाय का गैर-कृषिकरण किया जा रहा है। आज तक दर्ज ढाई लाख से ज्यादा किसानों की आत्महत्याएं लाखों अन्य किसानों, खासकर खेतिहर मजदूरों की सच्चाई को उजागर करती हैं जो इस देश में तबाही के कगार पर हैं। किसान आत्महत्याओं के लगभग सारे अध्ययनों और समाचारों में खेतिहर मजदूरों द्वारा आत्महत्या के मामले शामिल नहीं किए जाते हैं। उदाहरण के लिए पंजाब के भटिंडा और संगरूर जिलों में कुल 2890 आत्महत्याएं दर्ज की गयी हैं, इनमें से 61 प्रतिशत किसान और 39 प्रतिशत खेतिहर मजदूर थे।"[108]

जयनंदन के 'सल्तनत को सुनो गाँववालो' उपन्यास का जकीर एक पढ़ा-लिखा किसान है। वह पढ़-लिख कर भी खेती ही करना चाहता है और एक मिसाल कायम करना चाहता है कि खेती-किसानी से भी अच्छी तरह से जीवन-यापन किया जा सकता है। किंतु जकीर एक किसान है और हमारे देश में किसान का अच्छा सोचना कभी सही साबित नहीं हो पाता है। जकीर के गाँव की मिट्टी जो गन्ने और धान की फसल के लिए अच्छी है किंतु गन्ने की मिल के बन्द होने से किसान गन्ने की खेती करना बंद कर देते हैं दूसरी तरफ उसके गाँव की नहर में पानी न आने से वहां पर धान की खेती भी खराब होने लगी।

किसान पानी की कमी और अनाज बेचने की समस्या से तबाह हो गए। जकीर इन समस्याओं से उभरने के लिए तरह-तरह की तरकीबें लगाता है। खेती में अनेक तरह के नए प्रयोग करके अपनी समस्याओं को कम करना चाहता है लेकिन उसकी एक भी सूझबूझ सफल नहीं हो पाती है। वह वह अपनी कुल जमा-पूँजी लगाकर अपने खेत और गांव वालों के खेतों तक पानी पहुँचाने के लिए टयूबवेल लगाता है फिर भी सभी खेतों तक पानी न पहुँचने से फसल सूख जाती है और जकीर की जमा पूंजी भी खत्म हो जाती है। वह एक बार फिर योजना बनाकर प्याज की खेती से अपनी गरीबी दूर करना चाहता है किंतु उसमें भी उसे सफलता नहीं मिल पाती है। प्याज की अच्छी पैदावार होने से उसका मूल्य गिर गया। अक्सर हमारे देश में ऐसा होता है कि जब किसी फसल की पैदावार अच्छी होती है तो उसका मूल्य गिर जाता है और किसान मजबूर होकर बिचौलिये और आढ़तियों को औने-पौने दाम पर अपनी फसल बेचने को मजबूर हो जाता है। पैदावार अच्छी हो तो फसल बेचने की समस्या और पैदावार खराब हो तो भी समस्या किसान तो समस्याओं से ही घिरा रहता है। कोई भी सरकार हो किसानों की समस्याओं को गंभीरता से नहीं लेती है और न ही उसे दूर करने का प्रयास ही करती है। संजय रोकड़े के अनुसार- "किसानों की मौजूदा समस्या अनाज, दलहन, प्याज और सोयाबीन में उत्पादन अधिक होने और बाजार में भाव न मिलने से उपजी है। लेकिन क्या भाजपा, क्या कांग्रेस हर कोई इसे अवसर के रूप में देख रही है। समाधान नहीं करना चाहती है। विपक्ष में रहते हुए सारे दलों के नेता ऊँची आवाज में किसानों के पक्ष में बोलते थकते नहीं हैं। किसानों को जब तो चाँद दिलाने का वादा करते हैं पर सत्ता में आते ही किसान उनकी प्राथमिकता वाली सूची से गायब हो जाते हैं।"[109]

यही स्थिति जकीर की होती है। वह जितना अपनी समस्याओं को कम करने की कोशिश करता है उतनी ही उसकी समस्याएं बढ़ती जाती हैं। वह हर बार नई उर्जा के साथ नई तरकीब सोचता और हर बार हार जाता है। स्थिति यहाँ तक पहुँच जाती है कि उसका रोम-रोम कर्ज में डूब जाता है। जकीर जैसा हिम्मती किसान भी अपनी उम्मीदों को खो देता है। उसके जिगरी दोस्त भैरव और सल्तनत भी उसकी

खोई उम्मीद को वापस लेन में नाकाम साबित हुए। जकीर जितनी भी कोशिश करता वह कर्ज में डूबता जाता और अंत में जकीर भी वही रास्ता अपनाता है जो हर निराश किसान अपनाता है, आत्महत्या- "यह एक और मोर्चा था जहाँ किसान अर्थात जकीर पराजित हो गया। कभी पानी के बिना खेत परती रह जाते हैं .... कभी घर में आई उपज बर्बाद हो जाती है .... इसके अलावा भी न जाने किन-किन मोर्चों पर कितने-कितने दुश्मन हैं किसानों के... कीड़े, चूहे, चोर, जानवर, पक्षी, तूफान, पाला, लू और अब यह सरकार भी जो उचित भंडारण तक की व्यवस्था उपलब्ध नहीं करवा सकती। कोल्ड स्टोरेज के बिना या फिर कोल्ड स्टोरेज में बिजली के बिना पूरे देश में हजारों टन प्याज की तरह के कच्चे उत्पाद हर साल सड़ जाते हैं।"[110]

हमारे देश में किसान स्वयं आत्महत्या नहीं करना चाहता है उसके सामने परिस्थितियां ही इस कदर उत्पन्न हो जाती हैं कि वह मजबूर होकर आत्महत्या का रास्ता अपनाता है जकीर ने तो खेती का चुनाव अपनी खुशी से किया था वह भला क्यों आत्महत्या करता लेकिन सत्ता, प्रशासन और सरकारी नीतियों ने उससे उसका जीवन छीन लिया। जकीर ने एक दिन प्रसन्नतापूर्वक भैरव से कहा था कि- "देखना भैरव मैं एक मिसाल कायम करूँगा कि खेती करना और किसान होना भी एक इज्जतदार काम है। मैं एक ट्रैक्टर खरीदूंगा... फिर मेरे पास कार भी होगी।"[111]

खेती के प्रति जकीर का जुड़ाव इन पंक्तियों में साफ झलक रहा है। किंतु अपनी परिस्थितियों के आगे वह इस कदर मजबूर हो गया कि आत्महत्या का रास्ता अपनाने पर विवश हो गया। एम. एम. चंद्रा के 'यह गाँव बिकाऊ है' उपन्यास का बल्ली जो एक संपन्न किसान है। वह परंपरागत खेती को अपनाकर अपनी खेती से अच्छा मुनाफा कमा लेता है। किंतु सरकार द्वारा लागू की गई नई कृषि नीति ने उसकी सूझबूझ को जड़ से उखाड़कर फेंक दिया। हमारे समाज में बहुराष्ट्रीय कंपनियों एवं कोरपोरेट जगत को मुनाफा कमवाने के चक्कर में सरकार कृषि जगत को जड़ से नष्ट करने में लगी हुई है। उसका हर मकसद कोरपोरेट जगत के फायदे से जुड़ा होता है जिसमें वह किसानों को मोहरा बनाकर अपना उद्देश्य पूरा करने

में लगी हुई है। कथाकार गौरीनाथ के अनुसार- "अब जो नेस्तनाबूत करने का अभियान चल रहा है, उसकी जद में किसान और कृषि-क्षेत्र से जुड़े लोग हैं। फलतः आज भी कोई भी किसान साबूत नहीं बचा है। उसे बीज विहीन करने का खेल चरम पर है। रासायनिक उर्वरकों के माध्यम से जमीन को बंजर बनाने के साथ ही जल स्रोतों पर भी आक्रमण तेज है। कर्ज का गणित तो अब किसी से छुपा नहीं है। कृषि क्षेत्र से मजदूरों का पलायन उन्हें जड़-विहीन करने के बाजारवादी हमले का अंग है। घाटे की खेती और किसानों की आत्महत्या तो एक षडयंत्र है, अभियान समूचे किसान समुदाय को जमीन और कृषि से बेदखल करने के साथ ही उस पर सम्पूर्ण कब्जा जमाने का है।"[112]

किसान एवं आसपास के गांवों के अन्य किसान भी अपनी खेती संबंधी समस्याओं को लेकर बल्ली के पास ही आते थे क्योंकि बल्ली के पास से ही उन्हें खेती करने के अलग-अलग तरीके की जानकारी मिलती थी। किंतु नई कृषि नीति के लागू होने से बल्ली के सारे तरीके फेल हो गए। बाजार में बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा बेचे जा रहे बीज, खाद और कीटनाशक के प्रयोग से खेती की जाने लगी। बल्ली जैसे किसान जो अपने देशी बीजों के प्रयोग से खेती करते थे। उनकी फसल तैयार होने पर मंडी में उसके खरीददार ही नहीं मिलते थे। हारकर बल्ली भी उन्हीं हाइब्रिड बीज और खाद तथा उसके साथ मिल रहे कीटनाशक के प्रयोग से खेती करने लगा। बहुराष्ट्रीय कंपनियों के बीज की यह खासियत होती है कि किसानों को उसी कंपनी के खाद और रासायनिक उर्वरक भी खरीदने पड़ते हैं। ये बीज और खाद इतने महंगे होते हैं कि साधारण किसान की पहुँच से परे होते हैं। एक बार किसान किसी तरह से कर्ज लेकर ये बीज और खाद खरीद भी ले तो दोबारा फसल बोने के लिए उसे फिर से नये बीज लेने पड़ते हैं। इस प्रकार किसानों पर हर फसल बोआई के समय एक नये कर्ज का बोझ बढ़ता जाता है। और एक दिन वह कर्ज में डूब जाता है। बल्ली की भी यही दशा हुई। उसने महंगे बीजों का प्रयोग तो किया किंतु उन बीजों से उसके खेत में एक भी पौधा नहीं उगा। बल्ली पर तो कर्ज का बोझ चढ़ ही गया और फसल भी नहीं तैयार हुई। इन कंपनियों को हमारे देश की सरकारें ही फलने-फूलने के लिए जमीन देती हैं इसलिए इनकी करतूतों की

शिकायत भी कहीं नहीं की जा सकती यही कारण है कि बल्ली जैसे किसानों की कोई नहीं सुनता- "नंगला गाँव में विपक्षी राजनीतिक दल जब भी आये, उन्होंने वर्तमान सरकार की आलोचना की, लेकिन उन कंपनियों को कटघरे में खड़ा कभी नहीं किया, जिन्होंने किसानों को बर्बाद कर दिया। दुनिया जानती थी कि जो आज विपक्ष में हैं, उन्ही की सरकार ने विदेशी कंपनियों को खेती, किसानी में पसरने का लाइसेंस दिया था।"[113]

विदेशी कंपनियों के दुष्प्रचार ने ही बल्ली जैसे किसान को कर्ज के दलदल में फंसा दिया। उसकी संपन्नता को दरिद्रता में बदल दिया। बल्ली की असली प्रसन्नता और हिम्मत उसके खेत ही थे। किंतु हाइब्रिड बीजों ने उसके खेतों को बंजर बना दिया। पहले वह अपने लहलहाते खेतों को देखकर फूले नहीं समाता था किंतु आज अपने सूखे बंजर खेतों को देखकर वह दुःख में डूब गया है। जब उसके सामने समस्या का कोई निदान नहीं नजर आया तो वह अपने खेतों में ही आत्महत्या कर लेता है- "शाम तक पूरे गाँव में खबर फैल गयी, बल्ली ने अपनी टयूबवैल पर खुदकुशी कर ली। पूरे गाँव में जैसे मातम छा गया। पहली बार इस गाँव में ही नहीं इस राज्य में एक बड़े किसान ने आत्महत्या की थी। इससे पहले कभी नहीं सुना था कि संपन्न राज्य में एक बड़े किसान ने आत्महत्या की हो। इससे पहले अखबारों में सिर्फ छोटे किसानों की आत्महत्याओं की खबरें आयीं, जो ज्यादा दिन अखबारों की सुर्खियाँ नहीं रहीं।"[114]

सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास का युनुस जो कहने को तो किसान है किंतु काम से खेतिहर मजदूर है। उसकी पूरी जिन्दगी ही समस्याओं से संघर्ष करते हुए निकल गयी। वह एक संघर्षशील जुझारू किसान है जिसने कभी भी अपनी समस्याओं के आगे घुटने नहीं टेके अपितु उनका जमकर मुकाबला किया। वह सरकार की योजनाओं पर पूरे लगन के साथ अमल करता और फिर हार जाता। यही उसकी नियति बन गई। खेत में बोरिंग करवाने से लेकर पशुपालन, मुर्गीपालन आदि कई योजनाओं को अपनाने से वह दिन-प्रतिदिन कर्ज में डूबता चला जाता है। इतने संघर्षों के बाद वह अपने मन की व्यथा को सीताराम के सामने उजागिर करता है- "सीताराम, या बात तू भी समझे कि किसान इत्ती जल्दी

मरने की नी सोचे। कित्ती ऊँच-नीच तो अपनी जिंदगी में सहज में ही सहन कर ले हैं। कोई के मालूम भी नी पड़ने दे। पर जब साहूकार, बैंक, अफसर, नेता सबका सब मिलके लबुरने लग जाय और सरकार भी किसान की नी सुने तो फिर उका पास मरने सिवा कई चारो है। तू ही बता आज की तारीख में सबसे सस्तो कईं है.....किसान की फसल।' युनुस के स्वर में गहरी निराशा थी।"[115]

युनुस की इस निराशा का कारण सरकारी नीतियाँ एवं उसका कर्ज है। इन सबका तो वह सामना भी कर लेता किंतु बैंक की धोखाधड़ी ने उसकी कमर ही तोड़ दी। जिस बैंक से उसने कभी कर्ज लिया ही नहीं उसका भी उसे कर्जदार बना दिया जाता है। बैंक का कर्ज तो वह किसी भी हालत में चुकाने की स्थिति में नहीं था। इन्हीं समस्याओं ने युनुस से उसके प्राण छीन लिए। हमारे देश में कोई भी सरकारी नीतियाँ एवं योजनाएं किसानों की समस्याओं को कम करने में सफल नहीं हुई है। जो भी किसान इन योजनाओं को अपनाता है उसकी स्थिति युनुस के जैसी ही हो जाती है। किसान जिन समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए सरकारी नीतियों को अपनाता है वही उसके प्राण छीनने का सबब बन जाती हैं। इसलिए ये तो साफ है कि हमारे देश में बैंक, महाजन और सरकारी नीतियों ने हमारे किसानों के पास आत्महत्या के अलावा और कोई मार्ग शेष नहीं छोड़ा है। अनिल चमड़िया के अनुसार- "आत्महत्या के कारण बहुत साफ हैं और वह है सदियों से पीड़ित किसानों को दिखाए गए भड़कीले समृद्धि के सपने। वास्तव में उन्हें कर्ज में फांसने का यह शिकंजा है। ताकि उसके पास जो जमीन, बीजों की विरासत, खेती की परंपरागत कुशलता है, उससे भी वह हाथ धो बैठे। महाजनों की गिरफ्त वाला बाजार इन पर अपना कब्जा जमाना चाहता है। इस तरह से इन सपने के सौदागर ने किसानों के सामने दो ही रास्ते छोड़े हैं या तो गुलामी या फिर मौत। सबसे बड़ी बात कि इस तरह की साजिशों का जाल इस तरह बुना जाता है कि उसकी बारीकियों को आमतौर पर समझना भी मुश्किल होता है। जरा इस बात पर गौर करिए कि किसान तो आत्महत्या कर रहे हैं, लेकिन बीज के व्यापारी विकसित हो रहे हैं। और ऐसा तभी होता है जब सदियों

से पीड़ित वर्ग अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष का रास्ता तैयार नहीं कर पाता है और उसे छलपूर्वक पूरी तरह से घेर लिया जाता है।"[116]

संजीव के 'फांस' उपन्यास की पूरी कहानी ही किसान आत्महत्या के दंश को बयां करता है। शिबू और शकुन का पूरा परिवार कर्ज की राशि चुकाने के लिए त्योहार के दिन भी अच्छा खाना नहीं खाते हैं। शकुन ने तो बैंक का कर्ज चुकाने के लिए अपने गले में पड़ी हंसुली तक को बेंच दिया फिर भी कर्जरूपी फांस ने शिबू को निगल ही लिया। इसी प्रकार यदि हम आशा नाम की किसान की बात करें तो वह एक हिम्मती महिला किसान है जो स्वयं के मेहनत के बल पर अपने परिवार का पालन-पोषण कर रही है। उसके खेत भी ऐसे जगह पर हैं जहाँ पर नहर का पानी ही भरा रहता है। आशा चाहकर भी कुछ नहीं पाती है। उसकी फसल हर साल पानी से सड़ ही जाती है। एक साल, दो साल धीरे-धीरे वह कर्ज के बोझ से दबती जा रही है और स्थिति यहाँ तक पहुँचती है कि घर में रखे कीटनाशक सल्फास को खाकर उसने अपनी जिंदगी समाप्त कर ली- "अरे बाप ! पानी बरसने लगा। एक साथ इतने जोर से मुलगियों को नहीं जगाया। खुद ही उठा-उठाकर रखने लगी अंदर। न सामान बचा पायी न खुद को। फिसलकर गिर पड़ी। चुब्ब-चुब्ब पानी पीता रहा कापूस। चुब्ब-चुब्ब पानी में डूबता रहा मन। अवसाद और हताशा की एक फीकी-फीकी सी तासीर गाढ़ी होती गयी यह सब मेरे कारण हुआ। ताराबाई की तरह लड़ी पर जीत न पायी। अधपेट या भूखी रहकर खून-पसीने से एक-एक इंच कर जोड़े खेत ! सोचा था, भगवान एक बार भी सुन लेगा तो ठीक-ठाक घरों में पार-घाट लग जाएगी मुलगियाँ। लेकिन यह शेती मेरे जी का जंजाल हो गयी और यह जिंदगी भी। धत तेरी जिंदगी की ! बोरे से ढककर रखा था कीटनाशक सल्फास-फसल के कीड़े मारने के लिए आया था जरूरत ही न पड़ी। आज जरूरत है, इसी की जरूरत।"[117] किसान हो या खेतिहर मजदूर हमारे समाज में इनकी आत्महत्या का कारण कर्ज और सरकारी नीतियाँ ही होती हैं। किसान अपनी जमीन बचाने के लिए कर्ज लेता है और मजदूर अपनी जरूरतों को पूरा करने के लिए कर्ज लेता है। जब कर्ज चुकाने में ये असमर्थ हो जाते हैं तो आत्महत्या का मार्ग चुन लेते हैं।

5.7 किसान और खेतिहर मजदूरों के अंतर्संबंध

किसान और खेतिहर मजदूरों के अंतर्संबंध की बात करें तो ये भिन्न-भिन्न रूप में हमारे सामने आते हैं। कुछ मामलों में एक दूसरे से जुड़े हुए दिखाई देते हैं और कुछ मामलों में खुद को एक दूसरे से अलग रखने की कोशिश करते हैं। किसान के पास भूमि होती है इसलिए कहीं न कहीं वह अपने आपको खेतिहर मजदूर से अलग रखना चाहता है, जबकि देखा जाए तो खेतिहर मजदूर भी एक तरह से किसान ही हैं। कुछ खेतिहर मजदूर के पास अपनी थोड़ी बहुत जमीन भी होती है इसलिए हम इन दोनों को पूरी तरह से अलग नहीं कर सकते हैं। इस बारे में स्वामी सहजानंद सरस्वती का कथन उल्लेखनीय है-"खेतिहर मजदूर भी तो आखिर बिना जमीन वाले किसान ही हैं। आज जमीन है तो किसान कहाते हैं। कल नीलाम हुई तो मजदूर हो गए। किसी की जमीन आज छिनी, किसी की कल और किसी की बहुत पहले। अर्थसंकट ने तो इधर बहुतों को भूमिहीन कर दिया है। यह जमीन छिन जाने का क्रम बराबर जारी है और दिनोंदिन तेजी पर है। इसलिए भूमि वाले और भूमिहीन ये दो विभाग हमारे किसानों के ठीक ही है और उन दोनों के मध्य कोई पक्की विभाजक रेखा खींची जा सकती नहीं।"[118] जमींदार या बड़े किसान के अपने खेतिहर मजदूरों के साथ अत्याचार का संबंध होता है। वे खेतिहर मजदूरों की वेबशी का फायदा उठाकर उनसे बेगार करवाते हैं, और खेतिहर मजदूर के पास इतना साहस भी नहीं होता है कि वे उनकी बात तो टाल सकें। यही हाल सुनील चतुर्वेदी के 'कालीचाट' उपन्यास के साहिबु का है। भीमा बा उससे जब मन करता बेगार करवाते और साहिबु की मजबूरी है कि वो उन्हें मना नहीं कर सकता है क्योंकि उसे जब भी कर्ज आदि की जरूरत पड़ती तो भीमा बा का सहारा ही लेना पड़ता है। इसलिए जब भीमा बा को वह पानी रखने के लिए मना कर देता है तो भीमा बा उससे कहते हैं- "तो या ही सही.....आज का बाद तू भी मदद के वास्ते म्हारा दरवज्जे मत आजे।' रात-बेरात हारी-बीमारी में पैसे-कौड़ी की जरूरत पड़ने पर भीमा बा का ही सहारा था। यही सहारा टूट गया तो.....साहिबु परानी हाथ में लेकर चुपचाप बैलगाड़ी पर चढ़ गया।"[119] इसी तरह से यदि हम भीमसेन त्यागी के 'जमीन' उपन्यास की बात करें तो वहां भी हमें किसान

और खेतिहर मजदूर के बीच शोषण का ही संबंध दिखाई देता है। ठाकुर चन्दन सिंह तो खेतिहर मजदूरों पर अत्याचार करने के साथ-साथ उनके घर की स्त्रियों का भी शोषण करते हैं। चन्दन सिंह से बेगार करवाने के साथ-साथ उसकी पत्नी अनारो का शारीरिक शोषण भी करता है और जब अनारो उसका विरोध करती है तो वह कहता है- "मैं साले महकू को ही ठिकाने लगवा देता हूँ।.....अनारो काँप उठी-उसके सामने भुल्लन का चेहरा कौंध गया। बेगार से मना करने पर चन्दन ने उसे मरवा दिया था। यह महकू को भी मरवा देगा। जरूर मरवा देगा ! महकू नहीं रहेगा तो फिर मेरा क्या होगा ! अनारो मजबूर हो गयी।"[120] इसके विपरीत यदि हम मिथिलेश्वर के 'तेरा संगी कोई नहीं' उपन्यास की बात करें तो वहां पर हमें किसान और खेतिहर मजदूर के बीच पारिवारिक संबंध दिखाई देता है। बलेसर के घर कूदन नाम का खेतिहर मजदूर काम करता है और बलेसर कभी भी उसके साथ बुरा व्यवहार नहीं करते हैं। उनकी खेतिहर मजदूरों के प्रति क्या दृष्टि है इसका अंदाजा उपन्यास की इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है- "किसान, खेत-मजदूरों से अच्छा खाते और रहते हों यह भी नहीं था। उन दोनों के बीच अंतर सिर्फ इस बात को लेकर था कि किसान अपने को खेत मालिक समझते और मजदूर अपने को किसानों के कामगार और आश्रयदाता.....। हालांकि दोनों का कार्य एक-दूसरे के बिना चलनेवाला नहीं था। दोनों एक-दूसरे पर निर्भर थे। ऐसे में बलेसर अपने बनिहार-चरवाह और अन्य खेत-मजदूरों को कभी हेय दृष्टि से नहीं देखते। अपने कृषिकार्य का उन्हें सहयोगी मानते।"[121] किसान और खेतिहर मजदूर का यही मित्रवत संबंध हमें एम.एम. चंद्रा के 'यह गाँव विकाऊ है' उपन्यास में भी दिखाई देता है। फतह बल्ली के खेतों में काम करता है और बल्ली उसके साथ बहुत ही मैत्रीपूर्ण संबंध रखता है। बल्ली जब भी कहीं बाहर जाता तो वह फतह पर ही अपने खेतों की पूरी जिम्मेदारी देकर जाता है। इसका उदाहरण हमें उपन्यास की ये पंक्तियाँ देती हैं- "मैं तो कई दिनों के लिए शहर जा रहा हूँ। एक नया ऑर्गेनिक बीज आया है, उसके बारे में जानकारी लेने और नयी खेती सीखने जाना है। ऐसा करो, ये लो ट्यूबवैल की चाबी, बरामदे से फावड़ा ले लो। तुम कल सुबह खेतों में पानी चला देना, आजकल दिन की बारी में लाइट आती है। हमारे गाँव

की लाइट ठीक आ रही है। यदि लाइट चली जाये तो घर मत आना, कुछ देर वहीं इन्तजार करना, क्योंकि खेत में एक साथ पानी देना है, वरना फसल खराब हो जाएगी।"[122]

इसी प्रकार खेतिहर मजदूर भी अपने सामर्थ्य के अनुसार किसानों की मदद करने की कोशिश करते हैं। राजकुमार राकेश के 'कंदील' उपन्यास का टेकू एक खेतिहर मजदूर है। वह गाँव के सब किसानों के खेतों में आवश्यकतानुसार काम करता है। प्राकृतिक आपदा से जब किसानों की फसलें खराब हो जाती हैं तो वह किसानों से अपने द्वारा किये गये काम की मजदूरी ही नहीं मांगता है। टेकू की किसानों के प्रति सहानुभूति का अंदाजा हमें उपन्यास की इन पंक्तियों में लगता है- "टेकू ने दिहाड़ी पर काम करना माना था, पर उसकी पूरी मजूरी उधार खाते में खड़ी रही। सिर्फ करमसिंह से उसके पैसे चुकाए थे। बाकी के लोगों ने फसल के आने के बाद उसका कर्ज निबटाने का जो वायदा किया था, वह सिर्फ वायदा ही बना रहा। पर टेकू को भी मालूम था की हालात क्या हैं, सो उसने कोई तकाजा करना ठीक न समझा। आखिर सब अपने ही सज्जन मितर-माहणू थे। वह भी उस सांझी मुसीबत से अलग थोड़े ही था।"[123] यदि हम किसान और खेतिहर मजदूरों के अंतर्संबंध की बात करें तो देखते हैं की ये एक-दूसरे से जुड़े हुए दिखाई देते हैं। हाँ कुछ परिस्थितियां इन्हें एक दूसरे से भिन्न करती हैं तो कुछ परिस्थितियां इन्हें एक दूसरे से जोड़े रखने का काम करती हैं।

इस प्रकार हम किसान एवं खेतिहर मजदूरों की तुलना करके देखते हैं तो हमें पता चलता है कि किसान और खेतिहर मजदूर की समस्याएं कुछ मायनों में तो एक ही हैं, कुछ मायनों में खेतिहर मजदूर की समस्याएं किसानों से अलग हैं। किसान भूमि का मालिक होता है इसलिए उसकी समस्याएं उसकी भूमि से जुड़ी होती हैं। वह अपने जीवनपर्यंत अपनी भूमि को बचाने के लिए एवं अच्छी कृषि के लिए संघर्षरत रहता है। उसकी हमेशा यही कोशिश रहती है कि किसी भी तरह से उसे अपनी भूमि का स्वामित्व न खोना पड़े। इसके लिए वह हर कीमत चुकाने को तैयार रहता है। दूसरी तरफ खेतिहर मजदूर जिसके पास भूमि का बहुत ही कम रकबा होता है। न तो उसके सामने भूमि बचाने की समस्या होती है, न ही अच्छी फसल

उपजाने की, उसकी तो मूल समस्या मजदूरी की होती है। वह बस यही चाहता है कि उसे वर्ष भर काम मिलता रहे जिससे उसकी जीविका सुचारू रूप से चलती रहे। उसके सामने भूमि के मोह जैसी कोई समस्या नहीं होती है इसलिए वह गाँव में मजदूरी न मिलने पर कहीं भी पलायन करने को तैयार रहता है, लेकिन किसानों के सामने यह स्वच्छन्दता नहीं होती है, उसे न चाहते हुए भी अपनी जमीन से जुड़े रहना पड़ता है। खेतिहर मजदूर का जीवन कुछ मामलों में किसानों से कहीं अधिक कष्टप्रद होता है, क्योंकि किसानों के पास उसकी भूमि का सहारा होता है किंतु खेतिहर मजदूर के पास कोई संपत्ति नहीं होती है उनका श्रम ही उनकी संपत्ति होती है। यहाँ तक कि समस्याओं से जूझते हुए खेतिहर मजदूर आत्महत्या कर लेता है तो उसकी आत्महत्या तक के आंकड़े सरकार के पास नहीं होते हैं।

संदर्भ

1. शर्मा, रामविलास; भारतेंदु हरिश्चंद और हिंदी नवजागरण की समस्याएं; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2019; पृ. 74
2. शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2010; पृ. 15
3. हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना (अनु.) तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, वी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2017; पृ. 120
4. वही; पृ. 126
5. भट्टाचार्य, सब्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास; राजकमल प्रकाशन, प्रा. लि. 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2015; पृ. 72
6. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ.- 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 207
7. वही; पृ. 85
8. तिवारी, अजय; यह मशाल बुझ न जाए; नया ज्ञानोदय (सं.) लीलाधर मंडलोई; 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली- 110003; मई,2017; पृ. 37
9. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 130
10. वही; पृ. 130
11. चमड़िया, अनिल; किसान, मजदूर और समाचार पत्र; जनमीडिया (सं.) अनिल चमड़िया; सी-2, पीपलवाला मोहल्ला, बादली एक्सटेंशन, दिल्ली- 42; फरवरी,2018; पृ. 7
12. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 75
13. सिंह, पुष्पपाल; इक्कीसवीं सदी का हिंदी उपन्यास; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 115
14. वही; पृ. 24
15. वही; पृ. 24
16. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 54
17. वही; पृ. 203
18. कुमार, प्रवीण; निखर्ची कुदरती खेती : एक और जालिम जुमला; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट– बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; अक्टूबर, 2019; पृ. 8
19. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2007; पृ. 250
20. वही; पृ. 248
21. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी .सी .लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001; संस्करण : 2017; पृ. 183

22. वही; पृ. 41
23. सिंह, वैभव; हिंदी कथाओं से झांकती उदास आँखे; नया ज्ञानोदय (सं.) लीलाधर मंडलोई, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003; मई,2017; पृ. 40
24. सेन, सुकोमल; भारत का मजदूर वर्ग उद्भव और विकास (1830-2010) (अनु.) अवधेश कुमार सिंह; ग्रंथ शिल्पी; संस्करण : 2012; पृ. 453
25. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी .सी .लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001; संस्करण : 2017; पृ. 132
26. वही; पृ. 136
27. वही; पृ. 136
28. वही; पृ. 139
29. वही; पृ. 152
30. रविभूषण; भारतीय किसानों की आत्महत्या और हत्या; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; जुलाई,2017; पृ. 37
31. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी .सी .लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001; संस्करण : 2017; पृ. 202
32. वही; पृ. 203
33. वही; पृ. 204
34. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 52
35. वही; पृ. 125
36. साईनाथ, पी.; तीसरी फसल (भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान) (अनु.) आनंद स्वरुप वर्मा; तीसरी दुनिया Q-63, सेक्टर-12 नोएडा- 201301; संस्करण : 2003; पृ. 182
37. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 139
38. बराड़, (डॉ.) सुरजीत; पूंजीवाद वैश्वीकरण कृषि के लिए ख़तरनाक और घातक; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम -मांगरौली, पोस्ट–बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; सितम्बर, 2019; पृ. 52
39. हरनोट, एस. आर.; हिडिम्ब; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ.- 267, सेक्टर-16 पंचकूला -134113 (हरियाणा); संस्करण : 2011; पृ. 22
40. वही; पृ. 34
41. रोकड़े, संजय; नीति चाहिए, राजनीति नहीं; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; जुलाई,2017, पृ. 23
42. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी-56/यूजीएफ- 4. शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 30
43. आशुतोष; दिल्ली में किसानों-मजदूरों की विशाल रैली; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट –बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; नवम्बर,2018; पृ. 28
44. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-

201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 124
45. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली-110003; संस्करण : 2011; पृ. 43
46. वही; पृ. 46
47. झा, धीरेन्द्र; खेत मजदूर : हाशिये का बढ़ता हस्तक्षेप; हंस (सं.) राजेंद्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त,2006; पृ. 123
48. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 123
49. पकीवाँ, रघबीर सिंह; कृषि संकट और किसान संघर्ष; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट –बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; सितम्बर,2016; पृ. 33
50. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए , दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 68
51. वही; पृ. 69
52. साईनाथ, पी.; तीसरी फसल (भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान) (अनु.) आनंद स्वरुप वर्मा; तीसरी दुनिया Q-63, सेक्टर-12 नोएडा- 201301; संस्करण : 2003; पृ. 6
53. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 111
54. साईनाथ, पी.; तीसरी फसल (भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान) (अनु.) आनंद स्वरुप वर्मा; तीसरी दुनिया Q-63, सेक्टर-12 नोएडा- 201301; संस्करण : 2003; पृ. 25
55. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद -201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 121
56. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 118
57. मौर्य, अनुराग; सरकारी और कारोबारी लूट से तबाह होता किसान; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट-बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; नवम्बर,2018; पृ. 15
58. चन्द्रा, एम. एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 140
59. (विचार) जन संघर्ष की अनिवार्यता; जन संघर्ष समन्वय समिति; समयांतर (सं.) पंकज विष्ट; 79-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली- 110095; जुलाई,2017; पृ. 17
60. साईनाथ, पी.; तीसरी फसल (भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान) (अनु.) आनंद स्वरुप वर्मा; तीसरी दुनिया Q-63, सेक्टर-12 नोएडा- 201301; संस्करण : 200 ; पृ. 67
61. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली-110003; संस्करण : 2011; पृ. 81
62. वही; पृ. 111
63. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, एम.सी.एफ.- 267, सेक्टर- 16 पंचकूला -134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 209
64. साईनाथ, पी.; तीसरी फसल (भारत के निर्धनतम जिलों की दास्तान) (अनु.) आनंद स्वरुप वर्मा; तीसरी दुनिया, Q-63, सेक्टर- 12, नोएडा- 201301; संस्करण : 2003; पृ. 68

65. वही; पृ. 72
66. राय, शिवाजी; पहचान की तलाश में; फिलहाल; (सं.) प्रीति सिन्हा; फिलहाल ट्रष्ट काजीपुर, पटना नेहरु नंदा भवन, दरोगा राय पथ, पटना- 800001; जनवरी-फरवरी, 2018; पृ. 18
67. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 13
68. पुनेठा, प्रेम; एक आत्महत्या के बहाने; समयांतर (सं.) पंकज विष्ट; 79-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली- 110095; जुलाई,2017; पृ. 20
69. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 31
70. वही; पृ. 32
71. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँववालो; वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2012; पृ. 43
72. वही; पृ. 57
73. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015; पृ. 117
74. वही; पृ. 82
75. मोहन, अरविंद; बिहारी मजदूरों की पीड़ा; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2017; पृ. 149
76. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि (सं.) अवधेशप्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, वी- 7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2017; पृ. 65
77. तग्गद, लह्म्बर सिंह; भारतीय किसान आन्दोलन के सामने चुनौतियां और मुद्दे; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट–बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; सितम्बर, 2018; पृ. 23
78. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद-211001; संस्करण : 2018; पृ. 45
79. वही; पृ. 46
80. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, एम.सी.एफ.-267, सेक्टर- 16, पंचकूला -134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 220
81. सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली-110003; संस्करण : 2011; पृ. 164
82. चन्द्रा, एम .एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण : 2019; पृ. 87
83. तग्गद, लह्म्बर सिंह; भारतीय किसान आन्दोलन के सामने चुनौतियां और मुद्दे; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट–बेगमाबाद गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; सितम्बर,2018; पृ. 27
84. उपाध्याय, रमेश; किसान आत्महत्याओं पर दो उपन्यास; कथन (सं.) संज्ञा उपाध्याय; 107, साक्षरा अपार्टमेंट्स, ए-3, पश्चिम विहार, नयी दिल्ली- 110063; जनवरी-मार्च,2019; पृ. 151
85. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21- ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016 ; पृ. 107

86. शर्मा, देविंदर; अब खेतों में किसान नहीं दिखेंगे; हंस (सं.) राजेंद्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त,2006; पृ. 194
87. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21- ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 38
88. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी .सी .लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001; संस्करण: 2017; पृ. 78
89. वही; पृ. 110
90. गुप्त, विजय; बदहाल किसान और लोकतंत्र की नींद; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; अगस्त,2017; पृ. 8
91. चन्द्रा, एम .एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण: 2019; पृ. 48
92. गुप्त, विजय; बदहाल किसान और लोकतंत्र की नींद; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; अगस्त,2017; पृ. 8
93. चन्द्रा, एम .एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण: 2019; पृ. 48
94. वही; पृ. 56
95. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016; पृ. 139
96. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँववालो; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण: 2012; पृ. 46
97. वही; पृ. 61
98. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद-201005 (उ.प्र.); संस्करण: 2015; पृ. 62
99. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21- ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण: 2016; पृ. 38
100. प्रेमचंद; गोदान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नयी दिल्ली- 110003; संस्करण: 2016; पृ. 318
101. मेहता, रामकिशोर; भारत में किसान की दुर्दशा; उद्भावना एच-55, सेक्टर-23 राजनगर, गाजियाबाद; संस्करण : 2018; पृ. 46
102. सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी .सी .लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर-466001; संस्करण: 2017; पृ. 78
103.वही; पृ. 149
104. वही; पृ. 208
105. श्रोत्रिय, प्रभाकर; आत्महत्या की फसल; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; अगस्त,2017, पृ. 11
106. शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण: 2007; पृ. 190
107. वही; पृ. 191
108. पाढ़ी, रंजना; ख़ुदकुशी के साये में जिन्दगी की बातें; किसान (सं.) महेश त्यागी; ग्राम-मांगरौली, पोस्ट –बेगमाबाद

गढ़ी, बाया दोघट, जिला-बागपत, उत्तर प्रदेश- 250622; फरवरी,2016; पृ. 23

109. रोकड़े, संजय; नीति चाहिए, राजनीति नहीं; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली-110089; अगस्त,2017, पृ. 24
110. जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँववालो; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण: 2012; पृ. 63
111. वही; पृ. 63
112. गौरीनाथ, हम किस दिन के इन्तजार में हैं ?; सबलोग (सं.) किशन कालजयी; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर-16, रोहिणी, दिल्ली- 110089; अगस्त,2017; पृ. 28
113. चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण: 2019; पृ. 49
114. वही; पृ. 56
115. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण: 2015; पृ. 140
116. चमड़िया, अनिल; नई अर्थव्यवस्था में किसानों की आत्महत्या; हंस (सं.) राजेंद्र यादव; अक्षर प्रकाशन प्रा.लि., 2/36, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त,2006; पृ. 113
117. संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन, 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण: 2016; पृ. 144
118. सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आंदोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि (सं.) अवधेशप्रधान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, वी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली-110092; संस्करण: 2017; पृ. 154
119. चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन, सी-56/यूजीएफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंसन- 11 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण: 2015; पृ. 9
120. त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण: 2011; पृ. 171
121. मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गांधी मार्ग इलाहाबाद- 211001; संस्करण: 2018; पृ. 85
122. चन्द्रा, एम .एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-11, नई दिल्ली- 110020; संस्करण: 2019; पृ. 28
123. राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ.-267, सेक्टर-16 पंचकूला -134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015; पृ. 169

उपसंहार

कृषि के साक्ष्य हमें सिंधु सभ्यता से ही प्राप्त होते हैं। आदिम-युग से आज हम आधुनिक काल में, उसमें भी इक्कीसवीं सदी में प्रवेश कर चुके हैं। इस दौरान भारतीय कृषि, कृषक एवं खेतिहर मजदूरों ने काफी उतार-चढ़ाव का सामना किया। प्राचीनकाल में मानव को जैसे ही अन्न के दानों की पहचान हुई उसने उनसे नए बीज उगाने की प्रक्रिया को जन्म दिया। प्राचीनकाल में मनुष्य अपनी जिज्ञासा की शांति और अपनी आवश्कताओं की पूर्ति के लिए कृषि-क्षेत्र में नए-नए प्रयोग करने पर बल देता रहा। इस प्रक्रिया में उसने कृषि संबंधी कई तरह के औजार, बीज और सिंचाई जैसे साधनों को खोजने का कार्य किया। मध्यकाल में भूमि व्यवस्था और कृषि को विकसित किया गया।

औपनिवेशिक काल का कृषि-क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसी काल के दौरान कृषि को पूर्णरूप से व्यवसाय के रूप में अपनाया जाने लगा। इसका श्रेय अंग्रेजी शासन को ही जाता है। इस काल में कृषि क्षेत्र में नई-नई तकनीकि एवं पैदावार को बढ़ाने पर बल दिया गया। अंग्रेजों ने अपने मुनाफे के उद्देश्य से भारतीय कृषि में कपास, नील आदि फसलों की पैदावार बढ़ाने पर जोर दिया। जिससे किसानों को कृषि करने में और भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। कर वसूली के उद्देश्य से कई तरह के कानून लागू किए गए। इसी काल के दौरान देश में कृषकों पर कई तरह की पाबंदियां लगाई गईं। इक्कीसवीं सदी में जो किसानों एवं खेतिहर मजदूरों की समस्याएं हैं, दरअसल वे औपनिवेशिक काल का ही अनुसरण करती नजर आ रही हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो अंग्रेजों के जाने के बाद हमारे देश के नेताओं ने उनका स्थान ले लिया।

कृषि जो प्राचीनकाल से ही भारतीय समाज का अंग बन गई थी, उसमें इक्कीसवीं सदी तक भी बहुत अधिक बदलाव नहीं दिखाई देता है। 'किसान' के नाम के जन्म के साथ ही उनके साथ कई तरह

की समस्याएं भी जुड़ गई थीं। किसानों का विभिन्न श्रेणियों में विभाजन हुआ। अलग-अलग श्रेणियों की अलग-अलग समस्याएं भी हैं। भूस्वामी, लघु, सीमांत, महिला किसान आदि की परिस्थितियां कई मामलों में एक-दूसरे से भिन्न हैं।

किसानों की कई समस्याएं जो कृषक समाज के शुरूआत दौर में थीं, आज भी व्याप्त हैं। इनकी स्थिति में सुधार के लिए सरकार द्वारा कई तरह की नीतियाँ बनाई जाती हैं। इन नीतियों के सुचारू रूप से लागू न हो पाने के कारण ही किसान एवं खेतिहर मजदूरों को उनका लाभ नहीं मिल पाता है। कृषि क्रांतियों की बात की जाए तो हरित-क्रांति को छोड़कर बाकी क्रांतियों को अधिक महत्त्व नहीं दिया गया। इसका खामियाजा यह हुआ कि देश के कतिपय राज्य जैसे पंजाब और हरियाणा को छोड़कर अन्य किसी को भी कृषि क्रांतियों का लाभ नहीं मिल सका। क्योंकि अलग-अलग राज्य अपने विशेष पैदावार की दृष्टि से ही महत्त्व रखते हैं। कृषि-क्रांति के फलस्वरूप गेहूं और धान के अतिरिक्त अन्य किसी फसल की पैदावार में अपेक्षापूर्ण वृद्धि नहीं हुई। इसी कारण अन्य राज्यों के किसानों की स्थिति कुछ ज्यादा बेहतर नहीं हुई। मध्यकाल में लगभग 1419 में ही किसान एवं खेतिहर मजदूरों के मस्तिष्क में व्यवस्था के खिलाफ जो विद्रोह के बीज पनपे, वर्तमान में भी हमें देखने को मिलते हैं। इसी कारण समय-समय पर कृषकों और खेतिहर मजदूरों का प्रतिरोध आंदोलनों के रूप में हमारे सामने आता है।

साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। हिंदी कथा-साहित्य इसका जीवंत प्रमाण है। कथा साहित्य विशेषकर उपन्यास साहित्य की बात करें तो किसान एवं खेतिहर मजदूर अनेक उपन्यासों की कथावस्तु का आधार बने। वैसे तो किसानों की समस्याओं पर हिंदी भाषा में उपन्यासों की रचना भारतेंदु काल से ही शुरू हो गई थी। यह परंपरा भारतेंदु युग में बालकृष्ण भट्ट के 'गुप्त बैरी' से प्रारंभ होकर लज्जाराम शर्मा के उपन्यास 'हिंदू गृहस्थ' पर आकर शिथिल पड़ जाती है। क्योंकि इस दौर के विभिन्न उपन्यासकारों ने किसान-जीवन को आधार बनाकर जिन उपन्यासों की रचना की थी, वे उपन्यास समाज को कृषक-समाज से परिचय कराने का ही माध्यम बन सके।

किसानों की वास्तविक स्थिति एवं उनका यथार्थ वर्णन हमें प्रेमचंद के यहाँ ही देखने को मिलता है। प्रेमचंद के 'प्रेमाश्रम' को इस दिशा में प्रस्थान बिंदु की तरह लिया जा सकता है तथा 'गोदान' तक आकर प्रेमचंद अपने चरमोत्कर्ष तक पहुँचते हैं। यहां से उनकी परंपरा को आगे बढ़ाने का कार्य जयशंकर प्रसाद, भैरवप्रसाद गुप्त, नागार्जुन, रेणु, विवेकीराय आदि ने किया। इसी क्रम में इक्कीसवीं सदी में भीमसेन त्यागी, जयनंदन, राजू शर्मा, संजीव, सुनील चतुर्वेदी, राजकुमार राकेश, पंकज सुबीर, मिथिलेश्वेर जैसे रचनाकारों ने अपने उपन्यासों के माध्यम से उसी परंपरा को जीवित बनाए रखने का कार्य किया है। इन्होंने इक्कीसवीं सदी में समाज में व्याप्त समस्याओं को अपने उपन्यासों में अभिव्यक्त किया है और समाज को किसानों से जोड़े रखने का कार्य किया है।

इक्कीसवीं सदी में जो भी उपन्यास किसान-जीवन को आधार बनाकर लिखे गए हैं। उनमें भारतीय समाज की भी वास्तविक छाप दिखाई पड़ती है। इक्कीसवीं सदी की समस्याएं ही ऐसी हैं कि आज का किसान उनके सामने घुटने टेक देता है। वह होरी की तरह संघर्ष कर पाने में असमर्थ हो गया है। भूमंडलीकरण, बाजारवाद, पूंजीवाद आदि के बढ़ते प्रभाव ने कृषि को सीधे बाजार से जोड़ दिया है। किसानों की श्रेणियों में लघु एवं सीमांत किसान जो संख्या में सबसे अधिक हैं, उनमें आज की कृषि नीतियां अपनाने एवं उनसे लाभ लेने की शक्ति नहीं बची है।

किसान महंगे बीज, खाद, कीटनाशक एवं सिंचाई जैसी मूलभूत आवश्कताओं को भी नहीं पूरा कर पा रहा है। फसल उगाने से लेकर बेचने तक उसे कई परिस्थितियों से गुजरना पड़ता है। सरकार की योजनाएं जो किसानों के सामने लुभावने रूप में आती हैं और उनके प्राण लेकर ही जाती हैं। कर्ज का जाल ही किसानों के लिए मौत का फंदा साबित हो रहा है। उपन्यासों में ऐसा कई बार दिखाई देता है कि किसान व्यवस्था एवं अपनी समस्याओं से लड़ने के लिए डटा है। किंतु वर्तमान शासन-प्रणाली को उसका ऐसा करना नागवार लगा। वह किसानों के लिए ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न कर देती है कि वह हार जाए।

किसानों की समस्याओं को दूर करने की बजाय उन्हें कर्ज लेने के लिए प्रेरित किया जाता है। कर्ज आज किसान के लिए बैसाखी बन गई है।

वर्तमान कृषि प्रणाली एवं कृषक समाज पूरी तरह से सामंती और जमींदारी प्रथा से मुक्त नहीं हो पाया है। प्रथाएं तो समाप्त कर दी गईं, किंतु कृषक समाज आज भी उनके दुष्परिणामों को भुगत रहा है। इनके अतिरिक्त प्राकृतिक प्रकोप उसकी स्थिति को और भी बदतर बना देती हैं। आज का किसान अपने आस-पास शोषण तंत्र को पहचान गया है और उसके खिलाफ आवाज भी उठा रहा है। कुल मिलाकर उसने अपने भले-बुरे की पहचान करना सीख लिया है।

खेतिहर मजदूर, जिन्हें किसानों की श्रेणियों में सबसे निम्न स्तर पर रखा गया है, की मूल समस्या भूमि की समस्या है। भूमि न होने के कारण ही ये समाज में भूस्वामी एवं सरकारी तंत्र के शोषण का शिकार होते हैं। परिश्रम और मजदूरी यही इनका जीवन है। अपना श्रम बेचकर ही ये जीवनयापन करते हैं। हमारे देश की व्यवस्था ऐसी है कि इन्हें इसमें भी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। जैसा कि विदित है खेती-किसानी का काम मौसम पर निर्भर होता है। इसलिए खेतिहर-मजदूरों को वर्ष भर काम नहीं मिल पाता है। चूंकि मजदूरी पर ही इनका जीवन टिका होता है इसलिए ये उसी की खोज में दर-दर की ठोकर खाते फिरते हैं। अधिक काम के बदले इन्हें कम मजदूरी दी जाती है। सरकार मजदूरों को रोजगार देने के उद्देश्य से जो योजनाएं चलाती है, वह भी बिचौलियों की भेंट चढ़ जाती हैं। न्यूनतम मजदूरी जैसी योजनाओं का सफल न होना भी इनकी समस्या का कारण है।

वैसे देखा जाए तो किसान एवं मजदूर दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। किंतु तुलना की दृष्टि से देखें तो इनकी समस्याएं अलग-अलग हैं। एक के बिना दूसरे के अस्तित्व की कल्पना करना भी कठिन ही है। खेती-किसानी से जुड़े हर काम को ये दोनों मिलकर करते हैं। बदलते सामाजिक परिवेश ने दोनों के बीच एक खाई बना दी है। आज की परिस्थितियों में किसान ही खेतिहर-मजदूरों का शोषण करने पर मजबूर

हो जाते हैं। उन्हें काम के बदले कम मजदूरी देते हैं। प्राकृतिक आपदा से या और भी किसी कारण से फसल में नुकसान के चलते खेतिहर मजदूरों को मजदूरी ही नहीं दी जाती।

किसान तो जमीन का मालिक होता है। किन्हीं भी परिस्थितियों में वह अपने पेट भरने के लिए अन्न तो जुटा लेता है, किंतु खेतिहर मजदूर के पास अपने श्रम को छोड़कर कोई भी ऐसा साधन नहीं होता, जिसके सहारे वह जीवनयापन कर सके। किसान अपनी खेती से जुड़ी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए संघर्ष करता है तो खेतिहर मजदूर अपने काम के लिए संघर्ष करता है। खेती-किसानी में घाटा होने पर भी किसान का कृषि से जुड़ा रहना एक मजबूरी होती है। उसका भूमि-प्रेम और एक तरह से अपनी पुश्तैनी संपत्ति को छोड़कर अन्य कार्य अपनाना उसके लिए मुश्किल भरा काम होता है। इसी कारण वह कृषि से जुड़ा रहता है।

खेतिहर मजदूर के पास उसके श्रम के अतिरिक्त कुछ नहीं होता है। उसे यदि गाँव में काम नहीं मिलता है, तो वह उस स्थान को छोड़कर मजदूरी की तलाश में अन्य स्थान पर चला जाता है। खेती-किसानी के प्रति सरकार के उपेक्षापूर्ण रवैये के कारण ही किसान और खेतिहर मजदूर पलायन करने पर मजबूर हैं। इनकी समस्याएं कम होने का नाम ही नहीं लेती हैं। शासन तंत्र का उदासीन रवैया ही किसानों की आत्महत्या का कारण बनता है। उपन्यासों में कई स्थानों पर ऐसा होता है जब किसान और खेतिहर मजदूर अपने समाज से पलायन नहीं करना चाहते हैं। फिर भी उन्हें अपना घरबार छोड़कर जाना पड़ता है।

इक्कीसवीं सदी के उपन्यासकारों की भी अपनी कुछ सीमाएं रही हैं। उपन्यासों का अध्ययन करते समय यह देखने को मिलता है कि उपन्यासकारों ने कृषक समाज में व्याप्त किसानों की समस्याओं को समग्र रूप में अभिव्यक्त करने में रुचि नहीं दिखाई है। उन्होंने किसानों की लगभग एक ही तरह की समस्याओं को अपने उपन्यासों में जगह दी है। कृषि नीतियाँ, प्राकृतिक आपदा, भ्रष्टाचार, शोषण जैसी समस्याएं ही अधिकांश उपन्यासकारों की रचनाओं में मिलती हैं। किसानों की समस्याओं पर बात करते

समय उन्होंने खेतिहर-मजदूरों पर उतनी भी चर्चा करना उचित नहीं समझा। इस कारण से उपन्यासों में खेतिहर मजदूरों की समस्याओं को पर्याप्त स्थान नहीं दिया गया। किसान आंदोलन, कृषि क्रांतियों आदि पर भी कम चर्चा की गई है। इसी प्रकार यदि हम किसान एवं खेतिहर मजदूरों के अंतर्संबंध की बात करें तो ये कई रूप में हमारे सामने आते हैं। एक किसान जिसके पास उसकी जमीन होती है, वह उसी के सहारे अपना जीवनयापन करता है अर्थात उसके पास जीवन जीने के लिए जमीन का सहारा होता है। किंतु खेतिहर मजदूर का जीवन निराधार होता है उसके पास ऐसा कुछ नहीं होता है जिसके सहारे वह जीवनयापन कर सके उसका श्रम ही उसकी कुल पूंजी होती है।

किसान एवं खेतिहर मजदूर दोनों ही कृषि समाज का अभिन्न अंग हैं दोनों के सहयोग से ही कृषि व्यवस्था सुचारू रूप से चल पाती है। फिर भी कभी-कभी किसान के पास उसकी भूमि होने का अहम उन्हें खेतिहर मजदूरों का शोषण करने के लिए प्रेरित करता है। उपन्यास में हमें यह बात देखने को मिलती है कि किस प्रकार बड़े किसान या भू-स्वामी खेतिहर मजदूरों पर अत्याचार करते हैं। दूसरी तरफ कुछ किसान खेतिहर मजदूरों को अपने घर के सदस्य की तरह रखते हैं उनके सुख-दुःख में उनका साथ देते हैं। उनके लिए खेतिहर मजदूर सिर्फ काम करने की मशीन न होकर एक जीता-जागता इंसान है। खेतिहर मजदूर जिसका कोई एक ठिकाना नहीं होता है वह जहाँ कहीं भी जाता है वहीं के कृषक समाज के जीवन को अपना बना लेता है। वह किसानों के घर और खेत की देखभाल इस तरह से करता है जैसे कि वह स्वयं उसी के खेत हों। प्राकृतिक आपदा या अन्य किसी भी कारण से जब किसान की फसल नष्ट हो जाती है तो वह किसान के दुःख को अपना मानते हुए उनसे मजदूरी तक नहीं मांगते हैं। इस प्रकार हमारे सामने यह बात आती है कि भले ही किसान एवं खेतिहर मजदूर के कार्य एक दूसरे से भिन्न हों किंतु उपन्यास में ऐसी कई परिस्थितियां सामने आती हैं जब किसान और खेतिहर मजदूर हमें एक दूसरे से जुड़े हुए दिखाई देते हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

अ) आधार ग्रंथ :

- चतुर्वेदी, सुनील; कालीचाट; अंतिका प्रकाशन सी- 561, यूजीएफ-4 शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन- 2 गाजियाबाद- 201005 (उ.प्र.); संस्करण : 2015
- चन्द्रा, एम.एम.; यह गाँव बिकाऊ है; डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि. x -30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज -2 नई दिल्ली 110020; संस्करण : 2019
- जयनंदन; सल्तनत को सुनो गाँव वालो; वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002; संस्करण : 2012
- त्यागी, भीमसेन; जमीन; भारतीय ज्ञानपीठ 18 इंस्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2004
- मिथिलेश्वेर; तेरा संगी कोई नहीं; लोकभारती प्रकाशन पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद- 211001; संस्करण : 2018
- राकेश, राजकुमार; कंदील; आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134113 (हरियाणा); संस्करण : 2015
- शर्मा, राजू; हलफनामे; राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड 7/31, अंसारी मार्ग, दरियागंज नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2007
- शिशिर, कर्मेन्दु; बहुत लंबी राह; यश पब्लिकेशन्स 1/11848, पंचशील गार्डन, नवीन शाहदरा, दिल्ली- 110032; संस्करण : 2015
- शिवमूर्ति; आखिरी छलांग; नॉटनल प्रकाशन, 16/1454, इंद्रा नगर, लखनऊ (उ.प्र.) 226016; संस्करण : 2014
- संजीव; फाँस; वाणी प्रकाशन 4695, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली 110002; संस्करण : 2016
- सिंह, कुणाल; आदिग्राम उपाख्यान; भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली -110003; संस्करण : 2011

- सिंह, सूर्यनाथ; चलती चाकी; सामयिक प्रकाशन 3320-21, जटवाड़ा, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2020
- सिंह, अनंत कुमार; ताकि बची रहे हरियाली; प्रभात प्रकाशन 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2015
- सुबीर, पंकज; अकाल में उत्सव; शिवना प्रकाशन पी.सी.लैब, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट बस स्टैंड, सीहोर- 466001 (म.प्र.); संस्करण : 2017
- हरनोट, एस.आर; हिडिम्ब; आधार प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड एम.सी.एफ. 267, सेक्टर-16 पंचकूला-134113 (हरियाणा); संस्करण : 2011

आ) सहायक ग्रंथ :

- अमृतराय; हाथी के दांत; भारतीय साहित्य संग्रह, नई दिल्ली; संस्करण : 2014
- किशोर, गिरिराज; लोग; राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2013
- किशोर, गिरिराज; जुगलबंदी; राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2015
- कुशवाहा, सुभाष चन्द्र; अवध का किसान विद्रोह; राजकमल प्रकाशन, नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2018
- कृष्णकांत, सुमन; इक्कीसवीं सदी की ओर; राजकमल प्रकाशन नेताजी सुभाष मार्ग दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2001
- कृष्णराज, मैत्रयी एवं अन्य; भारतीय महिला किसान (अनु.)अरविंद कुमार सिंह; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन-5 इंस्टीट्यूशन एरिया, नई दिल्ली-110070 ; संस्करणः 2014
- गुप्त, भैरव प्रसाद; सती मैया का चौरा; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी, इलाहबाद; संस्करण : 2013
- गोस्वामी, किशोरीलाल; अंगूठी का नगीना; लक्ष्मीनारायण अग्रवाल उच्च शिक्षा साहित्य के प्रकाशक, आगरा; संस्करण : 1926

- चन्द्र, जगदीश; घास गोदाम; आधार प्रकाशन प्रा. लि. एससीएफ 267, सेक्टर- 16, पंचकुला(हरियाणा); संस्करण : 2017
- चन्द्र, जगदीश; मुट्ठी भर कांकर; आधार प्रकाशन प्रा. लि. एससीएफ 267, सेक्टर- 16, पंचकुला(हरियाणा); संस्करण : 2017
- चंद्र, प्रोफ़ेसर बिपिन; भारत का स्वतंत्रता संघर्ष; हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय 10, केवेलरी लाइन; संस्करण : 1990
- चौधरी, सुरेन्द्र; इतिहास : संयोग और सार्थकता(स.) उदयशंकर; अंतिका प्रकाशनसी- 56/ यूजीफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन- 2, गाजियाबाद- 201005(उ.प्र.); सस्करण : 2009
- चौधरी, सुरेन्द्र; साधारण की प्रतिज्ञा : अँधेरे से साक्षात्कार(स.) उदयशंकर; अंतिका प्रकाशन सी- 56/ यूजीफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन- 2, गाजियाबाद- 201005(उ.प्र.); सस्करण : 2009
- चौबे, शिवानी किंकर; भारत में उपनिवेशवाद स्वतंत्रता संग्राम और राष्ट्रवाद; ग्रंथ शिल्पी प्रा.लि., बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2000
- जैन, वीरेन्द्र; डूब; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 1998
- जोशी, पूरन चंद्र ; भारत में भूमि सुधार अध्ययनों का सर्वेक्षण ; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी -7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110092 ; संस्करण : 2012
- जोशी, रामशरण; इक्कीसवीं सदी के संकट; राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 1बी. नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली 110002; संस्करण : 2003
- ताराचंद; भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का इतिहास (दूसरा खंड); प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, सूचना भवन, सी.जी.ओ. काम्प्लेक्स, नई दिल्ली- 110003; संस्करण : 1929
- तिवारी, रामचंद्र; हिन्दी का गद्य साहित्य; विश्वविद्यालय प्रकाशन चौक, वाराणसी- 221001 संस्करण : 2006
- दत्त, रजनी पाम; आज का भारत(अनु.) रामविलास शर्मा; ग्रंथ शिल्पी प्रा. लि., बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2000

- दुबे, श्यामाचरण; भारतीय समाज(स.) वंदना मिश्र; नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली- 110016; संस्करण : 2015
- देउस्कर, सखाराम गणेश; देश की बात(अनु.) बाबूराव विष्णु पराड़कर; नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली- 110016; संस्करण : 2005
- देवी, महाश्वेता एवं अन्य; भारत में बंधुआ मजदूर(अनु.) नन्दस्वरूप वर्मा; राधाकृष्ण प्रकाशन, 2 अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 1981
- नवले, प्रो. संजय(स.); किसान आत्महत्या : यथार्थ और विकल्प; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2018
- 'नाला' चौ. महिपाल सिंह; किसान चेतना और चौ. चरण सिंह; ज्ञान भारती 4/14 रूप नगर दिल्ली- 110007; संस्करण : 1981
- नागार्जुन; बलचनमा; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2002
- नागार्जुन; बाबाबटेसरनाथ; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2018
- नागार्जुन; रतिनाथ की चाची ; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2018
- निराला, सूर्यकांत त्रिपाठी; अलका; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2007
- पटनायक, किशन; किसान आन्दोलन दशा और दिशा; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2009
- पटनायक, नागभूषण; क्रांति की राह में(अनु.) अवधेश कुमार सिंह; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2017
- पटनायक, प्रभात; गुलामी के चक्रव्यूह में भारतीय अर्थव्यवस्था(अनु.)तरुण कुमार; ग्रंथ शिल्पी प्रा. लि., बी-7 सुभाष चौक, लक्ष्मीनगर, दिल्ली- 110092; संस्करण : 2014

- पाण्डेय, डॉ. राम किंकर, हिंदी साहित्य में किसान सपने, संघर्ष, चुनौतियां और 21वीं सदी; अनंग प्रकाशन, बी- 107/1 उत्तरी घोंडा, दिल्ली- 110053; संस्करण : 2016
- प्रकाश, अरुण; उपन्यास के रंग; अंतिका प्रकाशन सी- 56/ यूजीफ- 4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन- 2, गाजियाबाद- 201005(उ.प्र.); सस्करण : 2013
- प्रियंवद; भारत विभाजन की अन्त:कथा; भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली -110003; संस्करण : 2014
- प्रसाद, जयशंकर; तितली; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2005
- प्रेमचंद; गोदान; भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नयी दिल्ली- 110003; संस्करण : 2016
- प्रेमचंद; कर्मभूमि; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली- 110002; संस्करण : 2002
- प्रेमचंद; रंगभूमि; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत नेहरू भवन-5 इंस्टीट्यूशन एरिया, नई दिल्ली- 110070 ; संस्करणः 2005
- पुष्पराज; नंदीग्राम डायरी; पेंगुइन रैंडम हाउस, इंडिया प्रा. लि. सातवीं मंजिल, इनफिनिटी टावर सी, डी. एल. एफ. साइबर सिटी, गुड़गांव- 122002, हरियाणा; संस्करण : 2009
- पुष्यमित्र; जब नील का दाग मिटा; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2018
- प्रसाद, प्रधान हरिशंकर; खेतिहर समाज; फिलहाल ट्रस्ट, एम. – 46/2, श्रीकृष्ण नगर, पटना- 800001; संस्करण : 2006
- प्रसाद, भागवत (सं.); भूमि हकदारी एवं भूमि साक्षरता मार्गदर्शिका; अखिल भारतीय समाज सेवा संस्थान भारत जननी परिसर, रानीपुर भट्ट, सीतापुर चित्रकूट (उ.प्र.) 210204; संस्करण : 2004
- फॉक्स, रैल्फ; उपन्यास और जनसमुदाय; परिकल्पना प्रकाशन द्वारा, जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020; संस्करण : 2006

- फ़ॉक्स, रैल्फ; उपन्यास और लोकजीवन; पीपुल्स पब्लिसिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड एम.एम. रोड, नई दिल्ली; संस्करण : 1995
- फुले, ज्योतिराव गोविंदराव; गुलामगीरी(अनु.) डॉ. विमलकीर्ति; सम्यक प्रकाशन 32/3, पश्चिम पूरी, नई दिल्ली- 110063; संस्करण : 2018
- बो, मिशेल; पूंजीवाद का इतिहास(अनु.) रामकवींद्र सिंह; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी -7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110092; संस्करण : 2012
- बंद्योपाध्याय, शेखर; प्लासी से विभाजन तक और उसके बाद(अनु.) नरेश नदीम; ओरियंट ब्लैकस्वान प्रा. लिमिटेड 3-6 हिमायत नगर, हैदराबाद- 500029(तेलंगाना), भारत; संस्करण : 2015
- भट्टाचार्य, सव्यसाची; आधुनिक भारत का आर्थिक इतिहास; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2015
- भल्ला, जी.एस.; भारतीय कृषि आजादी के बाद(अनु.) रजनीश कुमार; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली- 110016; संस्करण : 2016
- भल्ला, जी.एस.; भारतीय खेतिहरों की स्थिति(अनु.) गिरीश मिश्र; राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, ए-5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली- 110016; संस्करण : 2016
- मधुरेश; हिंदी उपन्यास का विकास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी, इलाहबाद; संस्करण : 2018
- मजुमदार, रमेशचन्द्र एवं अन्य; भारत का बृहत इतिहास प्राचीन भारत; S.G. Wasani for Macmillan India Limited and Printed by V.N. Rao at Macmillan India Press, Madras-600041; संस्करण: 1994
- मदान, इन्द्रनाथ; आधुनिक और हिंदी उपन्यास; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2019
- मोहन, अरविंद; बिहारी मजदूरों की पीड़ा; राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2017

- मेहता, रामकिशोर; भारत में किसान की दुर्दशा; उदभावना एच-55, सेक्टर- 23 राजनगर, गाजियाबाद; संस्करण : 2018
- मिश्र, भुवनेश्वर; बलवंत भूमिहार; प्रभात प्रकाशन 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2018
- मिश्र, रामदरश; जल टूटता हुआ; वाणी प्रकाशन; अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2005
- मिश्र, रामदरश; पानी के प्राचीर; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2008
- मिश्र, रामदरश; हिंदी उपन्यास एक अंतर्यात्रा; राजकमल प्रकाशन; अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2016
- मोहनन, एन.; समकालीन हिंदी उपन्यास; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2015
- मदान, इन्द्रनाथ; आधुनिक और हिंदी उपन्यास; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2019
- रजा, राही मासूम; आधा गाँव; राजकमल प्रकाशन; अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2016
- रेणु, फनीश्वरनाथ; परती परिकथा; राजकमल प्रकाशन; अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2017
- रेणु, फनीश्वरनाथ; मैला आंचल; राजकमल प्रकाशन; अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2016
- राय, गोपाल; हिंदी उपन्यास का इतिहास; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2016
- राय, डॉ. परमहंस; अर्थशास्त्र की भूमिका; बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, सम्मेलन भवन, कदम कुंआ, पटना- 3; संस्करण : 1971

- लेनिन; खेती में पूंजीवाद (अनु.) विक्रम प्रताप; गार्गी प्रकाशन 1/4649/45 बी. गली न. 04, न्यू मॉडर्न शाहदरा, दिल्ली- 110032; संस्करण : 2018
- विमल, जगदीश झा; खरा सोना; महादेव प्रसाद झुनझुनवाला, 31, बडतल्ला स्ट्रीट, कलकता; संस्करण : 2000
- विवेकीराय; लोकऋण; विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, संस्करण : 2018
- विवेकीराय; समर शेष है; प्रभात प्रकाशन 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2008
- विवेकीराय; सोनामाटी; प्रभात प्रकाशन 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2010
- शुक्ल, रामचन्द्र; हिंदी साहित्य का इतिहास; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी, इलाहबाद; संस्करण : 2015
- शर्मा, आर. एस. एवं अन्य; भारत की बदलती उत्पादन प्रणालियाँ(सं.) डी. एन. गुप्ता; हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली- 110007; संस्करण : 1999
- शर्मा, देविन्दर; मुट्ठी भर दानों के लिए; प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2003
- शर्मा, रामविलास; आचार्य रामचन्द्र शुक्ल और हिंदी आलोचना; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2015
- शर्मा, रामविलास; प्रेमचंद और उनका युग; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2018
- शर्मा, रामविलास; निराला की साहित्य साधना(द्वितीय खंड); राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 1981
- शर्मा, रामविलास; भारतीय इतिहास और ऐतिहासिक भौतिकवाद; हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली- 11000; संस्करण : 1992
- शर्मा, रामशरण एवं अन्य; विश्व इतिहास की भूमिका; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2019

- शशिधर, रामाज्ञा; किसान आन्दोलन की साहित्यिक जमीन; अंतिका प्रकाशन, सी- 56/ यूजीफ-4, शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन- 2, गाजियाबाद- 201005(उ.प्र.); सस्करण : 2013
- शर्मा, रामशरण ; सामंतवाद; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2019
- श्रीनिवास, एम. एन,; भारत के गाँव(अनु.) मधु बी. जोशी; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2011
- श्रीवास्तव, परमान्द; उपन्यास का पुनर्जन्म; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2015
- श्रीवास्तव, हिमांशु; नदी बह चली; प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2003
- श्रीवास्तव, हिमांशु; लोहे के पंख; प्रभात प्रकाशन, 4/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2002
- सचिव; ये फसल उम्मीद की हमदम; पीपुल्स यूनियन फॉर डेमोक्रेटिक राइट्स दिल्ली; सितम्बर, 1991(रिपोर्ट)
- सरकार, सुमित; आधुनिक भारत(अनु,) सुशीला डोभाल; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2018
- सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि(सं.) अवधेश प्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी -7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110092; संस्करण : 2012
- सरस्वती, स्वामी सहजानंद; किसान क्या करें(सं.) अवधेश प्रधान; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी-7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी नगर, दिल्ली 110092; संस्करण : 2011
- साहनी, भीष्म; मैय्यादास की माड़ी; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002; संस्करण : 2008
- सिंह, नामवर; प्रेमचंद और भारतीय समाज(सं.) आशीष त्रिपाठी; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2017

- सिन्हा, डॉ. हरिशंकर प्रसाद; भारत में कृषि शिक्षा का विकास; बिहार ग्रंथ अकादमी, 195-बी, श्रीकृष्ण पुरी, पटना- 800001; संस्करण : 1983
- सिंह, पुष्पपाल; इक्कीसवीं सदी का हिंदी उपन्यास; राधाकृष्ण प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2016
- सिंह, विजय बहादुर; उपन्यास समय और संवेदना; वाणी प्रकाशन. अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2013
- सिंह, शिवप्रसाद; अलग-अलग वैतरणी; लोकभारती प्रकाशन, पहली मंजिल, दरबारी बिल्डिंग, महात्मा गाँधी, इलाहबाद; संस्करण : 2004
- सिंह, शिवप्रसाद; गली आगे मुड़ती है; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2016
- सुखविंदर; भारतीय कृषि में पूंजीवादी विकास; राहुल फाउंडेशन 69. बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ- 226006; संस्करण : 2011
- साईनाथ, पी.; तीसरी फसल(अनु.) आनन्दस्वरूप वर्मा; तीसरी दुनिया Q-63, सेक्टर- 12, नोएडा- 20130; संस्करण : 2003
- हबीब, इरफान; भारतीय इतिहास की मार्क्सवादी परिकल्पना(अनु.) तरुण कुमार: ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी -7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली 110092; संस्करण : 2017
- हबीब, इरफान (सं.); मध्यकालीन भारत अंक : एक, (अनु.) नरेश 'नदीम'; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2016
- हबीब, इरफान (सं.); मध्यकालीन भारत अंक : दो, (अनु.) एन. सी.लोहनी; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2018
- हबीब, इरफान (सं.); मध्यकालीन भारत अंक : तीन; राजकमल प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2018

- हिल्टन(सं.); सामंतवाद से पूंजीवाद में संक्रमण(अनु.) प्रदीपकांत चौधरी; ग्रंथ शिल्पी प्राइवेट लिमिटेड, बी -7, सरस्वती काम्प्लेक्स, सुभाष चौक, लक्ष्मी मगर, दिल्ली 110092; संस्करण : 2007
- त्रिपाठी, कमलाकांत; बेदखल; वाणी प्रकाशन, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 02; संस्करण : 2007

इ) पत्र-पत्रिकाएँ

- उपाध्याय, संज्ञा (संपा.); कथन; 107, साक्षरा अपार्टमेंट, ए- 3, पश्चिम विहार, नई दिल्ली- 110063
- कालजयी, किशन (संपा.); सबलोग; बी-3/44, प्रथम तल, सेक्टर- 16 रोहिणी; दिल्ली- 110089; जुलाई 2017, अगस्त 2017, जनवरी 2021
- चमड़िया, अनिल (संपा.); जन मीडिया; सी-2, पीपलवाला मोहल्ला, बादली एक्सटेंशन, दिल्ली-42; फरवरी 2010
- चन्द्र, सुभाष (संपा.); देस हरियाणा; 912, सेक्टर- 13, कुरुक्षेत्र(हरियाणा)- 136118; सितंबर-अक्टूबर 2017
- त्यागी, महेश (संपा.); किसान; ग्राम- मांगरौली, पोस्ट बेगमाबाद, गढ़ी वाया, दोघट, जिला बागपत, पिन- 250622; फरवरी 2016, सितम्बर 2016, नवम्बर 2018, अक्टूबर 2019
- पाण्डेय, के.के (संपा.).; जनमत; 267, पुराना कटरा, इलाहाबाद- 211002; नवम्बर 2018
- बिष्ट, पंकज (संपा.); समयांतर; 79-ए, दिलशाद गार्डन, दिल्ली- 110095; जुलाई 2017, दिसम्बर 2017
- निर्मोही, देश (संपा.); पल-प्रतिपल; आधार प्रकाशन प्रा. लि. एससीएफ 267, सेक्टर- 16, पंचकुला(हरियाणा); जुलाई 2018
- मंडलोई, लीलाधर (संपा.); नया ज्ञानोद; भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली- 110003; मई 2017

- यादव, राजेन्द्र (संपा.); हंस; अक्षर प्रकाशन, प्रा. लि. 2/36, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; अगस्त 2006
- राजकिशोर (संपा.); रविवार; 210, कॉरपोरेट हाउस, बी- ब्लॉक, द्वितीय मंजिल, 169 आरएनटी मार्ग, इंदौर- 452001; जून- 2017
- सिन्हा, प्रीति (संपा.); फिलहाल; फिलहाल ट्रस्ट स्वास्तिक प्रेस, काजीपुर, पटना, नेहरु नंदा भवन, दरोगाराय पथ, पटना-800001; जनवरी- फरवरी 2018
- श्रोत्रिय, प्रभाकर (संपा.); नया ज्ञनोदय, 18, इंस्टिट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली- 110003; मार्च 2006

ई) शब्द-कोश

- बाहरी, डॉ. हरदेव; हिंदी शब्दकोश; 1590, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट, दिल्ली- 110006, संस्करण : 2014
- भारत विश्वकोश; अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, 4831/24, प्रहलाद गली, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002; संस्करण : 2014
- वर्मा, एम. के. एवं अन्य; अंग्रेजी-हिंदी शब्दकोश;ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
- वर्मा, रामचन्द्र; संक्षिप्त हिंदी शब्दसागर; नागरीप्रचारिणी सभा, वारणसी; संस्करण ; संवत 2065